प्रवचन-क्रम

ग्यारहवां प्रवचन

तथाता में है क्रांति

फन्दनं चपलं चित्तं दूरक्खं दुन्निवारयं।
उजुं करोति मेधावी उसुकारो" व तेजनं।। 29।।

वारिजो" व थले कित्तो ओकमोकत-उब्भतो।
परिफन्दतिदं चित्तं मारधेय्यं पहातवे।। 30।।

दुन्निग्गहस्स लहुनो यत्थकाम निपातिनो।
चित्तस्स दमथो साधु चित्तं दन्तं सुखावहं।। 31।।

दूरङ्गम एकचरं असरीरं गुहासयं।
ये चित्तं सांिमेस्सन्ति मोक्खन्ति मारबन्धना।। 32।।

अनवट्ठित चित्तस्स सद्धम्मं अविजानतो।
परिप्लवपसादस्स पांि न परिपूरति।। 33।।

जीवन दो भांति जीया जा सकता है--एक मालिक की तरह, एक गुलाम की तरह। और गुलाम की तरह जो जीवन है, वह नाममात्र को ही जीवन है। उसे जीवन कहना भी गलत है। बस दिखाई पड़ता है जीवन जैसा, आभास होता है जीवन जैसा। जैसे एक सपना देखा हो। आशा में ही होता है गुलाम का जीवन। मिलेगा, मिलता कभी नहीं। आ रहा है, आता कभी नहीं। गुलाम का जीवन बस जाता है, आता कभी नहीं।

गुलाम के जीवन का शास्त्र समझ लेना जरूरी है। क्योंकि जो उसे न समझ पाया, वह मालिक के जीवन को निर्मित न कर पाएगा। दोनों के शास्त्र अलग हैं। दोनों की व्यवस्थाएं अलग हैं। गुलाम के जीवन के शास्त्र का नाम ही संसार है। मालिक और मालकियत के जीवन का नाम ही धर्म है। एस धम्मो सनंतनो। वही सनातन धर्म का सूत्र है।

मालिक से अर्थ है, ऐसे जीना जैसे जीवन अभी और यहीं है। कल पर छोड़कर नहीं, आशा में नहीं, यथार्थ में। मालिक के जीवन का अर्थ है, मन गुलाम हो, चेतना मालिक हो। होश मालिक हो, वृत्तियां मालिक न हों। विचारों का उपयोग किया जाए, विचार तुम्हारा उपयोग न कर लें। विचारों को तुम काम में लगा सको, विचार तुम्हें काम में न लगा दें। लगाम हाथ में हो जीवन की। और जहां तुम जीवन को ले जाना चाहो, वहीं जीवन जाए। तुम्हें मन के पीछे घसिटना न पड़े।

गुलाम का जीवन बेहोश जीवन है। जैसे सारथी नशे में हो, लगाम ढीली पड़ी हो, घोड़ों की जहां मर्जी हो रथ को ले जाएं। ऊबड़-खाबड़ में गिराएं, कष्ट में डालें, मार्ग से भटकाएं, लेकिन सारथी बेहोश हो।

गीता में कृष्ण सारथी हैं। अर्थ है कि जब चैतन्य हो जाए सारथी, तुम्हारे भीतर जो श्रेष्ठतम है जब उसके हाथ में लगाम आ जाए। बहुत बार अजीब सा लगता है कृष्ण को सारथी देखकर। अर्जुन ना-कुछ है अभी, वह रथ में बैठा है। कृष्ण सब कुछ हैं, वे सारथी बने हैं। पर प्रतीक बड़ा मधुर है। प्रतीक यही है कि तुम्हारे भीतर जो ना-कुछ है वह सारथी न रह जाए; तुम्हारे भीतर जो सब कुछ है वही सारथी बन जाए।

तुम्हारी हालत उलटी है। तुम्हारी गीता उलटी है। अर्जुन सारथी बना बैठा है। कृष्ण रथ में बैठे हैं। ऐसे ऊपर से लगता है--मालकियत, क्योंकि कृष्ण रथ में बैठे हैं और अर्जुन सारथी है। ऊपर से लगता है, तुम मालिक हो। ऊपर से लगता है, तुम्हारी गीता ही सही है। लेकिन फिर से सोचना, व्यास की गीता ही सही है। अर्जुन रथ में होना चाहिए। कृष्ण सारथी होने चाहिए। मन रथ में बिठा दो, हर्जा नहीं है। लेकिन ध्यान सारथी बने, तो एक मालकियत पैदा होती है।

इसलिए हमने इस देश में संन्यासी को स्वामी कहा है। स्वामी का अर्थ है, जिसने अपनी गीता को ठीक कर लिया। अर्जुन रथ में बैठ गया, कृष्ण सारथी हो गए, वही संन्यासी है। वही स्वामी है।

और स्वामी होना ही एकमात्र जीवन है। तब तुम जीते ही नहीं, तुम जीवन हो जाते हो। तुम महाजीवन हो जाते हो। सब बदल जाता है। कल तक जहां कांटे थे, वहां फूल खिल जाते हैं। और कल तक जो भटकाता था, वही तुम्हारा अनुचर हो जाता है। कल तक जो इंद्रियां केवल दुख में ले गई थीं, वे तुम्हें महासुख में पहुंचाने लगती हैं। क्योंकि जिन इंद्रियों से तुमने संसार को पहचाना है, वे ही इंद्रियां तुम्हें परमात्मा के दर्शन दिलाने लगेंगी। उनको ही झलक मिलेगी।

यही आंखें--ध्यान रखना, फिर से दोहराता हूं--यही आंखें उसे देखने लगेंगी। और इन्हीं आंखों ने पर्दा किया था। इन्हीं आंखों के कारण वह दिखाई न पड़ता था। इन आंखों को फोड़ मत लेना, जैसा कि बहुत से नासमझ तुम्हें समझाते रहे हैं। ये आंखें बड़े काम में आने को हैं, सिर्फ भीतर का इंतजाम बदलना है। जो मालिक है असली में, उसे मालिक घोषित करना है। बस उतनी घोषणा काफी है। जो गुलाम है उसे गुलाम घोषित करना है।

तुम्हारे भीतर गुलाम मालिक बनकर बैठ गया है, और मालिक को अपनी मालकियत भूल गई है। इसलिए आंखों से पदार्थ दिखाई पड़ता है, परमात्मा नहीं। कानों से शब्द सुनाई पड़ता है, निःशब्द नहीं। हाथों से केवल वही छुआ जा सकता है जो रूप है, आकार है, निराकार का स्पर्श नहीं होता। मैं तुमसे कहता हूं, जैसे ही तुम्हारे भीतर का इंतजाम बदलेगा--मालिक अपनी जगह लेगा, गुलाम अपनी जगह लेगा, चीजें व्यवस्थित होंगी, तुम्हारा शास्त्र शीर्षासन न करेगा, ठीक जैसा होना चाहिए वैसा हो जाएगा--तत्क्षण तुम पाओगे इन्हीं आंखों से निराकार की झलक मिलने लगी, पदार्थ से परमात्मा झांकने लगा।

पदार्थ सिर्फ घूंघट है। वही प्रेमी वहां छिपा है। और इन्हीं कानों से तुम्हें शून्य का स्वर सुनाई पड़ने लगेगा। यही कान ओंकार के नाद को भी ग्रहण कर लेते हैं। कान की भूल नहीं है। आंख की भूल नहीं है। इंद्रियों ने नहीं भटकाया है, सारथी बेहोश है। घोड़ों ने नहीं भटकाया है। घोड़े भी क्या भटकाएंगे? और घोड़ों को जिम्मेवारी सौंपते तुम्हें शर्म भी नहीं आती।

और तुम्हारे साधु-संन्यासी तुमसे कहे जाते हैं, घोड़ों ने भटकाया है। घोड़े क्या भटकाएंगे? और जिसको घोड़े भटका देते हों, वह पहुंच न पाएगा। जो घोड़ों को भी न सम्हाल सका, वह क्या सम्हालेगा? वह पहुंचने योग्य ही न था। उसकी कोई पात्रता ही न थी, जिसको घोड़ों ने भटका दिया।

नहीं, भटके तुम हो। लगाम तुम्हारी ढीली है। घोड़े तो बस घोड़े हैं। उनके पास कोई होश तो नहीं। जब तुम बेहोश हो, तो घोड़ों से होश की अपेक्षा रखते हो! जब तुम्हारा चैतन्य सोया हुआ है, तो इंद्रियों से तुम चैतन्य की अपेक्षा रखते हो! इंद्रियां तो तुम जैसे हो वैसी ही हो जाती हैं। इंद्रियां अनुचर हैं। जीवन का इंतजाम बदलना ही साधना है। और यही इंतजाम का आधार है कि मन मालिक न रह जाए, ध्यान मालिक बने।

इसी रफ्तारे-आवारा से भटकेगा यहां कब तक

अमीरे-कारवां बन जा गुबारे-कारवां कब तक

कब तक गुजरते हुए कारवां की धूल, पीछे उड़ती धूल, कब तक ऐसे भीड़ के पीछे उड़ती धूल का अनुगमन करता रहेगा? कब तक ऐसे चलेगा मन के पीछे, शरीर के पीछे, इंद्रियों के पीछे? कब तक क्षुद्र का अनुसरण होगा? अमीरे-कारवां बन जा--अब वक्त आ गया कि मालिक बन जा, इस कारवां का पथ-प्रदर्शक बन जा, सारथी बन जा। बहुत दिन अर्जुन रह लिए, कृष्ण बनने का समय आ गया।

कृष्ण और अर्जुन दो नहीं हैं। एक ही व्यक्ति को जमाने के दो ढंग हैं। एक ही चेतना के दो ढंग हैं, दो रूप हैं। रथ तो वही रहेगा, कुछ भी न बदलेगा, कृष्ण को भीतर बिठा दो, अर्जुन को सारथी बना दो, सब डगमगा जाएगा। कुछ तुमने जोड़ा नहीं, कुछ घटाया नहीं।

बुद्ध ने कुछ जोड़ा थोड़े ही है। उतना ही है बुद्ध के पास जितना तुम्हारे पास है। रत्तीभर ज्यादा नहीं। कुछ घटाया थोड़े ही है। रत्तीभर कम नहीं। न कुछ छोड़ा है, न कुछ जोड़ा है, व्यवस्था बदली है। वीणा के तार अलग पड़े थे, वीणा पर कस दिए हैं। या वीणा के तार ढीले थे, उन्हें कस दिया है। जो जहां होना चाहिए था, वहां रख दिया है। जो जहां नहीं होना चाहिए था, वहां से बदल दिया है। सब वही है बुद्ध में, जो तुममें है। अंतर क्या है? संयोजन अलग है। और संयोजन के बदलते ही सब बदल जाता है--सब। तुम भरोसा भी नहीं कर सकते कि तुम्हारा ही संयोजन बदलकर बुद्धत्व पैदा हो जाता है; कि तुम्हीं अर्जुन, तुम्हीं कृष्ण। अभी तुम भरोसा भी कैसे करो?

पहले शराब जीस्त थी अब जीस्त है शराब

इतना ही फर्क है। पहले शराब जीस्त थी--पहले नशा ही जिंदगी थी। अब जीस्त है शराब--अब जिंदगी ही नशा है। पहले नशा जिंदगी थी, पहले शराब जिंदगी थी, अब जिंदगी शराब है।

कोई पिला रहा है पिए जा रहा हूं मैं

बस इतना ही फर्क है। पहले तुम पी रहे थे, कोई पिला न रहा था। और तब शराब जिंदगी मालूम होती थी, बेहोशी जिंदगी मालूम होती थी। अब, अब जिंदगी ही शराब है। अब जीवन का उत्सव है, आनंद है, और अब तुम नहीं पी रहे हो--

कोई पिला रहा है पिए जा रहा हूं मैं

संयोजन बदला कि अहंकार गया। कृष्ण रथ में बैठ जाएं, अर्जुन सारथी बन जाए, अहंकार परिणाम होगा। अर्जुन रथ में बैठे, कृष्ण सारथी बनें, निरअहंकार परिणाम होगा। सारा गीता का संदेश इतना सा ही है कि अर्जुन, तू स्वयं को छोड़ दे, निरअहंकार हो जा। तू मत पी अपने हाथ से!

कोई पिला रहा है पिए जा रहा हूं मैं

परमात्मा जो करता है करने दे, तू निमित्त हो जा। जो निमित्त हो गया, वह मालिक हो गया। क्योंकि जो निमित्त हो गया, वह मालिक के साथ एक हो गया।

बुद्ध के ये सूत्र बहुत गलत तरह से समझे गए हैं, इसे पहले कह दूं। क्योंकि जितने महासूत्र हैं, आदमी उनको गलत ही समझ सकता है। आदमी के भीतर प्रविष्ट होते ही किरणें भी अंधकार हो जाती हैं। आदमी के भीतर प्रविष्ट होते ही सुगंध दुर्गंध हो जाती है। आदमी के भीतर समझ के हीरे भी नासमझी के कंकड़-पत्थर होकर रह जाते हैं। बुद्ध ने ये सूत्र दिए हैं बड़े बहुमूल्य, लेकिन बुद्ध के पीछे चलने वालों ने उन्हें गलत ढंग से पकड़ा है। जैसा कि सभी के पीछे चलने वालों ने गलत ढंग से पकड़ा है। कुछ बात ऐसी बारीक है, और कुछ बात ऐसी भिन्न है आदमी से कि आदमी के हाथ में पड़ते ही भूल हो जाती है।

"चित्त क्षणिक है, चंचल है। इसे रोक रखना कठिन है। इसका निवारण कठिन है। ऐसे चित्त को मेधावी पुरुष उसी प्रकार ऋजु, सरल, सीधा बनाता है, जिस प्रकार वाणकार वाण को।"

इन सूत्रों से लोगों ने समझा कि चित्त को दबाना है, कि चित्त को मिटाना है, कि चित्त से लड़ना है। बुद्ध केवल चित्त का स्वभाव समझा रहे हैं। बुद्ध कह रहे हैं, चित्त क्षणिक है, चंचल है। लड़ने की कोई बात नहीं कर रहे हैं। इतना ही कह रहे हैं कि चित्त का स्वभाव ऐसा है। तथ्य की घोषणा कर रहे हैं।

लेकिन तुम्हारे मन में जैसे ही कभी कोई तुमसे कहता है चित्त क्षणिक है, जीवन क्षणभंगुर है, तुम तत्क्षण--क्षणभंगुरता को तो नहीं समझते--शाश्वत की खोज में लग जाते हो। वहीं भूल हो जाती है। और तुम्हारे महात्मागण जब भी तुमसे कहते हैं जीवन क्षणभंगुर, चित्त क्षणिक, तुम तत्क्षण सोचने लगते हो कैसे उसे पाएं जो अक्षणिक है, जो शाश्वत है, सनातन है। बस वहीं भूल हो जाती है! शाश्वत को पाना नहीं है, क्षणिक को समझ लेना है।

जापान में एक बहुत बड़ा झेन कवि हुआ बासो। उसकी एक छोटी सी कविता है, एक हाइकू है। जिसका अर्थ बड़ा अदभुत है। हाइकू है कि जिन्होंने जाना, वह वे ही लोग हैं जिन्होंने इंद्रधनुष को देखकर तत्क्षण न कहा कि जीवन क्षणभंगुर है, जिन्होंने पानी के बबूले को टूटते देखकर तत्क्षण न कहा कि जीवन क्षणभंगुर है। जिन्होंने ओस की बूंद को बिखरते या वाष्पीभूत होते देखकर तत्क्षण न कहा कि हम उदास हो गए, जीवन क्षणभंगुर है, उन्होंने ही जाना।

यह बड़ी अजीब बात है। बुद्ध के बड़े विपरीत लगती है। बासो बुद्ध का भक्त है। पर बासो समझा।

जैसे ही तुमसे कोई कहता है जीवन क्षणभंगुर है और तुम छोड़ने को राजी हो जाते हो, तो तुम जीवन को छोड़ने को राजी नहीं होते, तुम क्षणभंगुरता को छोड़ने को राजी होते हो। तुम्हारी वासना नहीं मिटती, तुम्हारी वासना और बढ़ गई। तुम सनातन चाहते हो, शाश्वत चाहते हो। तुम कंकड़-पत्थर रखे थे, किसी ने कहा ये कंकड़-पत्थर हैं--तुम अब तक हीरे समझे थे इसलिए पकड़े थे--किसी ने कहा कंकड़-पत्थर हैं, तुम छोड़ने को राजी हो गए, क्योंकि अब असली हीरों की तलाश करनी है। हीरों का मोह नहीं गया। पहले इन्हें हीरा समझा था तो इन्हें पकड़ा था। अब कोई और हीरे हैं तो उन्हें पकड़ेंगे। लेकिन तुम वही के वही हो।

बुद्ध जब कहते हैं, मन क्षणिक है, चंचल है, जीवन क्षणभंगुर है, तो वे सिर्फ तथ्य की घोषणा करते हैं। वे सिर्फ इतना ही कहते हैं, ऐसा है। इससे तुम वासना मत निकाल लेना, इससे तुम साधना मत निकाल लेना, इससे तुम अभिलाषा मत जगा लेना, इससे तुम आशा को पैदा मत कर लेना, इससे तुम भविष्य के सपने मत देखने लगना। और मजा यह है कि जो तथ्य को देख लेता है, वह शाश्वत को उपलब्ध हो जाता है। जैसे ही तुम्हें यह दिखाई पड़ गया कि मन क्षणिक है, कुछ करना थोड़े ही पड़ता है शाश्वत को पाने के लिए। मन क्षणिक है, ऐसे बोध में मन शांत हो जाता है।

इसे जरा थोड़ा गौर से समझना।

ऐसे बोध में कि मन क्षणिक है, पानी का बबूला है, अभी है अभी न रहा, भोर की तरैया है, डूबी-डूबी, अब डूबी तब डूबी, कुछ करना थोड़े ही पड़ता है। ऐसे बोध में तुम जाग जाते हो, गेस्टॉल्ट बदल जाता है। जीवन की पूरी देखने की व्यवस्था बदल जाती है। क्षणभंगुर के साथ जो तुमने आशा के सेतु बांध रखे थे, वे टूट जाते हैं।

शाश्वत को खोजना नहीं है, क्षणभंगुर से जागना है। जागते ही जो शेष रह जाता है, वही शाश्वत है। शाश्वत को कोई कभी पाने थोड़े ही जाता है। क्योंकि शाश्वत का तो अर्थ ही है कि जिसे कभी खोया नहीं। जो खो जाए वह क्या खाक शाश्वत है! हां, क्षणभंगुर में उलझ गए हैं, बस उलझाव चला जाए, शाश्वत मिला ही है।

लेकिन तुम क्या करते हो? तुम क्षणभंगुर के उलझाव को शाश्वत का उलझाव बना लेते हो। तुम संसार की तरफ दौड़ते थे, किसी ने चेताया; चेते तो तुम नहीं, क्योंकि चेताने वाला कह रहा थाः दौड़ो मत--तुम संसार की तरफ दौड़ते थे, बुद्ध राह पर मिल गए, उन्होंने कहा, कहां दौड़े जा रहे हो, वहां कुछ भी नहीं है--वे इतना ही चाहते थे कि तुम रुक जाओ, दौड़ो मत। तुमने उनकी बात सुन ली, लेकिन तुम्हारी वासना ने उनकी बात का अर्थ बदल लिया। तुमने कहा, ठीक है। यहां अगर कुछ भी नहीं है, तो हम मोक्ष की तरफ दौड़ेंगे। लेकिन दौड़ेंगे हम जरूर।

दौड़ संसार है। रुक जाते तो मोक्ष मिल जाता। संसार की तरफ न दौड़े, मोक्ष की तरफ दौड़ने लगे। क्षणभंगुर को न पकड़ा तो शाश्वत को पकड़ने लगे। धन न खोजा तो धर्म को खोजने लगे। लेकिन खोज जारी रही। खोज के साथ तुम जारी रहे, खोज के साथ अहंकार जारी रहा; खोज के साथ तुम्हारी तंद्रा जारी रही, तुम्हारी नींद जारी रही। दिशाएं बदल गयीं, पागलपन न बदला। पागल पूरब दौड़े कि पश्चिम, कोई फर्क पड़ता है? पागल दक्षिण दौड़े कि उत्तर, कोई फर्क पड़ता है? दौड़ है पागलपन।

ये तथ्य हैं। और इसलिए झेन में--जो बुद्ध-धर्म का सारभूत है--ऐसे उल्लेख हैं हजारों कि बुद्ध के वचन को पढ़ते-पढ़ते, सुनते-सुनते अनेक लोग समाधि को उपलब्ध हो गए हैं। दूसरे धर्मों के लोग यह बात समझ नहीं पाते हैं, कि यह कैसे होगा? सिर्फ सुनते-सुनते?

बुद्ध का सर्वश्रेष्ठ शास्त्र है--भारत से संस्कृत के रूप खो गए हैं, चीनी और तिब्बती से उसका फिर से पुनआर्विष्कार हुआ--दि डायमंड सूत्रा। बुद्ध उस सूत्र में सैकड़ों बार यह कहते हैं, कि जिसने इस सूत्र की चार पंक्तियां भी समझ लीं, वह मुक्त हो गया। सैकड़ों बार--एक-दो बार नहीं--करीब-करीब हर पृष्ठ पर कहते हैं। कभी-कभी हैरानी होती है कि वे इतना क्यों इस पर जोर दे रहे हैं। बहुत बार उन्होंने उस सूत्र में कहा है। जिससे वे बोल रहे हैं, जिस भिक्षु से वे बात कर रहे हैं, उससे वे कहते हैं, सुन, गंगा के किनारे जितने रेत के कण हैं, अगर प्रत्येक रेत का कण एक-एक गंगा हो जाए--तो उन सारी गंगाओं के किनारे कितने रेत के कण होंगे? वह भिक्षु कहता है, अनंत-अनंत होंगे, हिसाब लगाना मुश्किल है। बुद्ध कहते हैं, अगर कोई व्यक्ति उतना अनंत-अनंत पुण्य करे तो कितना पुण्य होगा? वह भिक्षु कहता है, बहुत-बहुत पुण्य होगा, उसका हिसाब तो बहुत मुश्किल है। बुद्ध कहते हैं, लेकिन जो इस शास्त्र की चार पंक्तियां भी समझ ले, उसके पुण्य के मुकाबले कुछ भी नहीं।

जो भी पढ़ेगा वह थोड़ा हैरान होगा कि चार पंक्तियां? पूरा शास्त्र आधा घंटे में पढ़ लो, इससे बड़ा नहीं है। चार पंक्तियां जो पढ़ ले? बुद्ध क्या कह रहे हैं? बुद्ध ने एक नवीन दर्शन दिया है, वह है तथ्य को देख लेने का। बुद्ध यह कह रहे हैं, जो चार पंक्तियां भी पढ़ ले, जो मैं कह रहा हूं उसके तथ्य को चार पंक्तियों में भी देख ले, फिर कुछ करने को शेष नहीं रह जाता; बात हो गई। सत्य को सत्य की तरह देख लिया, असत्य को असत्य

की तरह देख लिया, बात हो गई। फिर पूछते हो तुम क्या करें, तो मतलब हुआ कि समझे नहीं। समझ लिया तो करने को कुछ बचता नहीं है। क्योंकि करना ही नासमझी है।

वही अर्जुन पूछे चला जाता है कृष्ण से कि अगर मैं ऐसा करूं तो क्या होगा? अगर वैसा करूं तो क्या होगा? और कृष्ण कहते हैं, तू करने की बात ही छोड़ दे, तू करने की बात उस पर छोड़ दे। तू कर ही मत, तेरे करने से सभी गड़बड़ होगा। तू उसे करने दे।

पहले शराब जीस्त थी अब जीस्त है शराब

कोई पिला रहा है पिए जा रहा हूं मैं

बुद्ध कहते हैं, जान लिया, समझ लिया, हो गया। करने की बात ही नासमझी से उठती है। क्योंकि तुम बोध हो, चैतन्य हो। चित्त क्षणिक है, चंचल है, यह कोई सिद्धांत नहीं, यह केवल सत्य की उदघोषणा है। इसे सुनो, कुछ करना नहीं है। इसे पहचानो, कुछ साधना नहीं है।

"चित्त क्षणिक है, चंचल है। इसे रोक रखना कठिन है। इसका निवारण कठिन है। ऐसे चित्त को मेधावी पुरुष उसी प्रकार ऋजु, सरल, सीधा बनाता है जिस प्रकार वाणकार वाण को।"

अगर वाण तिरछा हो, आड़ा हो, तो निशाने पर नहीं पहुंचता। सीधा चाहिए, ऋजु चाहिए, सरल चाहिए, फिर पहुंच जाता है। तुम्हारा मन तिरछा है या सीधा? तुम्हारा मन जटिल है या सरल? तुम्हारा मन तुम्हारा मन है। तुम वाणकार हो, तुम्हारा मन तुम्हारे हाथ का वाण है। लेकिन तुमने कभी ख्याल किया कि तुम उसे जटिल किए चले जाते हो, तुम उसे उलझाए चले जाते हो।

सीधे-सरल का क्या अर्थ है? सीधे-सरल का अर्थ है, जैसा मन हो उसे वैसा ही देख लेना। तत्क्षण मन सरल हो जाता है। यही है मन का दर्शन। कहो ध्यान, कहो अप्रमाद; या कोई और नाम दो। मन को, उसको जैसा है वैसा ही देख लेने से तत्क्षण सरल हो जाता है।

समझो कि तुम चोर हो, या झूठ बोलने वाले हो। अब एक झूठ बोलने वाला आदमी है, वह मेरे पास आता है, वह कहता है कि मुझे सत्य बोलने की कला सिखा दें। ऐसे ही उलझा है, झूठ से उलझा है, अब एक और सत्य की झंझट भी लेना चाहता है। अब झूठ बोलने वाले आदमी को सच बोलने की कला कैसे सिखाई जाए? क्योंकि उस कला को सीखने में भी वह झूठ बोलेगा।

एक क्रोधी आदमी है, वह कहता है, मुझे अक्रोध सीखना है। अब क्रोधी आदमी को अक्रोध कैसे सिखाया जाए? अगर उससे कहो घर में शांत होकर बैठ जाना, तो वह बैठेगा कैसे? क्रोध ही उबलेगा। और अक्सर ऐसे क्रोधी अगर पूजा-पाठ, प्रार्थना करने लगते हैं, तो घरभर की मुसीबत आ जाती है। इससे तो बेहतर था कि वे नहीं करते थे। क्योंकि बच्चा अगर जरा शोरगुल कर दे तो उनका क्रोध उबल पड़ता है, कि ध्यान में बाधा पड़ गई। या अगर पत्नी के हाथ से बर्तन गिर जाए तो उनका धर्म, ध्यान नष्ट हो गया। क्रोध उनका जाएगा कैसे? वे ध्यान के आधार पर भी क्रोध करेंगे।

हिंसक है कोई, पूछता है, अहिंसक होना है। हिंसक चित्त कैसे अहिंसक होगा? वैसे ही जटिल था, अहिंसा और उपद्रव खड़ा कर देगी। तो वह तरकीबें खोज लेगा अहिंसक दिखने की, लेकिन हिंसक ही रहेगा। और पहले कम से कम हिंसा दिखाई पड़ती थी, अहिंसा में अगर ढक गई तो फिर कभी भी दिखाई न पड़ेगी। कामवासना से भरा हुआ आदमी, वह कहता है, ब्रह्मचर्य साधना है। तुम अपने विपरीत जाने की चेष्टा करोगे, जटिल हो जाओगे।

बुद्ध क्या कहते हैं? बुद्ध कहते हैं, क्रोधी हो तो क्रोध के तथ्य को जानो, अक्रोधी होने की चेष्टा मत करना। क्रोधी हो, क्रोध को स्वीकार करो। कह दो सारे जगत को कि मैं क्रोधी हूं। और उसे छिपाए मत फिरो, क्योंकि छिपाने से कहीं रोग मिटा है! खोल दो उसे, शायद बह जाए। शायद नहीं, बह ही जाता है। अगर हिंसक हो तो स्वीकार कर लो कि मैं हिंसक हूं। और अपने हिंसक होने की दीनता को अस्वीकार मत करो। कहीं अहिंसक होने की चेष्टा में यही तो नहीं कर रहे हो कि हिंसक होने को कैसे स्वीकार करें, तो अहिंसा से ढांक लें। घाव है तो फूल ऊपर से चिपका दें, गंदगी है तो इत्र छिड़क दें, कहीं ऐसा तो नहीं है? ऐसा ही है।

इसलिए तुम पाओगे कि कामुक ब्रह्मचारी हो जाते हैं। और उनके ब्रह्मचर्य से सिवाय कामवासना की दुर्गंध के कुछ भी नहीं उठता। क्रोधी शांत होकर बैठने लगते हैं। लेकिन उनकी शांति में तुम पाओगे कि ज्वालामुखी उबल रहा है क्रोध का। संसारी संन्यासी हो जाते हैं और उनके संन्यास में सिवाय संसार के और कुछ भी नहीं है। मगर तुम भी धोखे में आ जाते हो। क्योंकि ऊपर से वे वेश बदल लेते हैं। ऊपर से उलटा कर लेते हैं। भीतर लोभ है, ऊपर से दान करने लगते हैं।

लेकिन ध्यान रखना, लोभी जब दान करता है तब भी लोभ के लिए ही करता है। होगा लोभ परलोक का कि स्वर्ग में भंजा लेंगे। लिख दी हुंडी। हुंडियां निकाल रहा है। वह स्वर्ग में भंजाएगा। वह सोच रहा है, क्या-क्या स्वर्ग में पाना है इसके बदले में? और ऐसे लोभियों को धर्म में उत्सुक करने के लिए पंडित और पुरोहित मिल जाते हैं। वे कहते हैं, यहां एक दोगे, करोड़ गुना पाओगे। थोड़ा हिसाब भी तो रखो। सौदा कर रहे हो? यह सौदा भी बिल्कुल बेईमानी का है। गंगा के किनारे पंडे बैठे हैं, वे कहते हैं, एक पैसा यहां दान दो, करोड़ गुना पाओगे। यह कोई सौदा हुआ? यह तो जुए से भी ज्यादा झूठा मालूम पड़ता है। एक पैसा देने से कैसे करोड़ गुना पाओगे? करोड़ गुने की आशा दी जा रही है, क्योंकि तुमसे एक पैसा भी छूटेगा नहीं सिवाय इसके। तुम्हारे लोभ को उकसाया जा रहा है। लोभी दान करता है, मंदिर बनवाता है, धर्मशाला बनवाता है। लेकिन यह सब लोभ का ही फैलाव है।

दान तो तभी संभव है जब लोभ मिट जाए। लोभ के रहते दान कैसे संभव है? ब्रह्मचर्य तो तभी संभव है जब वासना खो जाए। वासना के रहते ब्रह्मचर्य कैसे संभव है? ध्यान तो तभी संभव है जब मन चला जाए। मन के रहते ध्यान कैसे संभव है? अगर मन के रहते ध्यान करोगे, तो मन से ही ध्यान करोगे। मन का ध्यान कैसे ध्यान होगा? मन का अभाव ध्यान है।

इसलिए बुद्ध ने एक अभिनव-शास्त्र जगत को दिया--सिर्फ जागकर तथ्यों को देखने का। बुद्ध ने नहीं सिखाया कि तुम विपरीत करने लगो। बुद्ध ने इतना ही सिखाया कि तुम जो हो उसे सरल कर लो, सीधा कर लो। उसके सीधे होने में ही हल है। तुम क्रोधी हो, क्रोध को जानो; छिपाओ मत। ढांको मत, मुस्कुराओ मत।

जीवन को झूठ से छिपाओ मत, प्रगट करो। और तुम चकित हो जाओगे! अगर तुम अपने क्रोध को स्वीकार कर लो, अपनी घृणा को, ईर्ष्या को, द्वेष को, जलन को स्वीकार कर लो, तुम सरल होने लगोगे। तुम पाओगे, एक साधुता उतरने लगी। अहंकार अपने आप गिरने लगा। क्योंकि अहंकार तभी तक रह सकता है जब तक तुम धोखा दो। अहंकार धोखे का सार है। या सब धोखों का निचोड़ है। जितने तुमने धोखे दिए उतना ही बड़ा अहंकार है। क्योंकि तुमने बड़ी चालबाजी की, और तुमने दुनिया को धोखे में डाल दिया, तुम बड़े अकड़े हुए हो। लेकिन तुम उघाड़ दो सब।

जिसको जीसस ने कन्फेशन कहा है--स्वीकार कर लो। और जीसस ने जिसको कहा है कि जिसने स्वीकार कर लिया वह मुक्त हो गया, उसको ही बुद्ध ने कहा है--बुद्ध कन्फेशन शब्द का उपयोग नहीं कर सकते। क्योंकि

परमात्मा की कोई जगह नहीं है बुद्ध के विचार में। किसके सामने करना है स्वीकार? अपने ही सामने स्वीकार कर लेना है। तथ्य की स्वीकृति में तथ्य से मुक्ति है। तथ्य की स्वीकृति में तथ्य के पार जाना है।

इस बहुमूल्य सूत्र का थोड़ा सा जीवन में उपयोग करोगे, तुम चकित हो जाओगे; तुम्हारे हाथ में कीमिया लग गई, एक कुंजी लग गई। तुम जो हो उसे स्वीकार कर लो। चोर हो चोर। झूठे हो झूठे। बेईमान हो बेईमान। क्या करोगे तुम? उस स्वीकृति में तुम पाओगे कि अचानक तुम जो थे वह बदलने लगा। वह नहीं बदलता था, क्योंकि तुम छिपाते थे। जैसे घाव को खोल दो खुली रोशनी में, सूरज की किरणें पड़ें, ताजी हवाएं छुएं, घाव भरने लगता है। ऐसे ही ये भीतर के घाव हैं। इन्हें तुम जगत के सामने खोल दो, ये भरने लगते हैं।

इस स्थिति को बुद्ध कहते हैं--मेधावी पुरुष, बुद्धिमान व्यक्ति, जिसको थोड़ी भी अकल है। बाकी ये जो उलटे काम कर रहे हैं--क्रोधी अक्रोधी बनने की, हिंसक अहिंसक बनने की--ये मूढ़ हैं। ये मेधावी नहीं हैं। ये समय गंवा रहे हैं। ये कभी कुछ न बन पाएंगे। ये मूल ही चूक गए। यह पहले कदम पर ही भूल हो गई।

"मेधावी पुरुष उसी प्रकार ऋजु, सरल, सीधा बना लेता है अपने चित्त को, जिस प्रकार वाणकर वाण को।"

जिसकी तुम आकांक्षा करोगे, उससे ही तुम वंचित रहोगे। एस धम्मो सनंतनो। जिसको तुम स्वीकार कर लोगे, उससे ही तुम मुक्त हो जाओगे। जिसको तुम मांगोगे नहीं, वह तुम्हारे पीछे आने लगता है। और जिसको तुम मांगते हो, वह दूर हटता चला जाता है। तुम्हारी मांग हटाती है दूर।

है हुसूले-आरजू का राज तर्के-आरजू

मैंने दुनिया छोड़ दी तो मिल गई दुनिया मुझे

जीवन में सफलता का राज, आकांक्षा की सफलता का राज यही है, कि आकांक्षा छोड़ दी।

है हुसूले-आरजू का राज तर्के-आरजू

मैंने दुनिया छोड़ दी तो मिल गई दुनिया मुझे

तुमने अगर अक्रोध को पाने की दौड़ छोड़ दी, तुम क्रोध को स्वीकार कर लिए--था, करोगे क्या, छिपाओगे कहां? किससे छिपाना है? छिपाकर ले जाओगे कहां? अपने ही भीतर और समा जाएगा, और जड़ें गहरी हो जाएंगी। हिंसक थे, हिंसा स्वीकार कर ली! और तुम अचानक हैरान होओगेः हिंसा गई और अहिंसा उपलब्ध हो गई।

जिसको भी पाने की तुम दौड़ करोगे वही न मिलेगा। अहिंसक होना चाहोगे, अहिंसक न हो पाओगे। शांत होना चाहोगे, शांत न हो पाओगे। संन्यासी होना चाहोगे, संन्यासी न हो पाओगे। जो होना है, वह चाह से नहीं होता। चाह से चीजें दूर हटती जाती हैं। चाह बाधा है। तुम जो हो बस उसी के साथ राजी हो जाओ, तुम तथ्य से जरा भी न हटो, तुम भविष्य में जाओ ही मत, तुम वर्तमान को स्वीकार कर लो--मैंने दुनिया छोड़ दी तो मिल गई दुनिया मुझे।

भागती फिरती थी दुनिया जब तलब करते थे हम

जब हमें नफरत हुई वह बेकरार आने को है

तुम जिसके पीछे जाओगे, तुम्हारे पीछे जाने से ही तुम उसे अपने पीछे नहीं आने देते। तुम पीछे जाना बंद करो, तुम खड़े हो जाओ। और जो तुमने चाहा था, जो तुमने मांगा था, वह बरस जाएगा। लेकिन वह बरसता तभी है जब तुम्हारे भीतर भिखारी का पात्र नहीं रह जाता। मांगने वाले का पात्र नहीं रह जाता। जब तुम सम्राट की तरह खड़े होते हो। इसको ही मैं मालिक होना कहता हूं। तुम जो भी हो, वही होकर तुम मालिक हो

सकते हो। तुमने कुछ और होना चाहा तो तुम कैसे मालिक हो सकते हो? तब तो मांग रहेगी और तुम भिखारी रहोगे।

आज, अभी, इसी क्षण तुम मालिक हो सकते हो। मांग छोड़ते ही आदमी मालिक हो जाता है। और थोड़े ही मालिक होने का कोई उपाय है! तुम अगर मुझसे पूछो, कैसे? फिर तुम चूके। क्योंकि तुमने फिर मांग के लिए रास्ता बनाया। तुमने कहा कि ठीक कहते हैं, मालिक तो मैं भी होना चाहता हूं।

मैं तुमसे कहता हूं, तुम हो सकते हो इसी क्षण। तुम हो, आंखभर खोलने की बात है। तुम कहते हो कि होना तो मैं भी चाहता हूं। जो तथ्य है, तुम उसे चाह बनाते हो। चाह बनाकर तुम तथ्य को दूर हटाते हो। फिर तथ्य जितना दूर हटता जाता है, उतनी तुम ज्यादा चाह करते हो। जितनी ज्यादा तुम चाह करते हो, उतना तथ्य और दूर हट जाता है। क्योंकि चाह से तथ्य का कोई संबंध कैसे जुड़ेगा? तथ्य तो है। और चाह कहती है, होना चाहिए। इन दोनों में कहीं मेल नहीं होता।

बुद्ध का शास्त्र है कि तुम तथ्य को देखो। और जो है, उससे रत्तीभर यहां-वहां हटने की कोशिश मत करना। यही कृष्णमूर्ति का पूरा सार-संचय है, कि तुम जो हो उससे रत्तीभर यहां-वहां हटने की कोशिश मत करना। हो, वही हो। उससे भिन्न जाने की चेष्टा की कि भटके। उससे विपरीत जाने की चेष्टा की कि फिर तो तुमने अनंत दूरी पर कर दी मंजिल। स्वीकार में, तथाता में क्रांति है।

"जिस प्रकार जलाशय से निकालकर जमीन पर फेंक दी गई मछली तड़फड़ाती है, उसी प्रकार यह चित्त मार के फंदे से निकलने के लिए तड़फड़ाता है।"

यह उनकी उस दिन की भाषा है। इसको आज की भाषा में रखना पड़ेगा।

"जिस प्रकार जलाशय से निकालकर जमीन पर फेंक दी गई मछली तड़फड़ाती है... ।"

जलाशय यानी तथ्य, जो है। जो मछली का जीवन है, उससे निकालकर उसे तट पर फेंक दिया।

"और जैसे मछली तड़फड़ाती है, उसी प्रकार यह चित्त मार के फंदे से निकलने के लिए तड़फड़ाता है।"

मार का फंदा क्या है? आकांक्षा का। मार का फंदा क्या है? आशा का। मार का फंदा क्या है? कुछ होने की आकांक्षा और दौड़।

जीसस के जीवन में उल्लेख है कि जब चालीस दिन के ध्यान के बाद वे परम स्थिति के करीब पहुंचने लगे, तो शैतान प्रगट हुआ। वह शैतान कोई और नहीं है, वह तुम्हारा मन है। जो मरते वक्त ऐसे ही भभककर जलता है जैसे बुझते वक्त दिया आखिरी लपट लेता है। मन का अर्थ है, वही जो अब तक तुमसे कहता था, कुछ होना है... कुछ होना है... । जो तुम्हें दौड़ाए रखता था। ध्यान की आखिरी घड़ी आने लगी जीसस की, मन मौजूद हुआ। जीसस की भाषा में शैतान, बुद्ध की भाषा में मार। मन ने कहा, तुम्हें जो बनना हो मैं बना दूं। जीसस से कहा, तुम्हें जो बनना हो मैं बना दूं। सारे संसार का सम्राट बना दूं। तीनों लोकों का सम्राट बना दूं। तुम बोलो, तुम्हें जो बनना हो मैं तुम्हें बना दूं। जीसस मुस्कुराए और उन्होंने कहा, तू पीछे हट। शैतान, पीछे हट! क्या मतलब है जीसस का? जीसस यह कह रहे हैं, अब तू और चकमे मत दे बनाने के, बनने के। अब तो जो मैं हूं, पर्याप्त है। तू पीछे हट। तू मुझे राह दे।

बुद्ध जब परम घड़ी के करीब पहुंचने लगे तो वही घटना है। मार मौजूद हुआ। मार यानी मन। और मन ने कहा, अभी मत छोड़ो आशा। क्योंकि उस सांझ... बुद्ध संसार से तो छः साल पहले मुक्त हो गए थे, छः साल से वे मोक्ष की तलाश में लगे थे, और छः साल में थक गए। क्योंकि तलाश से कभी कुछ मिला ही नहीं है। बुद्ध को नहीं मिला, तुम्हें कैसे मिलेगा? तलाश तो भटकने का उपाय है, पहुंचने का नहीं। उस दिन वे थक गए तलाश से

भी, मोक्ष भी व्यर्थ मालूम पड़ा। संसार तो व्यर्थ था, आज मोक्ष भी व्यर्थ हो गया। उन्होंने सांझ, जिस वृक्ष के नीचे थोड़ी देर बाद वे बुद्धत्व को उपलब्ध हुए, अपना सिर टेक दिया और उन्होंने कहा, अब कुछ पाना नहीं है। मार उपस्थित हुआ, उसने कहा, इतनी जल्दी आशा मत छोड़ो। अभी बहुत कुछ किया जा सकता है। अभी तुमने सब नहीं कर लिया है। अभी बहुत साधन शेष हैं। मैं तुम्हें बताता हूं।

लेकिन बुद्ध ने उसकी एक न सुनी। वे लेटे ही रहे। वे विश्राम में ही रहे। मार उन्हें पुनः न खींच पाया दौड़ में। मार ने सब तरह से चेष्टा की कि अभी मोक्ष को पाने का यह उपाय हो सकता है। सत्य को पाने का यह उपाय हो सकता है। वे उपेक्षा से देखते रहे।

जीसस ने तो इतना भी कहा था शैतान से, हट पीछे, बुद्ध ने उतना भी न कहा। क्योंकि हट पीछे में भी जीसस थोड़े तो हार गए। बुद्ध ने इतना भी न कहा। बौद्धशास्त्र कहते हैं, बुद्ध सुनते रहे उपेक्षा से। इतना भी रस न लिया कि इनकार भी करें। इनकार में भी रस तो होता ही है। स्वीकार भी रस है, इनकार भी रस है। बुद्ध ने जीसस से भी बड़ी प्रौढ़ता का प्रदर्शन किया। उससे भी बड़ी प्रौढ़ता का सबूत दिया। बुद्ध सुनते रहे। मार थोड़ी-बहुत देर चेष्टा किया, बड़ा उदास हुआ। यह आदमी कुछ बोलता ही नहीं। यह इतना भी नहीं कहता कि हट यहां से, मुझे डुबाने की कोशिश मत कर। अब मुझे और मत भटका। इतना भी बुद्ध कहते तो भी थोड़ा चेष्टा करने की जरूरत थी। लेकिन इतना भी न कहा।

कहते हैं, मार उस रात विदा हो गया। इस आदमी से सब संबंध छूट गए। यही घड़ी है समाधि की। जब तुम मन के विपरीत भी नहीं। जब तुम मन से यह भी नहीं कहते, तू जा। तुम मन से यह भी नहीं कहते कि अब बंद भी हो, अब विचार न कर, अब मुझे शांत होने दे, इतना भी नहीं कहते, तभी तुम शांत हो जाते हो। क्योंकि मन फिर तुम्हारे ऊपर कोई कब्जा नहीं रख सकता। इतना भी बल मन का न रहा कि वह तुम्हें अशांत कर सके। इतना भी बल मन का न रहा कि वह तुम्हारे ध्यान में बाधा डाल सके। तुम मन के पार हो गए। उसी रात, सुबह भोर के तारे के साथ, आखिरी तारा डूबता था और बुद्ध परम प्रज्ञा को उपलब्ध हुए।

जिस प्रकार जलाशय से निकालकर जमीन पर फेंक दी गई मछली तड़फड़ाती है, ऐसे ही तुम तड़फड़ा रहे हो, चित्त तड़फड़ा रहा है। क्योंकि तथ्य और सत्य के जलाशय के बाहर आशा के तट पर पड़े हो। कुछ होना है, ऐसा भूत सवार है। जो हो, उसके अतिरिक्त हो कैसे सकोगे कुछ? जो हो, वही हो सकते हो। उसके बाहर, उसके पार कुछ भी नहीं है। लेकिन मन पर एक भूत सवार है, कुछ होना है। गरीब हैं तो अमीर होना है। बीमार हैं तो स्वस्थ होना है। शरीरधारी हैं तो अशरीरधारी होना है। जमीन पर हैं तो स्वर्ग में होना है। संसार में हैं तो मोक्ष में होना है। कुछ होना है। बिकमिंग। "है" से संबंध नहीं है, होने से संबंध है।

होना ही मार है। होना ही शैतान है। और होने के तट पर मछली जैसा तुम तड़फड़ाते हो। लेकिन तट छोड़ते नहीं। जितने तड़फड़ाते हो उतना सोचते हो, तड़फड़ाहट इसीलिए है कि अब तक हो नहीं पाया; जब हो जाऊंगा, तड़फड़ाहट मिट जाएगी। और दौड़ में लगते हो। तर्क की भ्रांति तुम्हें और तट की तरफ सरकाए ले जाती है। जब कि पास ही सागर है तथ्य का। उसमें उतरते ही मछली राजी हो जाती। उसमें उतरते ही मछली की सब बेचैनी खो जाती। इतने ही करीब, जैसे तट पर तड़फती मछली है, उससे भी ज्यादा करीब तुम्हारा सागर है।

"जिस प्रकार जलाशय से निकालकर जमीन पर फेंक दी गई मछली तड़फड़ाती है, उसी प्रकार यह चित्त मार के फंदे से निकलने के लिए तड़फड़ाता है।"

लेकिन हर तड़फड़ाहट इसे फंदे में उलझाए चली जाती है। क्योंकि तड़फड़ाहट में भी यह मार की भाषा का ही उपयोग करता है, समझ का नहीं। वहां भी वासना का ही उपयोग करता है। दुकान पर बैठे लोग दुखी हैं--जो पाना था नहीं मिला। मंदिर में बैठे लोग दुखी हैं--जो पाना था नहीं मिला।

जीसस के जीवन में उल्लेख है, वे एक गांव से गुजरे। उन्होंने कुछ लोगों को छाती पीटते, रोते देखा। पूछा कि क्या मामला है? किसलिए रो रहे हो? कौन सी दुर्घटना घट गई? उन्होंने कहा, कोई दुर्घटना नहीं घटी, हम नर्क के भय से घबड़ा रहे हैं।

कहां है नर्क? मगर मन ने नर्क के भय खड़े कर दिए हैं, उनसे घबड़ा रहे हैं।

जीसस थोड़े आगे गए, उन्होंने कुछ और लोग देखे जो बड़े उदास बैठे थे, जैसा मंदिरों में लोग बैठे रहते हैं। बड़े गंभीर। जीसस ने पूछा, क्या हुआ तुम्हें? कौन सी मुसीबत आई? कितने लंबे चेहरे बना लिए हैं? क्या हो गया? उन्होंने कहा, कुछ भी नहीं, हम स्वर्ग की चिंता में चिंतातुर हैं--स्वर्ग मिलेगा या नहीं?

जीसस और आगे बढ़े। उन्हें एक वृक्ष के नीचे कुछ लोग बड़े प्रमुदित, बड़े शांत, बड़े आनंदित बैठे मिले। उन्होंने कहा, तुम्हारे जीवन में कौन सी रसधार आ गई? तुम इतने शांत, इतने प्रसन्न, इतने प्रफुल्लित क्यों हो? उन्होंने कहा, हमने स्वर्ग और नर्क का ख्याल छोड़ दिया।

स्वर्ग है सुख, जो तुम पाना चाहते हो। नर्क है दुख, जिससे तुम बचना चाहते हो। दोनों भविष्य हैं। दोनों कामना में हैं। दोनों मार के फंदे हैं। जब तुम दोनों को ही छोड़ देते हो, अभी और यहीं जिसे मोक्ष कहो, निर्वाण कहो, वह उपलब्ध हो जाता है।

निर्वाण तुम्हारा स्वभाव है। तुम जो हो उसमें ही तुम उसे पाओगे। होने की दौड़ में तुम उससे चूकते चले जाओगे।

सुलगना और जीना यह कोई जीने में जीना है

लगा दे आग अपने दिल में दीवाने धुआं कब तक

यह जो होने की आकांक्षा है, इससे आग नहीं पैदा होती, सिर्फ धुआं ही धुआं पैदा होता है। बुद्ध का वचन है कि वासना से भरा चित्त गीली लकड़ी की भांति है। उसमें आग लगाओ तो लपट नहीं निकलती, धुआं ही धुआं निकलता है। लकड़ी जब सूखी होती है तब उससे लपट निकलती है। जब तक वासना है तुम्हारी समझ में, तुम्हारे जीवन में आग न होगी। तुम्हारे जीवन में रोशनी और प्रकाश न होगा। धुआं ही धुआं होगा। अपने ही धुएं से तुम्हारी आंखें खराब हुई जा रही हैं। अपने ही धुएं से तुम देखने में असमर्थ हुए जा रहे हो, अंधे हुए जा रहे हो। अपने ही धुएं से तुम्हारी आंखें आंसुओं से भरी हैं, और जीवन का सत्य तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता है।

सुलगना और जीना यह कोई जीने में जीना है

लगा दे आग अपने दिल में दीवाने धुआं कब तक

लेकिन धुआं तब तक उठेगा ही जब तक कोई भी वासना का गीलापन तुम में रह गया है। लकड़ी जब तक गीली है, धुआं उठेगा। लकड़ी से धुआं नहीं उठता। गीलेपन से धुआं उठता है। लकड़ी में छिपे जल से धुआं उठता है। तुमसे धुआं नहीं उठ रहा है। तुम्हारे भीतर जो वासना की आर्द्रता है, गीलापन है, उससे धुआं उठ रहा है।

त्यागी बुद्ध ने उसको कहा है जो सूखी लकड़ी की भांति है। जिसने वासना का सारा ख्याल छोड़ दिया।

"जिसका निग्रह करना बहुत कठिन है और जो बहुत तरल है, हल्के स्वभाव का है और जो जहां चाहे वहां झट चला जाता है, ऐसे चित्त का दमन करना श्रेष्ठ है। दमन किया हुआ चित्त सुखदायक होता है।"

दमन शब्द को ठीक से समझ लेना। उस दिन इसके अर्थ बहुत अलग थे जब बुद्ध ने इसका उपयोग किया था। अब अर्थ बहुत अलग हैं। फ्रायड के बाद दमन शब्द के अर्थ बिल्कुल दूसरे हो गए हैं। भाषा वही नहीं रह जाती, रोज बदल जाती है। भाषा तो प्रयोग पर निर्भर करती है।

बुद्ध के समय में, पतंजलि के समय में दमन का अर्थ बड़ा और था। दमन का अर्थ था, मन में, जीवन में, तुम्हारे अंतर्तम में, अगर तुम क्रोध कर रहे हो या तुम अशांत हो, बेचैन हो, तो तुम एक विशिष्ट मात्रा की ऊर्जा नष्ट कर रहे हो। स्वभावतः जब तुम क्रोध करोगे, थकोगे; क्योंकि ऊर्जा नष्ट होगी; जब तुम कामवासना से भरोगे, तब भी ऊर्जा नष्ट होगी। जब तुम उदास होओगे, दुखी होओगे, तब भी ऊर्जा नष्ट होगी।

एक बड़ी हैरानी की बात है कि सिर्फ शांति के क्षणों में ऊर्जा नष्ट नहीं होती, और आनंद के क्षणों में ऊर्जा बढ़ती है। नष्ट होना तो दूर, विकसित होती है। प्रमुदित होती है। इसलिए बुद्ध कहते हैं, अप्रमाद में प्रमुदित होओ। दुख में घटती है। शांति में थिर रहती है। आनंद में बढ़ती है। और जब भी तुम कोई नकारात्मक, निषेधात्मक भाव में उलझते हो तब तुम्हारी ऊर्जा व्यर्थ जा रही है। तुममें छेद हो जाते हैं। जैसे घड़े में छेद हों और तुम उसमें पानी भरकर रख रहे हो; वह बहा जा रहा है!

बुद्ध या पतंजलि जब कहते हैं दमन--चित्त का दमन--तो वे यह नहीं कहते हैं कि चित्त में क्रोध को दबाना है। वे यह कहते हैं कि चित्त में जिन छिद्रों से ऊर्जा बहती है उन छिद्रों को बंद करना है। और जो ऊर्जा क्रोध में संलग्न होती है, उस ऊर्जा को जीवन की विधायक दिशाओं में संलग्न करना है।

इसे कभी ख्याल कर के देखो। तुम्हारे मन में क्रोध उठा है। किसी ने गाली दे दी, या किसी ने अपमान कर दिया, या घर में किसी ने तुम्हारी कोई बहुमूल्य चीज तोड़ दी और तुम क्रोधित हो गए हो। एक काम करो। जाकर, घर के बाहर बगीचे में कुदाली लेकर एक दो फिट का गड्ढा खोद डालो। और तुम बड़े हैरान होओगे कि गड्ढा खोदते-खोदते क्रोध तिरोहित हो गया। क्या हुआ? जो क्रोध तुम्हारे हाथों में आ गया था, जो किसी को मारने को उत्सुक हो गया था, वह ऊर्जा उपयोग कर ली गई। या घर के दौड़कर तीन चक्कर लगा आओ। और तुम पाओगे कि लौटकर तुम हल्के हो गए। वह जो क्रोध उठा था, जा चुका।

यह तो क्रोध का रूपांतरण हुआ। इसको ही बुद्ध और महावीर और पतंजलि ने दमन कहा है। फ्रायड ने दमन कहा है--तुम्हारे भीतर क्रोध उठा, उसको भीतर दबा लो, प्रगट मत करो। तो खतरनाक है। तो बहुत खतरनाक है। उससे तो बेहतर है तुम प्रगट कर दो। क्योंकि क्रोध अगर भीतर रह जाएगा, नासूर बनेगा। नासूर अगर सम्हालते रहे, सम्हालते रहे, सेते रहे, तो आज नहीं कल कैंसर हो जाएगा।

जितनी मनुष्यता सभ्य होती चली जाती है, उतनी खतरनाक बीमारियों का फैलाव बढ़ता जाता है। कैंसर बड़ी नई बीमारी है। वह बहुत सभ्य आदमी को ही हो सकती है। जंगलों में रहने वाले लोगों को नहीं होती। आयुर्वेद में तो कुछ रोगों को राजरोग कहा गया है--वे सिर्फ राजाओं को ही होते थे। क्षयरोग को राजरोग कहा है। वह हर किसी को नहीं होता था। उसके लिए बहुत सभ्यता का तल चाहिए, बहुत सुसंस्कारित जीवन चाहिए, जहां तुम अपने भावावेशों को सुगमता से प्रगट न कर सको, जहां तुम्हें झूठे भाव प्रगट करने पड़ें; जहां रोने की हालत हो वहां मुस्कुराना पड़े, और जहां गर्दन मिटा देने की, तोड़ देने की इच्छा हो रही थी, वहां धन्यवाद देना पड़े। तो तुम्हारे भीतर ये दबे हुए भाव धीरे-धीरे घाव बन जाएंगे।

फ्रायड का कहना बिल्कुल सच है कि दमन खतरनाक है। लेकिन बुद्ध, महावीर और पतंजलि जिसको दमन कहते हैं, वह खतरनाक नहीं है। वे किसी और ही बात को दमन कहते हैं। वे कहते हैं दमन रूपांतरण को। निषेध को विधेयक में बदल देने को वे दमन कहते हैं। और उसी मन को वे कहते हैं सुख उपलब्ध होगा।

"दमन किया हुआ चित्त सुखदायक होता है।"

वह लक्षण है। जिसको फ्रायड दमन कहता है, वह चित्त तो बड़ा दुखदायी हो जाता है, वह तो बड़े ही दुख से भर जाता है।

"दमन किया हुआ चित्त सुखदायक होता है।"

तो ध्यान रखना, फ्रायड के अर्थों में दमन से बचना और बुद्ध के अर्थों में दमन को करना। क्रोध उठे तो तुम्हारे भीतर एक ऊर्जा उठी है, उसका कुछ उपयोग करो अन्यथा वह घातक हो जाएगी। अगर तुम दूसरे के ऊपर क्रोध को फेंकोगे तो दूसरे को नुकसान होगा; और क्रोध और क्रोध लाता है। वैर से वैर मिटता नहीं। उसका कोई अंत नहीं है। वह सिलसिला अंतहीन है। अगर तुम क्रोध को भीतर दबाओगे तो तुम्हारे भीतर घाव हो जाएगा, वह घाव भी खतरनाक है। वह तुम्हें रुग्ण कर देगा। तुम्हारे जीवन की खुशी खो जाएगी।

तो न तो दूसरे पर क्रोध फेंको, न अपने भीतर क्रोध को दबाओ, क्रोध को रूपांतरित करो। घृणा उठे, क्रोध उठे, ईर्ष्या उठे, इन शक्तियों का सदुपयोग करो। मार्ग के पत्थर भी, बुद्धिमान व्यक्ति मार्ग की सीढ़ियां बना लेते हैं। और तब तुम बड़े सुख को उपलब्ध होओगे। दो कारण से। एक तो क्रोध करके जो दुख उत्पन्न होता, वह नहीं होगा। क्योंकि तुमने किसी को गाली दे दी इससे कुछ सिलसिला अंत नहीं हो गया। वह दूसरा आदमी फिर गाली देने की प्रतीक्षा करेगा। अब उसके ऊपर क्रोध घिरा है, वह भी तो क्रोध करेगा। अगर तुमने क्रोध को दबा लिया तो तुम्हारे भीतर के स्रोत विषाक्त हो जाते हैं। क्रोध जहर है। तुम्हारे जीवन का सुख धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है। तुम फिर प्रसन्न नहीं हो सकते। प्रसन्नता खो ही जाती है। तुम हंसोगे भी तो झूठ। ओंठों पर रहेगी हंसी; तुम्हारे प्राण तक उसका कंपन न पहुंचेगा। तुम्हारे हृदय से न उठेगी। तुम्हारी आंखें कुछ और कहेंगी, तुम्हारे ओंठ कुछ और कहेंगे। तुम धीरे-धीरे टुकड़े-टुकड़े में टूट जाओगे।

तो न तो दूसरे पर क्रोध करने से तुम सुखी हो सकते हो, क्योंकि कोई दूसरे को दुखी करके कब सुखी हो पाया! और न तुम अपने भीतर क्रोध को दबाकर सुखी हो सकते हो, क्योंकि वह क्रोध उबलने के लिए तैयार होगा, इकट्ठा होगा। और रोज-रोज तुम क्रोध को इकट्ठा करते चले जाओगे, भीतर भयंकर उत्पात हो जाएगा। किसी भी दिन तुमसे पागलपन प्रगट हो सकता है। किसी भी दिन तुम विक्षिप्त हो सकते हो। एक सीमा तक तुम बैठे रहोगे अपने ज्वालामुखी पर, लेकिन विस्फोट किसी न किसी दिन होगा। दोनों ही खतरनाक हैं।

रूपांतरण चाहिए। क्रोध की ऊर्जा को विधेय में लगा दो। कुछ न करते बन सके, दौड़ आओ। क्रोध उठा है, नाच लो। तुम थोड़ा प्रयोग करके देखो। जब क्रोध उठे तो नाचकर देखो। जब क्रोध उठे तो एक गीत गाकर देखो। जब क्रोध उठे तो घूमने निकल जाओ। जब क्रोध उठे तो किसी काम में लग जाओ, खाली मत बैठो। क्योंकि जो ऊर्जा है उसका उपयोग कर लो। और तुम पाओगे कि जल्दी ही तुम्हें एक सूत्र मिल गया, एक कुंजी मिल गई--कि जीवन के सभी निषेधात्मक भाव उपयोग किए जा सकते हैं। राह के पत्थर सीढ़ियां बन सकते हैं।

जमीनो-आसमां से तंग है तो छोड़ दे उनको

मगर पहले नए पैदा जमीनो-आसमां कर ले

ध्यान रखना, जो गलत है उसे छोड़ने से पहले सही को पैदा कर लेना जरूरी है। नहीं तो गलत की जो ऊर्जा मुक्त होगी, वह कहां जाएगी?

तुम मेरे पास आते हो कि क्रोध हमें छोड़ना है। लेकिन क्रोध में बहुत ऊर्जा सन्निविष्ट है। तुमने बहुत सी शक्ति क्रोध में लगाई है, काफी इन्वेस्ट किया है क्रोध में। अगर आज क्रोध एकदम बंद हो जाएगा तो तुम्हारी

ऊर्जा जो क्रोध से मुक्त होगी, उसका तुम क्या करोगे? वह तुम्हारे ऊपर बोझिल हो जाएगी। वह भार हो जाएगी। तुम्हारी छाती पर पत्थर हो जाएगी।

जमीनो-आसमां से तंग है तो छोड़ दे उनको

और जिस चीज से भी तंग हो, उसे छोड़ना ही है। लेकिन एक बात ध्यान रखनी है--

मगर पहले नए पैदा जमीनो-आसमां कर ले

अगर ये जमीन और आसमां छोड़ने हैं तो दूसरे जमीन और आसमां भीतर पैदा कर ले, फिर इनको छोड़ देना। पैदा करना पहले जरूरी है। गलत को छोड़ने से ज्यादा, अंधेरे से लड़ने की बजाय, रोशनी को जला लेना जरूरी है।

गलत से मत लड़ो, ठीक में जागो। सम्यक को उठाओ। ताकि तुम्हारी ऊर्जा जो गलत से मुक्त हो, वह सम्यक की धारा में प्रवाहित हो जाए। अन्यथा उसकी बाढ़ तुम्हें डुबा देगी। उसकी बाढ़ के लिए तुम पहले से नहरें बना लो। ताकि उनको तुम अपने जीवन के खेतों तक पहुंचा सको; ताकि तुम्हारे दबे बीज अंकुरित हो सकें; ताकि तुम जीवन की फसल काट सको।

"दूरगामी, अकेला विचरने वाला, अशरीरी, सूक्ष्म और गूढ़ाशयी, इस चित्त को जो संयम करते हैं, वे ही मार के बंधन से मुक्त होते हैं।"

बंधन से मुक्त होने की उतनी चेष्टा मत करना, जितना संयम। संयम शब्द भी समझने जैसा है। इसका अर्थ कंट्रोल नहीं होता, नियंत्रण नहीं होता। संयम का अर्थ होता है, संतुलन।

यह शब्द विकृत हो गया है। गलत लोगों ने बहुत दिन तक इसकी गलत व्याख्या की है। तुम जो आदमी नियंत्रण करता है उसको संयमी कहते हो। मैं उसे संयमी कहता हूं जो संतुलन करता है। इन दोनों में बड़ा फर्क है। नियंत्रण करने वाला दमन करता है, फ्रायड के अर्थों में। संतुलन करने वाला दमन करता है, बुद्ध के अर्थों में। संतुलन करने वाले को नियंत्रण नहीं करना पड़ता। नियंत्रण तो उसी को करना पड़ता है जिसके जीवन में संतुलन नहीं है। जिसके जीवन में डर है, कि अगर उसने संतुलन न रखा, नियंत्रण न रखा, तो चीजें हाथ के बाहर हो जाएंगी। जो डरा-डरा जीता है।

तुम्हारे साधु-संन्यासी ऐसे ही जी रहे हैं--डरे-डरे, कंपे-कंपे, पूरे वक्त घबड़ाए हुए कि कहीं कोई भूल न हो जाए। यह तो भूल से बहुत ज्यादा संबंध हो गया। यह तो भूल से बड़ा भय हो गया। कहीं भूल न हो जाए!

जीवन की दिशा ठीक करने की तरफ होनी चाहिए, भूल से बचने की तरफ नहीं। ध्यान रखना, जो आदमी भूल से ही बच रहा है वह कहीं भी न पहुंच पाएगा। क्योंकि यह जो भूल से बहुत डर गया है, वह चल ही न सकेगा। उसे डर ही लगा रहेगा, कहीं भूल न हो जाए। कहीं ऐसा न हो कि प्रेम में ईर्ष्या पैदा हो जाए तो वह प्रेम ही न करेगा; क्योंकि ईर्ष्या का भय है। किसी से संबंध न बनाएगा कि कहीं संबंध में कहीं शत्रुता न आ जाए। शत्रुता का भय है; तो मित्रता से वंचित रह जाएगा। और अगर तुम शत्रु न भी बनाए और मित्र भी न बना सके, तो तुम्हारा जीवन एक रेगिस्तान होगा। तुम ईर्ष्या से बच गए, लेकिन साथ ही साथ प्रेम भी न कर पाए, तो तुम्हारा जीवन एक सूखा, रसहीन मरुस्थल होगा, जिसमें कोई मरूद्यान भी न होगा, जिसमें छाया की कोई जगह न होगी।

ईर्ष्या से बचना है, प्रेम से नहीं बच जाना है। इसलिए ध्यान प्रेम पर रखना। ईर्ष्या से मत डरे रहना, भूल से मत डरना। दुनिया में एक ही भूल है, और वह भूल से डरना है। क्योंकि वैसा आदमी फिर चल ही नहीं पाता, उठ ही नहीं पाता। वह घबड़ाकर बैठ जाता है। तो नियंत्रण तो कर लेता है, लेकिन जीवन के सत्य को उपलब्ध

नहीं हो पाता। मुर्दा हो जाता है। महाजीवन को उपलब्ध नहीं होता। संसार से तुम भाग सकते हो, लेकिन वह भागना अगर नियंत्रण का है तो तुम सांसारिक से भी नीचे उतर जाओगे। तुम्हारे जीवन में मरघट की शांति होगी, शिवालय की नहीं। तुम्हारे जीवन में रिक्तता का शून्य होगा, ध्यान का नहीं।

और खालीपन में और ध्यान में बड़ा फर्क है। मन की अनुपस्थिति में, एबसेन्स ऑफ माइंड में, और मन के अनुपस्थित हो जाने में बड़ा फर्क है।

तो अगर तुम पीछे सिकुड़ गए, डर गए, तो यह हो सकता है कि तुम्हारे जीवन में गलतियां न हों, लेकिन ठीक होना भी बंद हो जाएगा। यह बड़ा महंगा सौदा हुआ। गलतियों के पीछे ठीक को गंवा दिया। यह तो ऐसा हुआ, जैसे सोने में कहीं कूड़ा-कर्कट न हो इस डर से सोने को भी फेंक दिया। कूड़ा-कर्कट फेंकना जरूरी है, सोने को शुद्ध करना जरूरी है। लेकिन कूड़े-कर्कट का भय बहुत न समा जाए।

संयम का अर्थ है, जीवन संतुलित हो। संतुलन का अर्थ है, जीवन बोधपूर्वक हो, अप्रमाद का हो। तुम एक-एक कदम होशपूर्वक उठाओ, गिरने का डर मत रखो। गिरना भी पड़े तो घबड़ाने की बात नहीं है। सम्हलने की क्षमता पैदा करो। गिर पड़ो तो उठने की क्षमता पैदा करो। भूल हो जाए तो ठीक करने का बोध पैदा करो। लेकिन चलने से मत डर जाना। किनारे उतरकर बैठ मत जाना कि रास्ते पर कांटे भी हैं, भूलें भी हैं, लुटेरे भी हैं--लूट लिए जाएंगे, भटक जाएंगे, इससे तो चलना ही ठीक नहीं।

भारत में यही हुआ। बहुत से लोग रास्ते के किनारे उतरकर बैठ गए; भारत मर गया। धार्मिक नहीं हुआ, सिर्फ मुर्दा हो गया। इससे तो पश्चिम के लोग बेहतर हैं। भूलें उन्होंने बहुत कीं--भूलों से भी क्या डरना! लेकिन जिंदा हैं। और जिंदा हैं तो कभी ठीक भी कर सकते हैं। मुर्दा हो जाना धार्मिक हो जाना नहीं है। धार्मिक हो जाना सोने से कचरे को जला डालना है। लेकिन कचरे के साथ, कचरे के डर से, सोने को फेंक देना नहीं।

तो पश्चिम के धार्मिक होने की संभावना है। लेकिन पूरब बिल्कुल ही जड़ हो गया है। सत्य के साथ भी हमने सौभाग्य नहीं उपलब्ध किया। सत्य हमें बहुत बार उपलब्ध हुआ, बहुत बुद्धों से हमें उपलब्ध हुआ, लेकिन हमने सत्य के जो अर्थ निकाले उन्होंने हमें संकुचित कर दिया, उन्होंने हमें दायरे बना दिए--मुक्त नहीं किया, असीमा नहीं दी। असीम की हमने बात की उपनिषदों से लेकर आज तक, लेकिन हर चीज ने सीमा दे दी।

संयम को नियंत्रण मत समझना। संयम को होश समझना।

"जिसका चित्त अस्थिर है, जो सद्धर्म को नहीं जानता है और जिसकी श्रद्धा डांवाडोल है, उसकी प्रज्ञा परिपूर्ण नहीं हो सकती।"

अब मुझको है करार तो सबको करार है

दिल क्या ठहर गया कि जमाना ठहर गया

अब मुझे चैन मिल गई, तो सबको चैन मिल गई।

तुम्हारा संसार तुम्हारा ही प्रक्षेपण है। अगर तुम बेचैन हो, तो सारा संसार तुम्हें चारों तरफ बेचैन मालूम पड़ता है। अगर तुमने शराब पी ली है और तुम्हारे पैर डगमगाते हैं, तो तुम्हें रास्ते के किनारे खड़े मकान भी डगमगाते दिखाई पड़ते हैं। रास्ते पर जो भी तुम्हें दिखाई पड़ता है, वह डगमगाता दिखाई पड़ता है। जिसका चित्त अस्थिर है, वह जिस संसार में जीएगा वह क्षणभंगुर होगा, चंचल होगा। संसार चंचल नहीं है। तुम्हारे मन के डांवाडोल होने के कारण सब डांवाडोल दिखाई पड़ता है।

अब मुझको है करार तो सबको करार है

दिल क्या ठहर गया कि जमाना ठहर गया

तुम ठहरे कि सब ठहर गया। तुम रुके कि सब रुक गया। तुम चले कि सब चल पड़ता है। तुम्हारा संसार तुम्हारा ही फैलाव है। तुम ही हो तुम्हारे संसार। जिसका चित्त अस्थिर है, उसका सब अस्थिर होगा। जब भीतर की ज्योति ही डगमगा रही है तो तुम्हें सब डगमगाता दिखाई पड़ेगा।

कभी तुमने ख्याल किया, घर में दीया जल रहा हो और उसकी ज्योति डगमगाती हो, तो सब तरफ छायाएं डगमगाती हैं, दीवाल पर बनते हुए बिंब डगमगाते हैं, सब चीजें डगमगाती हैं। छाया ठहर जाएगी, अगर ज्योति ठहर जाए। और छाया को ठहराने की कोशिश में मत लग जाना। छाया को कोई नहीं ठहरा सकता। तुम कृपा करके ज्योति को ही ठहराना।

लोग संसार से मुक्त होने में लग जाते हैं। कहते हैं, क्षणभंगुर है, चंचल है, आज है कल नहीं रहेगा। यह सब तुम्हारे भीतर के कारण है। तुम्हारा मन डांवाडोल है। इसलिए सारा संसार डांवाडोल है। तुम ठहरे कि सब ठहरा। तुम ठहरे कि जमाना ठहर गया।

"जो सद्धर्म को नहीं जानता है, जिसकी श्रद्धा डांवाडोल है।"

अब यह बड़े मजे की बात है। बुद्ध कह रहे हैं, जो सद्धर्म को नहीं जानता उसकी ही श्रद्धा डांवाडोल है। सारे धर्मों ने श्रद्धा को पहले रखा है, बुद्ध ने ज्ञान को पहले रखा है। वे कहते हैं, सद्धर्म को जानोगे तो श्रद्धा ठहरेगी। और धर्मों ने कहा है, श्रद्धा करोगे तो सद्धर्म को जानोगे। और धर्मों ने कहा है, मानोगे तो जानोगे। बुद्ध ने कहा है, जानोगे नहीं तो मानोगे कैसे? जानोगे, तो ही मानोगे।

बुद्ध की बात इस सदी के लिए बहुत काम की हो सकती है। यह सदी बड़ी संदेह से भरी है। इसलिए श्रद्धा की तो बात ही करनी फिजूल है। जो कर सकता है, उससे कहने की कोई जरूरत नहीं। जो नहीं कर सकते, उनसे कहना बार-बार कि श्रद्धा करो, व्यर्थ है। वे नहीं कर सकते, वे क्या करें? तुम श्रद्धा की बात करो तो उस पर भी उन्हें शक आता है। शक आ गया तो आ गया। हटाने का उपाय नहीं। और शक आ चुका है। यह सदी संदेह की सदी है।

इसलिए बुद्ध का नाम इस सदी में जितना मूल्यवान मालूम होता है, किसी का भी नहीं। उसका कारण यही है। जीसस या कृष्ण बहुत दूर मालूम पड़ते हैं। क्योंकि श्रद्धा से शुरुआत है। श्रद्धा ही नहीं जमती, तो शुरुआत ही नहीं होती। पहला कदम ही नहीं उठता। बुद्ध कहते हैं, श्रद्धा की फिकर छोड़ो, जान लो सद्धर्म को, तथ्य को; और जानने का उपाय है--थिर हो जाओ। बुद्ध ने यह कहा है कि ध्यान के लिए श्रद्धा आवश्यक नहीं है। ध्यान तो वैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसलिए तुम ईश्वर को मानते हो, नहीं मानते हो, कुछ प्रयोजन नहीं। बुद्ध कहते हैं, तुम ध्यान कर सकते हो।

ध्यान तुम करोगे, तुम भीतर थिर होने लगोगे; उस थिरता के लिए किसी ईश्वर का आकाश में होना आवश्यक ही नहीं है। ईश्वर ने संसार बनाया या नहीं बनाया, इससे उस ध्यान के थिर होने का कोई लेना-देना नहीं है। ध्यान का थिर होना तो वैसे ही है जैसे आक्सीजन और हाइड्रोजन को मिलाओ और पानी बन जाए। तो कोई वैज्ञानिक यह नहीं कहता कि पहले ईश्वर को मानो तब पानी बनेगा। ध्यान तो एक वैज्ञानिक प्रयोग है। तुम भीतर थिर होने की कला को सीख जाओ, सद्धर्म से परिचय होगा, परिचय से श्रद्धा होगी।

इसलिए बुद्ध जितने करीब हैं इस सदी के और कोई भी नहीं है। क्योंकि यह सदी संदेह की है; और बुद्ध ने श्रद्धा पर जोर नहीं दिया, बोध पर जोर दिया है।

"जो सद्धर्म को नहीं जानता और जिसकी श्रद्धा डांवाडोल है"... होगी ही... "उसकी प्रज्ञा परिपूर्ण नहीं हो सकती।"

बुद्ध शर्तें नहीं दे रहे हैं, बुद्ध केवल तथ्य दे रहे हैं। बुद्ध कहते हैं, ये तथ्य हैं। सद्धर्म का बोध हो, श्रद्धा होगी। श्रद्धा हो, परिपूर्णता होगी। प्रज्ञा परिपूर्ण होगी। ऐसा न हो, तो प्रज्ञा परिपूर्ण न होगी। और जब तक प्रज्ञा परिपूर्ण न हो, जब तक तुम्हारा जानना परिपूर्ण न हो, तुम्हारा जीवन परिपूर्ण नहीं हो सकता।

जानने में ही छिपे हैं सारे स्रोत। क्योंकि मूलतः तुम ज्ञान हो। ज्ञान की शक्ति हो। मूलतः तुम बोध हो। इसी से तो हमने बुद्ध को बुद्ध कहा। बोध के कारण। नाम तो उनका गौतम सिद्धार्थ था। लेकिन जब वे परम प्रज्ञा को और बोध को उपलब्ध हुए, तो हमने उन्हें बुद्ध कहा। तुम्हारे भीतर भी बोध उतना ही छिपा है जितना उनके भीतर था। वह जग जाए तो तुम्हारे भीतर भी बुद्धत्व का आविर्भाव होगा। और जब तक यह न हो, तब तक चैन मत लेना। तब तक सब चैन झूठी है। सांत्वना मत कर लेना। तब तक सांत्वना संतोष नहीं है। तब तक तुम मार्ग में ही रुक गए। मंजिल के पहले ही किसी पड़ाव को मंजिल समझ लिया।

"जिसका चित्त अस्थिर है, जो सद्धर्म को नहीं जानता और जिसकी श्रद्धा डांवाडोल है, उसकी प्रज्ञा परिपूर्ण नहीं हो सकती।"

और प्रज्ञा परिपूर्ण न हो, तो तुम अपूर्ण रहोगे। और तुम अपूर्ण रहो, तो अशांति रहेगी। और तुम अशांत रहो, तो दो ही उपाय हैं। एक, कि तुम शांति को खोजने निकलो। और दो, कि तुम अशांति को समझो।

अशांति को समझना बुद्ध का उपाय है। जिसने अशांति को समझ लिया, वह शांत हो जाता है। और जो शांति की तलाश में निकल गया, वह और नई-नई अशांतियां मोल ले लेता है।

जीवन को जीने के दो ढंग हैं। एक मालिक का और एक गुलाम का। गुलाम का ढंग भी कोई ढंग है! जीना हो तो मालिक होकर ही जीना। अन्यथा इस जीवन से मर जाना बेहतर है। कम से कम मर जाना सच तो होगा। यह जीवन तो बिल्कुल झूठा है। सपना है। गुलाम के ढंग से तुमने जीकर देख लिया, कुछ पाया नहीं। यद्यपि पाने ही पाने की तलाश रही। अब मालिक के ढंग से जीना देख लो। बस शास्त्र बदलना होगा, सूत्र बदलना होगा। इतना ही फर्क करना होगा। अब तक कल के लिए जीते थे, अब आज ही जीयो। अब तक कुछ होने के लिए जीते थे, अब जो हो वैसे ही जीयो। अब तक मूर्च्छा में जीते थे, अब जागकर जीयो, होश से जीयो।

और ध्यान रखना, प्रत्येक कदम होश का बुद्धत्व को करीब लाता है। प्रत्येक कदम होश का तुम्हारे भीतर बुद्धत्व के झरनों को सक्रिय करता है। मेघ किसी भी क्षण बरस सकता है। तुम जरा संयोजन बदलो, और सब तुम्हारे पास है, कुछ जोड़ना नहीं है। और कुछ तुम्हारे पास ऐसा नहीं है जिसे हटाना है। वीणा के तार ढीले हैं, टूटे हैं, जोड़ना है, व्यवस्थित कर देना है। अंगुलियां भी तुम्हारे पास हैं, वीणा भी तुम्हारे पास है। सिर्फ अंगुलियों का वीणा पर, वीणा के तारों पर खेलने का संयोजन करना है। किसी भी क्षण संयम बैठ जाएगा, संगीत उत्पन्न हो सकता है।

आज इतना ही।

बारहवां प्रवचन

उठो... तलाश लाजिम है

पहला प्रश्नः जीवन विरोधाभासी है, असंगतियों से भरा है। तो फिर तर्क, बुद्धि, व्यवस्था और अनुशासन का मार्ग बुद्ध ने क्यों बताया?

प्रश्न जीवन का नहीं है। प्रश्न तुम्हारे मन का है। जीवन को मोक्ष की तरफ नहीं जाना है। जीवन तो मोक्ष है। जीवन नहीं भटका है, जीवन नहीं भूला है। जीवन तो वहीं है जहां होना चाहिए। तुम भटके हो, तुम भूले हो। तुम्हारा मन तर्क की उलझन में है। और यात्रा तुम्हारे मन से शुरू होगी। कहां जाना है, यह सवाल नहीं है। कहां से शुरू करना है, यही सवाल है।

मंजिल की बात बुद्ध ने नहीं की। मंजिल की बात तुम समझ भी कैसे पाओगे? उसका तो स्वाद ही समझा सकेगा। उसमें तो डूबोगे, तो ही जान पाओगे। बुद्ध ने मार्ग की बात कही है। बुद्ध ने तुम जहां खड़े हो, तुम्हारा पहला कदम जहां पड़ेगा, उसकी बात कही है। इसलिए बुद्ध बुद्धि, विचार, अनुशासन, व्यवस्था की बात करते हैं।

नहीं कि उन्हें पता नहीं है कि जीवन कोई व्यवस्था नहीं मानता। जीवन कोई रेल की पटरियों पर दौड़ती हुई गाड़ी नहीं है। जीवन परम स्वतंत्रता है। जीवन के ऊपर कोई नियम नहीं है, कोई मर्यादा नहीं है। जीवन अमर्याद है। वहां न कुछ शुभ है, न अशुभ। जीवन में सर्वस्वीकार है। वहां अंधेरा भी और उजेला भी एक साथ स्वीकार है।

मनुष्य के मन का सवाल है। मनुष्य का मन विरोधाभासी बात को समझ ही नहीं पाता। और जिसको तुम समझ न पाओगे, उसे तुम जीवन में कैसे उतारोगे? जिसे तुम समझ न पाओगे, उससे तुम दूर ही रह जाओगे।

तो बुद्ध ने वही कहा जो तुम समझ सकते हो। बुद्ध ने सत्य नहीं कहा, बुद्ध ने वही कहा जो तुम समझ सकते हो। फिर जैसे-जैसे तुम्हारी समझ बढ़ेगी वैसे-वैसे बुद्ध तुमसे वह भी कहेंगे जो तुम नहीं समझ सकते।

बुद्ध एक दिन गुजरते हैं एक राह से जंगल की। पतझड़ के दिन हैं। सारा वन सूखे पत्तों से भरा है। और आनंद ने बुद्ध से पूछा है कि क्या आपने हमें सब बातें बता दीं जो आप जानते हैं? क्या आपने अपना पूरा सत्य हमारे सामने स्पष्ट किया है? बुद्ध ने सूखे पत्तों से अपनी मुट्ठी भर ली और कहा, आनंद! मैंने तुमसे उतना ही कहा है जितने सूखे पत्ते मेरी मुट्ठी में हैं। और उतना अनकहा छोड़ दिया है जितने सूखे पत्ते इस वन में हैं। वही कहा है जो तुम समझ सको। फिर जैसे तुम्हारी समझ बढ़ेगी वैसे-वैसे वह भी कहा जा सकेगा जो पहले समझा नहीं जा सकता था।

बुद्ध कदम-कदम बढ़े। आहिस्ता-आहिस्ता। तुम्हारी सामर्थ्य देखकर बढ़े हैं। बुद्ध ने तुम्हारी बूंद को सागर में डालना चाहा है।

ऐसे भी फकीर हुए हैं जिन्होंने सागर को बूंद में डाल दिया है। पर वह काम बुद्ध ने नहीं किया। उन्होंने बूंद को सागर में डाला है। सागर को बूंद में डालने से बूंद बहुत घबड़ा जाती है। उसके लिए बहुत बड़ा दिल चाहिए। उसके लिए बड़ी हिम्मत चाहिए। उसके लिए दुस्साहस चाहिए। उसके लिए मरने की तैयारी चाहिए।

बुद्ध ने तुम्हें रफ्ता-रफ्ता राजी किया है। एक-एक कदम तुम्हें करीब लाए हैं। इसलिए बुद्ध के विचार में एक अनुशासन है।

ऐसा अनुशासन तुम कबीर में न पाओगे। कबीर उलटबांसी बोलते हैं। कबीर तुम्हारी फिकर नहीं करते। कबीर वहां से बोलते हैं जहां वे स्वयं हैं, जहां मेघ घिरे हैं अदृश्य के, और अमृत की वर्षा हो रही है। जहां बिन घन परत फुहार--जहां मेघ भी नहीं हैं और जहां अमृत की वर्षा हो रही है। बेबूझ बोलते हैं।

तो कबीर को तो वे बहुत थोड़े से लोग समझ पाएंगे, जो उनके साथ खतरा लेने को राजी हैं। कबीर ने कहा है, जो घर बारै आपना चलै हमारे संग। जिसकी तैयारी हो घर में आग लगा देने की, वह हमारे साथ हो ले। किस घर की बात कर रहे हैं? वह तुम्हारा मन का घर, तुम्हारी बुद्धि की व्यवस्था, तुम्हारा तर्क, तुम्हारी समझ; जो उस घर को जलाने को तैयार हो, कबीर कहते हैं, वह हमारे साथ हो ले।

बुद्ध कहते हैं, घर को जलाने की भी जरूरत नहीं है। एक-एक कदम सही, इंच-इंच सही, धीरे-धीरे सही, बुद्ध तुम्हें फुसलाते हैं। इसलिए बुद्ध वहीं से शुरू करते हैं जहां तुम हो। उन्होंने उतना ही कहा है जो कोई भी तर्कनिष्ठ व्यक्ति समझने में समर्थ हो जाएगा। इसलिए बुद्ध का इतना प्रभाव पड़ा सारे जगत पर। बुद्ध जैसा प्रभाव किसी का भी नहीं पड़ा।

अगर दुनिया में मुसलमान हैं, तो मोहम्मद के प्रभाव की वजह से कम, मुसलमानों की जबर्दस्ती की वजह से ज्यादा। अगर दुनिया में ईसाई हैं, तो ईसा के प्रभाव से कम, ईसाइयों की व्यापारी-कुशलता के कारण ज्यादा। लेकिन अगर दुनिया में बौद्ध हैं, तो सिर्फ बुद्ध के कारण। न तो कोई जबर्दस्ती की गई है किसी को बदलने की, न कोई प्रलोभन दिया गया है। लेकिन बुद्ध की बात मौजूं पड़ी। जिसके पास भी थोड़ी समझ थी, उसको भी बुद्ध में रस आया।

थोड़ा सोचो; बुद्ध ईश्वर की बात नहीं करते। क्योंकि जो भी सोच-विचार करता है, उसे ईश्वर की बात में संदेह पैदा होता है। बुद्ध ने वह बात ही नहीं की। छोड़ो। उसको अनिवार्य न माना। बुद्ध आत्मा तक की बात नहीं करते, क्योंकि जो बहुत सोच-विचार करता है, वह कहता है, यह मैं मान नहीं सकता कि शरीर के बाद बचूंगा। कौन बचेगा? यह सब शरीर का ही खेल है, आज है, कल समाप्त हो जाएगा। किसी ने कभी मरकर लौटकर कहा कि मैं बचा हूं? कभी किसी ने खबर की? ये सब यहीं की बातें हैं। मन को बहलाने के ख्याल हैं।

बुद्ध ने आत्मा की भी बात नहीं कही। बुद्ध ने कहा यह भी जाने दो। क्योंकि ये बातें ऐसी हैं कि प्रमाण देने का तो कोई उपाय नहीं। तुम जब जानोगे, तभी जानोगे; उसके पहले जनाने की कोई सुविधा नहीं। और अगर तुम तर्कनिष्ठ हो, बहुत विचारशील हो, तो तुम मानने को राजी न होओगे। और बुद्ध कहते हैं, कोई ऐसी बात तुमसे कहना जिसे तुम इनकार करो, तुम्हारे मार्ग पर बाधा बन जाएगी। वह इनकार ही तुम्हारे लिए रोक लेगा। बुद्ध कहते हैं, यह भी जाने दो।

बुद्ध कहते हैं कि हम इतना ही कहते हैं कि जीवन में दुख है, इसे तो इनकार न करोगे? इसे तो इनकार करना मुश्किल है। जिसने थोड़ा भी सोचा-विचारा है, वह तो कभी इनकार नहीं कर सकता। इसे तो वही इनकार कर सकता है, जिसने सोचा-विचारा ही न हो। लेकिन जिसने सोचा-विचारा ही न हो वह भी कैसे इनकार करेगा, क्योंकि इनकार के लिए सोचना-विचारना जरूरी है। जिसके मन में जरा सी भी प्रतिभा है, थोड़ी सी भी किरण है, जिसने जीवन के संबंध में जरा सा भी चिंतन-मनन किया है, वह भी देख लेगा। अंधा भी देख लेगा। जड़ से जड़ बुद्धि को भी यह बात समझ में आ जाएगी, जीवन में दुख है। आंसुओं के सिवाय पाया भी

क्या? इसे बुद्ध को सिद्ध न करना पड़ेगा, तुम्हारा जीवन ही सिद्ध कर रहा है। तुम्हारी कथा ही बता रही है। तुम्हारी भीगी आंखें कह रही हैं। तुम्हारे कंपते पैर कह रहे हैं।

तो बुद्ध ने कहा, जीवन में दुख है। यह कोई आध्यात्मिक सत्य नहीं है, यह तो जीवन का तथ्य है। इसे कौन, कब इनकार कर पाया? और बुद्ध ने कहा, दुख है, तो अकारण तो कुछ भी नहीं होता, दुख के कारण होंगे। और बुद्ध ने कहा, दुख से तो मुक्त होना चाहते हो कि नहीं होना चाहते! ईश्वर को नहीं पाना चाहते, समझ में आता है। कुछ सिरफिरों को छोड़कर कौन ईश्वर को पाना चाहता है? कुछ पागलों को छोड़कर कौन आत्मा की फिक्र कर रहा है। समझदार आदमी ऐसे उपद्रवों में नहीं पड़ते। ऐसी झंझटें मोल नहीं लेते। जिंदगी की झंझटें काफी हैं। अब आत्मा और परमात्मा और मोक्ष, इन उलझनों में कौन पड़े?

बुद्ध ने ये बातें ही नहीं कहीं। तुम इनकार कर सको, ऐसी बात बुद्ध ने कही ही नहीं। इसका उन्होंने बड़ा संयम रखा। उन जैसा संयमी बोलने वाला नहीं हुआ है। उन्होंने एक शब्द न कहा जिसमें तुम कह सको, नहीं। उन्होंने तुम्हें नास्तिक होने की सुविधा न दी।

इसे थोड़ा समझना। लोगों ने बुद्ध को नास्तिक कहा है, और मैं तुमसे कहता हूं, कि बुद्ध अकेले आदमी हैं पृथ्वी पर जिन्होंने तुम्हें नास्तिक होने की सुविधा नहीं दी। जिन्होंने तुमसे कहा ईश्वर है, उन्होंने तुम्हें इनकार करने को मजबूर करवा दिया। कहां है ईश्वर? जिन्होंने तुमसे कहा आत्मा है, उन्होंने तुम्हारे भीतर संदेह पैदा किया। बुद्ध ने वही कहा जिस पर तुम संदेह न कर सकोगे। बुद्ध ने आस्तिकता दी। हां ही कहने की सुविधा छोड़ी, न का उपाय न रखा।

बुद्ध बड़े कुशल हैं। उनकी कुशलता को जब समझोगे तो चकित हो जाओगे, कि जिसको तुमने नास्तिक समझा है उससे बड़ा आस्तिक पृथ्वी पर दूसरा नहीं हुआ। और जितने लोगों को परमात्मा की तरफ बुद्ध ले गए, कोई भी नहीं ले जा सका। और परमात्मा की बात भी न की, हद की कुशलता है। चर्चा भी न चलाई। चर्चा तुम्हारी की, पहुंचाया परमात्मा तक। बात तुम्हारी उठाई, समझा-समझाया तुम्हें, सुलझाव में परमात्मा मिला। सुलझाया तुम्हें, सुलझाव में परमात्मा मिला। दुख काटा तुम्हारा, जो शेष बचा वही आनंद है। बंधन दिखाए, मोक्ष की बात न उठाई।

कारागृह में जो बंद है जन्मों-जन्मों से उससे मोक्ष की बात करके क्यों... क्यों उसे शर्मिंदा करते हो? और जो कारागृह में बहुत दिनों तक बंद रह गया है, उसे मोक्ष का ख्याल भी नहीं रहा। उसे अपने पंख भी भूल गए हैं। आज तुम उसे अचानक आकाश में छोड़ भी दो तो उड़ भी न सकेगा। क्योंकि उड़ने के लिए पहले उड़ने का भरोसा चाहिए। तड़फड़ाकर गिर जाएगा।

तुमने कभी देखा। तोते को बहुत दिन तक रख लो पिंजड़े में, फिर किसी दिन खुला द्वार पाकर भाग भी जाए, तो उड़ नहीं पाता। पंख वही हैं, उड़ने का भरोसा खो गया। हिम्मत खो गई। यह याद ही न रही कि हम भी कभी आकाश में उड़ते थे, कि हमने भी कभी पंख फैलाए थे, और हमने भी कभी दूर की यात्रा की थी। वह बातें सपना हो गयीं। आज पक्का नहीं रहा ऐसा हुआ था, कि सिर्फ सपने में देखा है। वह बातें अफवाह जैसी हो गयीं। और इतने दिन तक कारागृह में रहने के बाद कारागृह की आदत हो जाती है। तो तोता तो थोड़े ही दिन रहा है, तुम तो जन्मों-जन्मों रहे हो।

बुद्ध ने कहा, तुमसे मोक्ष की बात करके तुम्हें शर्मिंदा करें! तुमसे मोक्ष की बात करके तुम्हें इनकार करने को मजबूर करें!

क्योंकि ध्यान रखना, जो व्यक्ति बहुत दिन कारागृह में रह गया है वह यह कहना शुरू कर देता है कि कहीं कोई मुक्ति है ही नहीं। यह उसकी आत्मरक्षा है। वह यह कह रहा है कि अगर मोक्ष है तो फिर मैं यहां क्या कर रहा हूं, मैं नपुंसक यहां क्यों पड़ा हूं? अगर मोक्ष है तो मैं मुक्त क्यों नहीं हुआ हूं? फिर सारी जिम्मेवारी अपने पर आ जाती है।

लोग ईश्वर को इसलिए थोड़े ही इनकार करते हैं कि ईश्वर नहीं है। या कि उन्हें पता है कि ईश्वर नहीं है। ईश्वर को इनकार करते हैं, क्योंकि अगर ईश्वर है तो हम क्या कर रहे हैं! तो हमारा सारा जीवन व्यर्थ है। लोग मोक्ष को इसलिए इनकार करते हैं कि अगर मोक्ष है तो हम तो केवल अपने बंधनों का ही इंतजाम किए चले जा रहे हैं। तो हम मूढ़ हैं। अगर मोक्ष है, तो जिनको तुम सांसारिक रूप से समझदार कहते हो उनसे ज्यादा मूढ़ कोई भी नहीं।

तो आदमी को अपनी रक्षा तो करनी पड़ती है। सबसे अच्छी रक्षा का उपाय है कि तुम कह दो, कहां है आकाश? कहां है मोक्ष? हम भी उड़ना जानते हैं, मगर आकाश ही नहीं है। हम भी परमात्मा को पा लेते--कोई बुद्धों ने ही पाया ऐसा नहीं--हम कुछ कमजोर नहीं हैं, हममें भी बल है, हमने भी पा लिया होता, लेकिन हो तभी न? है ही नहीं। ऐसा कहकर तुम अपनी आत्मरक्षा कर लेते हो। तब तुम अपने कारागृह को घर समझ लेते हो।

जिस कारागृह में बहुत दिन रहे हो, उसे कारागृह कहने की हिम्मत भी जुटानी मुश्किल हो जाती है। क्योंकि फिर उसमें रहोगे कैसे? अगर ईश्वर है, तो संसार में बेचैनी हो जाएगी खड़ी। अगर मोक्ष है, तो तुम्हारा घर तुम्हें काटने लगेगा, कारागृह हो जाएगा। तुम्हारे राग, आसक्ति के संबंध जहर मालूम होने लगेंगे। उचित यही है कि तुम कह दो कि नहीं, न कोई मोक्ष है, न कोई परमात्मा है, यह सब जालसाजों की बकवास है। कुछ सिरफिरों की बातचीत है। या कुछ चालबाजों की अटकलबाजियां हैं। इस तरह तुम अपनी रक्षा कर लेते हो।

बुद्ध ने तुम्हें यह मौका न दिया। बुद्ध ने किसी को नास्तिक होने का मौका न दिया। बुद्ध के पास नास्तिक आए और आस्तिक हो गए। क्योंकि बुद्ध ने कहा, दुखी हो। इसको कौन इनकार करेगा? इसे तुम कैसे इनकार करोगे? यह तुम्हारे जीवन का सत्य है। और क्या तुम कहीं ऐसा आदमी पा सकते हो जो दुख से मुक्त न होना चाहता हो? मोक्ष न चाहता हो, लेकिन दुख से मुक्त तो सभी कोई होना चाहते हैं। पीड़ा है, बुद्ध ने कहा, कांटा छिदा है। बुद्ध ने कहा, मैं चिकित्सक हूं, मैं कोई दार्शनिक नहीं। लाओ मैं तुम्हारा कांटा निकाल दूं। कैसे इनकार करोगे इस आदमी को? यह शिक्षक की घोषणा ही नहीं कर रहा है कि मैं शिक्षक हूं, या गुरु हूं। यह तो इतना ही कह रहा है, सिर्फ एक चिकित्सक हूं।

और इस आदमी को देखकर लोगों को भरोसा आया। क्योंकि इस आदमी के जीवन में दुख का कोई कांटा नहीं है। इस आदमी के जीवन में ऐसी परमशांति है, ऐसी विश्रांति है--सब लहरें खो गई हैं पीड़ा की; एक अपूर्व उत्सव नित-नूतन, प्रतिपल नया, अभी-अभी ताजा और जन्मा इस आदमी के पास अनुभव होता है। इस आदमी के पास एक हवा है, जिस हवा में आकर यह दो बातें कर रहा हैः अपनी हवा से खबर दे रहा है कि आनंद संभव है, और तुम्हारे दुख की तरफ इशारा कर रहा है कि तुम दुखी हो। दुख के कारण हैं। दुख के कारण को मिटाने का उपाय है।

तो बुद्ध का सारा चिंतन दुख पर खड़ा है। दुख है, दुख के कारण हैं, दुख के कारण को मिटाने के साधन हैं, और दुख से मुक्त होने की संभावना है। इस संभावना के वे स्वयं प्रतीक हैं। जिस स्वास्थ्य को वे तुम्हारे भीतर लाना चाहते हैं, उस स्वास्थ्य को वे तुम्हारे सामने मौजूद खड़ा किए हैं। तुम बुद्ध से यह न कह सकोगे कि

चिकित्सक, पहले अपनी चिकित्सा कर। बुद्ध को देखते ही यह तो सवाल ही न उठेगा। और तुम बुद्ध से यह भी न कह सकोगे कि मैं दुखी नहीं हूं। किस मुंह से कहोगे? और कहकर तुम क्या पाओगे? सिर्फ गंवाओगे।

इसलिए बुद्ध ने तुम्हें देखकर व्यवस्था दी। और बुद्ध यह जानते हैं कि जिस दिन तुम्हारा दुख न होगा, जिस दिन तुम्हारी पीड़ा गिर जाएगी, तुम्हारी आंख के अंधकार का पर्दा कटेगा, तुम जागोगे, उस दिन तुम देख लोगे--मोक्ष है। जो दिखाया जा सकता हो, और जो दिखाने के अतिरिक्त और किसी तरह समझाया न जा सकता हो, उसे दिखाना ही चाहिए। उसकी बात करनी खतरनाक है। क्योंकि अक्सर लोग बातों में खो जाते हैं।

कितने लोग बात के ही धार्मिक हैं। बातचीत ही करते रहते हैं। ईश्वर चर्चा का एक विषय है। अनुभव का एक आयाम नहीं, जीवन को बदलने की एक आग नहीं, सिद्धांतों की राख है। शास्त्रों में लोग उलझे रहते हैं, बाल की खाल निकालते रहते हैं, उससे भी अहंकार को बड़ा रस आता है। बुद्ध ने शास्त्रों को इनकार कर दिया। बुद्ध ने कहा, यह पीछे तुम खोज कर लेना। अभी तो उठो, अभी तो अपने जीवन के दुख को काट लो। बुद्ध ने यह कहा हफीज के शब्दों में--

उठो सनमकदे वालो तलाश लाजिम है

इधर ही लौट पड़ेंगे अगर खुदा न मिला

उठो मंदिरों वालो, जो तुम बैठ गए हो मंदिरों और मस्जिदों में, सनमकदे वालो! तलाश लाजिम है।

इधर ही लौट पड़ेंगे अगर खुदा न मिला

थोड़ा दुख को मिटाने की कोशिश कर लो। अगर न मिटा, तो यह दुख तो है ही, फिर लौट पड़ेंगे। थोड़ा कारागृह के बाहर आओ, घबड़ाओ मत, अगर खुला आकाश न मिला, इधर ही लौट पड़ेंगे।

बुद्ध ने जिज्ञासा दी, आस्था नहीं। बुद्ध ने इंक्वायरी दी, अन्वेषण दिया, आस्था नहीं। बुद्ध ने इतना ही कहा, ऐसे मत बैठे रहो। ऐसे बैठे तो कुछ न होगा। बैठे-बैठे तो कुछ न होगा। खोज लाजिम है। तुम दुखी हो, क्योंकि तुमने जीवन की सारी संभावनाएं नहीं खोजीं। तुम दुखी हो, क्योंकि तुमने जन्म के साथ ही समझ लिया कि जीवन मिल गया। जन्म के साथ तो केवल संभावना मिलती है जीवन की, जीवन नहीं मिलता। जन्म के बाद जीवन खोजना पड़ता है। जो खोजता है उसे मिलता है। और जन्म के बाद जो बैठा-बैठा सोचता है कि मिल गया जीवन, यही जीवन है, पैदा हो गए यही जीवन है, वह चूक जाता है।

तो बुद्ध ने यह नहीं कहा कि मैं तुमसे कहता हूं कि यह मोक्ष, यह स्वातंष्य, यह आकाश, यह परमात्मा मिल ही जाएगा; यह मैं तुमसे नहीं कहता। मैं इतना ही कहता हूं--

उठो सनमकदे वालो तलाश लाजिम है

खोज जरूरी है।

इधर ही लौट पड़ेंगे अगर खुदा न मिला

और घबड़ाहट क्या है? यह घर तो फिर भी रहेगा। तुम्हारे मन की धारणाओं में फिर लौट आना, अगर निर्धारणा का कोई आकाश न मिले। लौट आना विचारों में, अगर ध्यान की कोई झलक न मिले। अगर शांत होने की कोई सुविधा-सुराग न मिले, फिर अशांत हो जाना। कौन सी अड़चन है? अशांत होकर बहुत दिन देख लिया है। अशांति से कोई शांति तो मिली नहीं। बुद्ध कहते हैं, मैं भी तुम्हें एक झरोखे की खबर देता हूं, थोड़ा इधर भी झांक लो--तलाश लाजिम है।

बुद्ध ने खोज दी, श्रद्धा नहीं। इसे थोड़ा समझो। बुद्ध ने तुम्हें तुम्हारे जीवन पर संदेह दिया, परमात्मा के जीवन पर श्रद्धा नहीं। ये दोनों एक ही बात हैं। अपने पर संदेह हो जाए, तो परमात्मा पर श्रद्धा आ ही जाती है।

परमात्मा पर श्रद्धा आ जाए, तो अपने पर संदेह हो ही जाता है। तुम्हें अगर अपने अहंकार पर बहुत भरोसा है, तो परमात्मा पर श्रद्धा न होगी। तुम अगर अपने को बहुत समझदार समझ बैठे हो, तो फिर तुम्हें किसी मोक्ष, किसी आत्मा में भरोसा नहीं आ सकता। तुमने फिर अपने ज्ञान को आखिरी सीमा समझ ली। फिर विस्तार की जगह और सुविधा न रही। और ज्यादा जानने को तुम मान ही नहीं सकते, क्योंकि तुम यह नहीं मान सकते कि ऐसा भी कुछ है जो तुम नहीं जानते हो। जिसने अपने पर ऐसा अंधा भरोसा कर लिया, वही तो परमात्मा पर भरोसा नहीं कर पाता। जिसने इस तथाकथित जीवन को जीवन समझ लिया, वही तो महाजीवन की तरफ जाने में असमर्थ हो जाता है, पंगु हो जाता है।

तो दो उपाय हैं। बुद्ध को छोड़कर बाकी बुद्धपुरुषों ने परमात्मा की तरफ श्रद्धा जगाई। बुद्ध ने तुम्हारे जीवन के प्रति संदेह जगाया। बात वही है। किसी ने कहा गिलास आधा भरा है। किसी ने कहा गिलास आधा खाली है।

बुद्ध ने कहा गिलास आधा खाली है। क्योंकि तुम खाली हो, भरे को तुम अभी समझ न पाओगे। और आधा गिलास खाली है यह समझ में आ जाए, तो जल्दी ही तुम आधा भरा गिलास है उसके करीब पहुंचने लगोगे। तुमसे यह कहना कि आधा गिलास भरा है, गलत होगा, क्योंकि तुम खाली में जी रहे हो। नकार का तुम्हें पता है, रिक्तता का तुम्हें पता है, पूर्णता का तुम्हें कोई पता नहीं। इसलिए बुद्ध ने शून्य को अपना शास्त्र बना लिया।

बुद्ध ने तुम्हें देखा, तुम्हारी बीमारी को देखा, तुम्हारी नब्ज पर निदान किया। इसलिए बुद्ध से ज्यादा प्रभावी कोई भी नहीं हो सकता। क्योंकि मनुष्य के मन में बुद्ध को समझने में कोई अड़चन न आई।

बुद्ध बहुत सीधे-साफ हैं। ऐसा नहीं कि जिंदगी में जटिलता नहीं है, जिंदगी बड़ी जटिल है। लेकिन बुद्ध बड़े सीधे-साफ हैं। ऐसा समझो कि अगर तुम कबीर से पूछो, या महावीर से पूछो, या कृष्ण से पूछो, तो वे बात वहां की करते हैं--इतने दूर की, कि तुम्हारी आंखों में पास ही नहीं दिखाई पड़ता, उतना दूर तुम्हें कैसे दिखाई पड़ेगा! तो एक ही उपाय है, या तो तुम इनकार कर दो, जो कि ज्यादा ईमानदार है। इसलिए नास्तिक ज्यादा ईमानदार होते हैं बजाय आस्तिकों के। और या तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन तुम स्वीकार कर लो, क्योंकि जब महावीर को दिखाई पड़ता है, तो होगा ही। तो तुम भी हां में हां भरने लगो। और तुम कहो कि हां, मुझे भी दिखाई पड़ रहा है।

इसलिए जिनको तुम आस्तिक कहते हो, वे बेईमान होते हैं। नास्तिक कम से कम सचाई तो स्वीकार करता है, कि मुझे नहीं दिखाई पड़ रहा है। हालांकि वह कहता गलत ढंग से है। वह कहता है, ईश्वर नहीं है। उसे कहना चाहिए, मुझे दिखाई नहीं पड़ रहा। क्योंकि तुम्हें दिखाई न पड़ता हो इसलिए जरूरी नहीं है कि न हो। बहुत सी चीजें तुम्हें दिखाई नहीं पड़तीं हैं, और हैं। बहुत सी चीजें आज नहीं दिखाई पड़तीं, कल दिखाई पड़ जाएंगी। और बहुत सी चीजें दिखाई आज पड़ सकती हैं, लेकिन तुम्हारी आंख बंद है।

नास्तिक के कहने में गलती हो सकती है, लेकिन ईमानदारी में चूक नहीं है। नास्तिक यही कहना चाहता है कि मुझे दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन वह कहता है, नहीं, ईश्वर नहीं है। उसके कहने का ढंग अलग है। बात वह सही ही कहना चाहता है। आस्तिक बड़ी झूठी अवस्था में जीता है। आस्तिक को दिखाई नहीं पड़ता, वह यह भी नहीं कहता कि मुझे दिखाई नहीं पड़ता। वह यह भी नहीं कहता कि ईश्वर नहीं है। जो नहीं दिखाई पड़ता उसे स्वीकार कर लेता है, किसी और के भरोसे पर। और तब यात्रा बंद हो जाती है। क्योंकि जो तुमने जाना नहीं और मान लिया, तुम उसे खोजोगे क्यों?

इसलिए बुद्ध ने कहा, तलाश लाजिम है। खोज जरूरी है। ईश्वर है या नहीं, यह फिक्र छोड़ो। लेकिन ऐसे बैठे-बैठे जीवन का ढंग दुखपूर्ण है। निराशा से भरा है, मूर्च्छित है। जागो। और बुद्ध ने करोड़ों-करोड़ों लोगों को परमात्मा तक पहुंचा दिया।

इसलिए मैं कहता हूं, इस सदी में बुद्ध की भाषा बड़ी समसामयिक है। कंटेंप्रेरी है। क्योंकि यह सदी बड़ी ईमानदार सदी है। इतनी ईमानदार सदी पहले कभी हुई नहीं। तुम्हें यह सुनकर थोड़ी परेशानी होगी, तुम थोड़ा चौंकोगे। क्योंकि तुम कहोगे, यह सदी और ईमानदार! सब तरह के बेईमान दिखाई पड़ रहे हैं। लेकिन मैं तुमसे फिर कहता हूं कि इस सदी से ज्यादा ईमानदार सदी कभी नहीं हुई। आदमी अब वही मानेगा, जो जानेगा।

अब तुम यह न कह सकोगे कि हमारे कहे से मान लो। अब तुम यह न कह सकोगे कि हम बुजुर्ग हैं, और हम बड़े अनुभवी हैं, और हमने बाल ऐसे धूप में नहीं पकाए हैं, हम कहते हैं इसलिए मान लो। अब तुम्हारी इस तरह की बातें कोई भी न मानेगा। अब तो लोग कहते हैं नगद स्वीकार करेंगे, उधार नहीं। अब तो हम जानेंगे तभी स्वीकार करेंगे। ठीक है, तुमने जान लिया होगा। लेकिन तुम्हारा जानना तुम्हारा है, हमारा नहीं। हम भटकेंगे अंधेरे में भला, लेकिन हम उस प्रकाश को न मानेंगे जो हमने देखा नहीं।

इसलिए मैं कहता हूं, यह सदी बड़ी ईमानदार है। ईमानदार होने के कारण नास्तिक है, अधार्मिक है। पुरानी सदियां बेईमान थीं। लोग उन मंदिरों में झुके, जिनका उन्हें कोई अनुभव न था। उनका झुकना औपचारिक रहा होगा। सर झुक गया होगा, हृदय न झुका होगा। और असली सवाल वही है कि हृदय झुके। वे ईश्वर को मानकर झुक गए होंगे। लेकिन जिस ईश्वर को जाना नहीं है उसके सामने झुकोगे कैसे? कवायद हो जाएगी, शरीर झुक जाएगा, तुम कैसे झुकोगे? उन्होंने उस झुकने में से भी अकड़ निकाल ली होगी। वे और अहंकारी होकर घर आ गए होंगे, कि मैं रोज पूजा करता हूं, प्रार्थना करता हूं, रोज माला फेरता हूं।

माला फेरने वालों को तुम जानते ही हो। उन जैसे अहंकारी तुम कहीं न पाओगे। उनका अहंकार बड़ा धार्मिक अहंकार है। उनके अहंकार पर राम-नाम की चदरिया है। उनका अहंकार बड़ा पवित्र मालूम होता है, शुद्ध, नहाया हुआ। पर है तो अहंकार ही। और जहर जितना शुद्ध होता है उतना ही खतरनाक हो जाता है।

नहीं, इस सदी ने साफ कर लिया है कि अब हम वही मानेंगे जो हम जानते हैं। यह सदी विज्ञान की है। तथ्य स्वीकार किए जाते हैं, सिद्धांत नहीं। और तथ्य भी अंधी आंखों से स्वीकार नहीं किए जाते हैं। सब तरफ से खोजबीन कर ली जाती है, जब असिद्ध करने का कोई उपाय नहीं रह जाता, तभी कोई चीज स्वीकार की जाती है।

इसलिए ऐसा घटता है--बर्ट्रेंड रसल जैसा व्यक्ति जो नास्तिक है, इसलिए जीसस को श्रद्धा नहीं दे सकता, हालांकि ईसाई घर में पैदा हुआ है, सारे संस्कार ईसाई के हैं। लेकिन बर्ट्रेंड रसल ने एक किताब लिखी है--व्हाय आई एम नाट ए क्रिश्चियन--मैं ईसाई क्यों नहीं हूं? ईसा पर बड़े शक उठाए हैं।

शक उठाए जा सकते हैं। क्योंकि ईसा की व्यवस्था में कोई तर्क नहीं है। ईसा कवि हैं। कहानियां कहने में कुशल हैं। विरोधाभासी हैं। उनके शब्द पहेलियां हैं। हां, जो खोज करेगा वह उन पहेलियों के आखिरी राज को खोल लेगा। लेकिन वह तो बड़ी खोज की बात है। और उस खोज में जीवन लग जाते हैं। लेकिन जो पहेली को सीधा-सीधा देखेगा, वह इनकार कर देगा।

रसल ने जीसस को इनकार कर दिया। लेकिन रसल ने कहा कि मैं नास्तिक हूं, मगर बुद्ध को इनकार नहीं कर सकता। बुद्ध को इनकार कैसे करोगे? यही तो मैं कह रहा हूं! रसल के मन में भी बुद्ध के प्रति वैसी ही श्रद्धा

है, जैसी किसी भक्त के मन में हो। इनकार करने की जगह नहीं छोड़ी इस आदमी ने। इस आदमी ने ऐसी बात ही नहीं कही जो तर्क की कसौटी पर खरी न उतरती हो।

बुद्ध वैज्ञानिक द्रष्टा हैं। बुद्ध को इस भांति समझोगे तो तुम्हारे लिए बड़े कारगर हो सकते हैं। हालांकि ध्यान रखना, जैसे-जैसे गहरे उतरोगे पानी में, जैसे-जैसे बुद्ध के फुसलावे में आ जाओगे, वैसे-वैसे तुम पाओगे कि जितना तर्क पहले दिखाई पड़ता था वह पीछे नहीं है। मगर तब कौन चिंता करता है, अपना ही अनुभव शुरू हो जाता है। फिर कौन प्रमाण मांगता है? प्रमाण तो हम तभी मांगते हैं, जब अपना अनुभव नहीं होता। जब अपना ही अनुभव हो जाता है... ।

मैं तुम्हें तर्क देता हूं और तर्क से इतना ही तुम्हें राजी कर लेता हूं कि तुम मेरी खिड़की पर आकर खड़े हो जाओ, बस। फिर तो खिड़की से खुला आकाश तुम्हीं को दिखाई पड़ जाता है। फिर तुम मुझसे नहीं पूछते कि आप प्रमाण दें आकाश के होने का। अब प्रमाण देने का प्रश्न ही नहीं उठता है--न तुम मांगते हो, न मैं देता हूं।

और तुम मुझे धन्यवाद भी दोगे कि भला किया कि पहले मुझे तर्क से समझाकर खिड़की तक ले आए। क्योंकि अगर तर्क से न समझाया होता तो मैं खिड़की तक आने को भी राजी नहीं होता। मैं एक कदम न चलता। अगर तुमने पहले ही इस आकाश की बात की होती जो मेरे लिए अनजाना है, अपरिचित है, तो मैं हिला ही न होता अपनी जगह से। तुमने भला किया आकाश की बात न की, खिड़की की बात की; असीम की बात न की, सीमा की बात की। तुमने भला किया आनंद की बात न की, दुख-निरोध की बात की। तुमने भला किया ध्यान की बात न की, विचार से मुक्त होने की बात की। तुमने भला किया श्रद्धा न मांगी, वह मैं दे न सकता, तुमने मेरे संदेह का ही उपयोग कर लिया। तुमने कांटे से कांटा निकाल दिया। भला किया।

इसलिए बुद्ध के प्रति कृतज्ञता अनुभव होगी। यद्यपि बुद्ध ने तुम्हें धोखा दिया। जीसस तुम्हें इतना धोखा नहीं दे रहे हैं। वे बात वही कह रहे हैं जो है। जैसा आखिर में तुम पाओगे, जीसस ने पहले ही कह दिया।

बुद्ध कुछ और कह रहे हैं। तुम्हें देखकर कह रहे हैं। जैसा नहीं है वैसा कह रहे हैं। लेकिन तुम अनुगृहीत अनुभव करोगे कि कृपा की, करुणा की कि इतना धोखा दिया; अन्यथा मैं खिड़की पर न आता।

तुम चकित होओगे अगर मैं तुमसे कहूं, झेन फकीरों ने कहा भी है, झेन फकीर लिंची ने कहा है, बुद्ध से ज्यादा झूठ बोलने वाला आदमी नहीं हुआ। लिंची रोज पूजा करता है बुद्ध की, सुबह से फूल चढ़ाता है, आंसू बहाता है, लेकिन कहता है, बुद्ध से झूठ बोलने वाला आदमी नहीं। लिंची ने एक बार अपने शिष्यों से कहा कि ये बुद्ध के शास्त्रों को आग लगा दो, ये सब सरासर झूठ हैं। किसी ने पूछा, लेकिन तुम रोज आंसू बहाते हो, रोज सुबह फूल चढ़ाते हो, और हमने तुम्हें घंटों बुद्ध की प्रतिमा के सामने भाव-विभोर देखा है। इन दोनों को हम कैसे जोड़ें? ये दोनों बातें बड़ी असंगत हैं। लिंची ने कहा, उनकी करुणा के कारण वे झूठ बोले। उनके झूठ के कारण मैं वहां तक पहुंचा जहां सच का दर्शन हुआ। बुद्ध अगर सच ही बोलते तो मैं पहुंच न पाता।

सभी ज्ञानी बहुत उपाय करते हैं तुम्हें पहुंचाने के। वे सभी उपाय सही नहीं हैं। जैसे तुम घर में बैठे हो, तुम कभी बाहर नहीं गए, मैंने बाहर जाकर देखा कि बड़े फूल खिले हैं, पक्षियों के अनूठे गीतों का राज्य है, सूरज निकला है, खुला मुक्त असीम आकाश है, सब तरफ रोशनी है, और तुम अंधेरे में दबे बैठे हो, और सर्दी में ठिठुर रहे हो; लेकिन तुम कभी बाहर नहीं गए, अब मैं तुम्हें कैसे बाहर ले जाऊं? तुमसे कैसे कहूं, तुम्हें कैसे खबर दूं बाहर के सूरज की? क्योंकि तुम्हारी भाषा में सूरज के लिए कोई पर्यायवाची नहीं है। तुम्हें कैसे बताऊं फूलों के बाबत? क्योंकि तुम्हारी भाषा में फूलों के लिए कोई शब्द नहीं है। रंग तुमने जाने ही नहीं, रंगों का उत्सव

तुम कैसे सुनोगे-समझोगे? तुमने सिर्फ दीवाल देखी है। उस दीवाल को तुमने अपनी जिंदगी समझी है। तुमसे कैसे कहूं कि ऐसा भी आकाश है, जिसकी कोई सीमा नहीं? तुम कहोगे, हो चुकी बातें, लनतरानी है।

तुमने कहानी सुनी है कि एक मेंढक सागर से आ गया था और एक कुएं में उतर गया था। कुएं के मेंढक ने पूछा, मित्र कहां से आते हो? उसने कहा, सागर से आता हूं। कुएं के मित्र ने पूछा, सागर कितना बड़ा है? क्योंकि उस कुएं के मेंढक ने कुएं से बड़ी कोई चीज कभी देखी न थी। उसी में पैदा हुआ था, उसी में बड़ा हुआ था। कभी कुएं की दीवालों को पार करके बाहर गया भी न था। दीवालें बड़ी भी थीं। और पार इससे बड़ा कुछ हो भी सकता है, इसे मानने का कोई कारण भी न था। कभी बाहर से भी कोई मेंढक न आया था, जिसने खबर दी हो। सागर के मेंढक ने कहा, बहुत बड़ा है। लेकिन बहुत से कहीं पता चलता है! कुएं के मेंढक को बहुत बड़े का क्या मतलब? कुएं का मेंढक! आधे कुएं में छलांग लगाई उसने और कहा, इतना बड़ा। आधा कुआं, इतना बड़ा। उसने कहा कि नहीं-नहीं, बहुत बड़ा है। तो उसने पूरी छलांग लगाई। कहा, इतना बड़ा? लेकिन अब उसे संदेह पैदा होने लगा। सागर के मेंढक ने कहा, भाई! बहुत बड़ा है।

उसे भरोसा तो नहीं आया। लेकिन फिर भी उसने एक और आखिरी कोशिश की। उसने पूरा चक्कर कुएं का दौड़कर लगाया। कहा, इतना बड़ा? सागर के मेंढक ने कहा, मैं तुमसे कैसे कहूं? बहुत बड़ा है। इस कुएं से उसका कोई पैमाना नहीं। उसका कोई नाप-जोख नहीं हो सकता। तो कुएं के मेंढक ने कहा, झूठ की भी एक सीमा होती है। किसी और को धोखा देना। हम ऐसे नासमझ नहीं हैं। तुम किसको मूढ़ बनाने चले हो? अपनी राह लो। इस कुएं से बड़ी चीज न कभी सुनी गई, न देखी गई। अपने मां-बाप से, अपने पुरखों से भी मैंने इससे बड़ी चीज की कोई बात नहीं सुनी। वे तो बड़े अनुभवी थे, मैं नया हो सकता हूं। हम दर-पीढ़ी इस कुएं में रहे हैं।

अगर मैं तुमसे बाहर की बात आकर कहूं तुम्हारे अंधकार-कक्ष में, तुम भरोसा न करोगे। इसीलिए तो नास्तिकता पैदा होती है। जब भी कोई परमात्मा में जाकर लौटता है, और तुम्हें खबर देता है, और वह इतना लड़खड़ा गया होता है अनुभव से--वह इतना अवाक और आश्चर्यचकित होकर लौटता है कि उसकी भाषा के पैर डगमगा जाते हैं। अनुभव इतना बड़ा और शब्द इतने छोटे, शब्दों में अनुभव समाता नहीं। वह बोलता है, और बोलने की व्यर्थता दिखाई पड़ती है। वह हिचकिचाता है। वह कहता भी है, और कहते डरता भी है, कि जो भी कहेगा गलत होगा, और जो भी कहेगा वह सत्य के अनुकूल न होगा। क्योंकि भाषा तुम्हारी, अनुभव बाहर का। भाषा दीवालों की, अनुभव असीम का।

तो मैं क्या करूं तुम्हारे कमरे में आकर? लिंची ठीक कहता है, बुद्ध झूठ बोले। बुद्ध ने चर्चा नहीं की फूलों की, बुद्ध ने चर्चा नहीं की पक्षियों के गीत की, बुद्ध ने चर्चा नहीं की झरनों के कलकल नाद की; बुद्ध ने सूरज की रोशनी की और किरणों के विराट जाल की कोई बात नहीं की। नहीं कि उनको पता नहीं था। उनसे ज्यादा किसको पता था? उन्होंने बात कुछ और की। उन्होंने बात की तुम्हारी दीवालों की, उन्होंने बात की तुम्हारे अंधकार की, उन्होंने बात की तुम्हारी पीड़ा की, तुम्हारे दुख की; उन्होंने पहचाना कि तुम्हें बाहर ले जाने का क्या उपाय हो सकता है।

बाहर के दृश्य तुम्हें आकर्षित न कर सकेंगे। क्योंकि आकर्षण तभी होता है जब थोड़ा अनुभव हो। थोड़ा भी स्वाद लग जाए मिठास का, तो फिर तुम मिठाई के लिए आतुर हो जाते हो। लेकिन नमक ही नमक जीवन में जाना हो, कड़वाहट ही कड़वाहट भोगी हो, मिठास का सपना भी न आया हो कभी, क्योंकि सपना भी उसी का आता है जिसका जीवन में थोड़ा अनुभव हो, सपने भी जीवन का ही प्रतिफलन होते हैं!

तो बुद्ध ने तुमसे क्या कहा? बुद्ध ने कहा कि भागो, इस मकान में आग लगी है। आग लगी न थी। लिंची ठीक कहता है, बुद्ध झूठ बोले।

मगर लिंची रोज उनको धन्यवाद भी देता है कि तुम्हारी अनुकंपा कि तुम झूठ बोले, नहीं तो मैं भागता ही न। घर में आग लगी है! बुद्ध ने तुम्हें भयभीत कर दिया। तुम्हारे दुख के चित्र उभारे, तुम्हारे छुपे दुख को बाहर निकाला। तुमने जो दबा रखा है अपने भीतर अंधकार, उसको प्रगट किया। तुम्हारे दुख को इतना उभारा कि तुम घबड़ा गए, तुम भयभीत हो गए। और जब बुद्ध ने कहा, इस घर में आग लगी है, तो तुम घबड़ाहट में भाग खड़े हुए। तुम भूल ही गए इनकार करना कि बाहर तो है ही नहीं, जाएं कहां? जब घर में आग लगी हो तो कौन सोच-विचार की स्थिति में रह जाता है? भाग खड़े हुए।

अमरीका में एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग कर रहा था। एक सिनेमागृह में जब लोग आधा घंटा तक पिक्चर देखने में तल्लीन हो चुके थे, अचानक एक आदमी जोर से चिल्लाया--आग! आग!! उस आदमी को बिठा रखा था एक मनोवैज्ञानिक ने। भगदड़ शुरू हो गई। मैनेजर चिल्ला रहा है कि कहीं कोई आग नहीं है, लेकिन कोई सुनने को राजी नहीं। जब एक दफा भय पकड़ ले!

लोगों ने दरवाजे तोड़ डाले, कुर्सियां तोड़ डालीं, भीड़-भड़क्कम हो गई। एक-दूसरे के ऊपर भाग खड़े हुए। बच्चे गिर गए, दब गए। बामुश्किल कब्जा पाया जा सका। जब लोग बाहर आ गए, तभी उनको भरोसा आया कि किसी ने मजाक कर दी। लेकिन एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग कर रहा था कि लोग शब्दों से कितने प्रभावित हो जाते हैं। आग! बस काफी है। फिर तुम यह भी नहीं देखते कि आग है भी, या नहीं।

बुद्ध ने तुम्हारे दुख को उभारा। बुद्ध चिल्लाए, आग! तुम भाग खड़े हुए। उसी भागदौड़ में तुममें से कुछ बाहर निकल गए। लिंची उन्हीं में से है, जो बाहर निकल गया। अब वह कहता है, खूब झूठ बोले! कहीं आग न लगी थी। कहीं धुआं भी न था, आग तो दूर। मगर उसी भय में बाहर आ गए। इसलिए चरणों में सिर रखता है कि न तुम चिल्लाते, न हम बाहर आते।

मैं भी तुमसे न मालूम कितने-कितने ढंग के झूठ बोले जाता हूं। जानता हूं, सौभाग्यशाली होंगे तुममें वे, जो किसी दिन उन झूठों को पहचान लेंगे। लेकिन वे तुम तभी पहचान पाओगे जब तुम बाहर निकल चुके होओगे। तब तुम नाराज न होओगे। तुम अनुगृहीत होओगे।

बुद्ध ने तुम्हारी भाषा बोली। तुम्हें जगाना है, तुम्हारी भाषा बोलनी ही जरूरी है। बुद्ध अपनी भाषा तुमसे नहीं बोले। हां, बुद्ध के पास कोई बुद्धपुरुष होता तो उससे वे अपनी भाषा बोलते।

एक सुबह वे फूल लेकर आए हैं। ऐसा कभी न हुआ था। कभी वे कुछ लेकर न आए थे। और वे बैठ गए हैं बोलने के लिए, भीड़ सुनने को आतुर है। और वे फूल को देखे चले जाते हैं। धीरे-धीरे भीड़ बेचैन होने लगी, क्योंकि लोग सुनने को आए थे, और बुद्ध उस दिन दिखा रहे थे। जो लोग सुनने को आए हैं वे देखने को राजी नहीं होते।

यह बड़े मजे की बात है। तुम अगर हीरे की बाबत सुनने आए हो, और मैं हीरा लेकर भी बैठ जाऊं तो भी तुम बेचैन हो जाओगे। क्योंकि तुम सुनने आए थे। तुम कानों का भरोसा करने आए थे। मैंने तुम्हारी आंखों को पुकारा, तुम्हारी आंखें बंद हैं। हीरे की बात करूं, तुम सुन लोगे। हीरा दिखाऊं, तुम्हें दिखाई ही न पड़ेगा।

बुद्ध फूल लिए बैठे रहे। उस दिन बुद्ध ने एक परम उपदेश दिया, जैसा उन्होंने कभी न दिया था। उस दिन बुद्ध ने अपना बुद्धत्व सामने रख दिया। मगर देखने वाला चाहिए। सुनने वाले थे। आंख के अंधे थे, कान के कुशल थे।

तुम्हारे सब शास्त्र कान से आए हैं। सत्य आंख से आता है। सत्य प्रत्यक्ष है। सुनी हुई बात नहीं। सत्य कोई श्रुति नहीं है, न कोई स्मृति है। सत्य दर्शन है।

उस दिन बुद्ध बैठे रहे। लोग परेशान होने लगे। बुद्धत्व सामने हो, लोग परेशान होने लगे! अंधे रहे होंगे। घड़ी पर घड़ी बीतने लगी। और लोग सोचने लगे होंगे अब घर जाने की, कि यह मामला क्या है? और कोई कह भी न सका। बुद्ध से कहो भी क्या, कि आप यह क्या कर रहे हैं? बैठे क्यों हैं? बोलो कुछ। बोलो तो हम सुनें। शब्दों तब हमारी पहुंच है। किसी को यह न दिखाई पड़ा कि यह आदमी क्या दिखा रहा है।

फूल को बुद्ध देखते रहे। परमशून्य। एक विचार की तरंग भीतर नहीं। मौजूद, और मौजूद नहीं। उपस्थित और अनुपस्थित। विचार का कण भी नहीं। परम ध्यान की अवस्था। समाधि साकार। और हाथ में खिला फूल। प्रतीक पूरा था। ऐसी समाधि साकार हो, तो ऐसा जीवन का फूल खिल जाता है। कुछ और कहने को न था। अब और कहने को बचता भी क्या है? पर आंख के अंधे!

तुम्हीं सोचो। आज मैं बोलता न और फूल लेकर आकर बैठ गया होता! तुम इधर-उधर देखने लगते। तुम लक्ष्मी की तरफ देखते कि मामला क्या है? दिमाग खराब हो गया? तुम उठने की तैयारी करने लगते। तुम एक-दूसरे की तरफ देखते कि अब क्या करना है?

जब ऐसी बेचैनी की लहर सब तरफ फैलने लगी--उतने चैन के सामने भी लोग बेचैन हो गए, उतनी शांति के सामने भी लोग अशांत हो गए--तब एक बुद्ध का शिष्य महाकाश्यप... इसके पहले उसका नाम भी किसी ने न सुना था। क्योंकि आंख वालों का अंधों से मेल नहीं होता। इसका नाम भी पहले किसी ने नहीं सुना था, यह पहले मौके पर इसका नाम पता चला। जब लोगों को इतना बेचैन देखा तो वह खिलखिलाकर हंसने लगा। उस सन्नाटे में उसकी खिलखिलाहट ने और लोगों को चौंका दिया कि यहां एक ही पागल नहीं है--यह बुद्ध तो, दिमाग खराब मालूम होता है, एक यह भी आदमी पागल है। यह कोई हंसने का वक्त है? यह बुद्ध को क्या हो गया है? और यह महाकाश्यप क्यों हंसता है?

और बुद्ध ने आंख उठाई और महाकाश्यप को इशारा किया, और फूल उसे भेंट कर दिया। और भीड़ से यह कहा, जो मैं शब्दों से तुम्हें दे सकता था, तुम्हें दिया। जो शब्दों से नहीं दिया जा सकता, वह महाकाश्यप को देता हूं। एक यही समझ पाया। तुम सुनने वाले थे, यह एक देखने वाला था।

यही कथा झेन के जन्म की कथा है। झेन शब्द आता है ध्यान से। जापान में झेन हो गया, चीन में चान हो गया, लेकिन मूलरूप है ध्यान। बुद्ध ने उस दिन ध्यान दे दिया। झेन फकीर कहते हैं--ट्रांसमिशन आउटसाइड स्क्रिप्चर्स। शास्त्रों के बाहर दान। शास्त्रों से नहीं दिया, उस दिन शब्द से नहीं दिया। महाकाश्यप को सीधा-सीधा दे दिया। शब्द में डालकर न दिया। जैसे जलता हुआ अंगारा बिना राख के दे दिया। महाकाश्यप चुप ही रहा। चुप्पी में बात कह दी गई। जो बुद्ध ने कहा था, कि मुट्ठी भर सूखे पत्ते, ऐसा ही मैंने तुमसे जो कहा है, वह इतना ही है। और जो कहने को है, वह इतना है जितना इस विराट जंगल में सूखे पत्तों के ढेर।

लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, उस दिन उस फूल में पूरा जंगल दे दिया। उस दिन कुछ बचाया नहीं। उस दिन सब दे दिया। उस दिन बुद्ध उंडल गए। उस दिन महाकाश्यप का पात्र पूरा भर गया। तब से झेन में यह व्यवस्था रही है कि गुरु उसी को अपना अधिकारी नियुक्त करता है, जो मौन में लेने को राजी हो जाता है। जो शब्द की जिद करता है, वह सुनता है, ठीक है। साधता है, ठीक है। लेकिन वह खोजता उसे है अपने उत्तराधिकारी की तरह, जो शून्य में और मौन में लेने को राजी हो जाता है। जैसे बुद्ध ने उस दिन महाकाश्यप को फूल दिया। ऐसे ही शून्य में, ऐसे ही मौन में।

तो ऐसा नहीं है कि बुद्ध ने जो कहा है वही सब है। वह तो शुरुआत है, वह तो बारहखड़ी है। उसका सहारा लेकर आगे बढ़ जाना। वह तो ऐसा ही है जैसे हम स्कूल में बच्चों को सिखाते हैं ग गणेश का--या अब सिखाते हैं ग गधा का। क्योंकि अब धार्मिक बात तो सिखाई नहीं जा सकती, राज्य धर्मनिरपेक्ष है, तो गणेश की जगह गधा। गणेश लिखो तो मुसलमान नाराज हो जाएं, कि जैन नाराज हो जाएं! गधा सिक्यूलर है, धर्मनिरपेक्ष है। वह सभी का है। ग गणेश का। न तो ग गणेश का है, न ग गधे का है। ग ग का है। लेकिन बच्चे को सिखाते हैं। फिर ऐसा थोड़े ही है कि वह सदा याद रखता है कि जब भी तुम कुछ पढ़ो तब बार-बार जब भी ग आ जाए, तो कहो ग गणेश का। तो पढ़ ही न पाओगे। पढ़ना ही मुश्किल हो जाएगा। जो साधन था वही बाधक हो जाएगा।

जो कहा है, वह तो ऐसा ही है--ग गणेश का। वह तो पहली कक्षा के विद्यार्थी की बात है। लेकिन बुद्ध ने पहली कक्षा की बात कही, क्योंकि तुम वहीं खड़े हो। उन्होंने विश्वविद्यालय के आखिरी छोर की बात नहीं कही। वहां तुम कभी पहुंचोगे, तब देखा जाएगा। और वहां पहुंच गए जब तुम, तो कहने की जरूरत नहीं रह जाती, तुम खुद ही देखने में समर्थ हो जाते हो।

शुरुआत है शून्य से, अंत है देखने से। शुरुआत है संदेह से, अंत है श्रद्धा पर। संदेह को कैसे श्रद्धा तक पहुंचाया जाए, नास्तिकता को कैसे आस्तिकता तक पहुंचाया जाए, नहीं को कैसे हां में बदला जाए, यही बुद्ध की कीमिया है, यही बुद्ध-धर्म है। एस धम्मो सनंतनो।

दूसरा प्रश्नः कल आपने कहा कि मोक्ष, बुद्धत्व की आकांक्षा भी वासना का ही एक रूप है। और फिर कहा, जब तक बुद्धत्व प्राप्त न हो जाए तब तक चैन से मत बैठना। इस विरोधाभास को समझाएं।

मोक्ष की, बुद्धत्व की आकांक्षा भी बुद्धत्व में बाधा है। फिर मैंने तुमसे कहा, जब तक मोक्ष उपलब्ध न हो जाए तब तक तृप्त होकर मत बैठ जाना। तब तक अभीप्सा करना, तब तक आकांक्षा करना। स्वभावतः विरोधाभास दिखाई पड़ता है। लेकिन मैं यही कह रहा हूं कि जब तक आकांक्षारहितता उपलब्ध न हो जाए तब तक आकांक्षारहितता की आकांक्षा करते रहना। यह विरोधाभास दिखाई पड़ता है, क्योंकि मैं दो तलों को जोड़ने की कोशिश कर रहा हूं। तुम जहां हो उसको, और तुम जहां होने चाहिए उसको जोड़ने की कोशिश कर रहा हूं। इसलिए विरोधाभास।

जैसे कोई बच्चा पैदा हो, अभी जन्मा है, और हमें उसे मौत की खबर देनी हो। यद्यपि जो जन्म गया वह मरने लगा, लेकिन बच्चे को मृत्यु की बात समझानी बड़ी कठिन हो जाएगी। मृत्यु की बात विरोधाभासी मालूम पड़ेगी। अभी तो जन्म ही हुआ है, और यह मौत की क्या बात है? और जन्म के साथ मौत को कैसे जोड़ो? बच्चे को विरोधाभासी लगेगी, लेकिन विरोधाभासी है नहीं। क्योंकि जन्म के साथ ही मौत की यात्रा शुरू हो गई। जो जन्मा, वह मरने लगा।

जितने जल्दी मौत समझाई जा सके उतना ही अच्छा है। ताकि जन्म व्यर्थ न चला जाए। अगर जन्म के साथ ही मौत की समझ आ जाए तो जन्म और मृत्यु के बीच में बुद्धत्व उपलब्ध हो जाता है। तो आदमी जाग जाता है जन्म और मृत्यु दोनों से। जिस जन्म की मृत्यु होनी है, उन दोनों के बीच जीवन तो नहीं हो सकता; आभास होगा। तो जब जन्म की मृत्यु ही हो जानी है, तो इस जीवन का क्या भरोसा? तो फिर हम किसी और जीवन की खोज करें--किसी और जीवन की, जहां न जन्म हो, न मृत्यु।

समझें इस प्रश्न को अब।

यदि मैं तुमसे कहूं आकांक्षा न करो, तो तुम यात्रा ही शुरू न करोगे, जन्म ही न होगा। अगर मैं तुमसे यह न कहूं कि आकांक्षा भी छूट जानी चाहिए, तो तुम कभी पहुंचोगे नहीं। मोक्ष की आकांक्षा मोक्ष की यात्रा का पहला कदम है। और मोक्ष की आकांक्षा का त्याग मोक्ष की यात्रा का अंतिम कदम है। दोनों मुझे तुमसे कहने होंगे।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक हैं, जो कहते हैं, जब आकांक्षा से बाधा ही पड़ती है तो क्या मोक्ष की आकांक्षा करना! फिर हम जैसे हैं वैसे ही भले हैं। इससे यह मत समझ लेना कि उन्होंने संसार की आकांक्षाएं छोड़ दीं। उन्होंने सिर्फ मोक्ष की आकांक्षा न की। उन्होंने अपने को धोखा दे लिया। संसार की आकांक्षाएं तो वे किए ही चले जाएंगे। क्योंकि संसार की आकांक्षाएं तो तभी छूटती हैं जब कोई मोक्ष की आकांक्षा करता है। जब कोई मोक्ष की आकांक्षा पर सब दांव पर लगाता है, पूरा दिल दांव पर लगाता है, तब संसार की आकांक्षाएं छूटती हैं। तब संसार की आकांक्षाओं में जो ऊर्जा संलग्न थी वह मुक्त होती है, मोक्ष की तरफ लगती है। लेकिन जो मोक्ष की तरफ की आकांक्षा किए चला जाता है, वह भी भटक जाता है। क्योंकि अंततः वह आकांक्षा भी बाधा बन जाएगी। एक दिन उसे भी छोड़ना है।

ऐसा समझो, रात हम दीया जलाते हैं। दीए की बाती और तेल, दीया जलना शुरू होता है। तो दीए की बाती पहले तो तेल को जलाती है। फिर जब तेल जल जाता है, तो दीए की बाती अपने को जला लेती है। सुबह न तेल बचता है, न बाती बचती है। तब समझो कि सुबह हुई। फिर भोर हुई।

तो पहले तो संसार की आकांक्षाओं का तुम तेल की तरह उपयोग करो, और मोक्ष की आकांक्षा का बाती की तरह। तो संसार की सारी आकांक्षाओं को जला दो मोक्ष की बाती को जलाने में। तेल का उपयोग कर लो, ईंधन का उपयोग कर लो। सारी आकांक्षाएं इकट्ठी कर लो संसार की, और मोक्ष की एक आकांक्षा पर समर्पित कर दो। झोंक दो सब। मगर ध्यान रखना, जिस दिन सब तेल चुक जाएगा, उस दिन यह बाती भी जल जानी चाहिए। नहीं तो सुबह न होगी। यह बाती कहीं बाधा न बन जाए।

तो एक तो सांसारिक लोग हैं, जो कभी मोक्ष की आकांक्षा ही नहीं करते। फिर दूसरे मंदिरों, मस्जिदों में बैठे हुए धार्मिक लोग हैं, जिन्होंने संसार की आकांक्षा छोड़ दी और परमात्मा की आकांक्षा पकड़ ली। अब उस आकांक्षा को नहीं छोड़ पा रहे हैं। ऐसा समझो कि कुछ तो ऐसे लोग हैं जो सीढ़ियों पर पैर ही नहीं रखते, ऊपर जाने की यात्रा ही शुरू नहीं होती। और कुछ ऐसे हैं जो सीढ़ियों को पकड़कर बैठ गए हैं। सीढ़ियां नहीं छोड़ते। जो सीढ़ियों के नीचे रह गया, वह भी ऊपर न पहुंच पाया; और जो सीढ़ियों पर रह गया, वह भी ऊपर न पहुंच पाया। मैं तुमसे कहता हूं, सीढ़ियां पकड़ो भी, छोड़ो भी।

मैंने सुना है, एक तीर्थयात्रियों की ट्रेन हरिद्वार जा रही थी। अमृतसर पर गाड़ी खड़ी थी। और एक आदमी को लोग जबर्दस्ती घसीटकर गाड़ी में रखना चाह रहे थे। लेकिन वह कह रहा था कि भाई, इससे उतरना तो नहीं पड़ेगा? उन्होंने कहा, उतरना तो पड़ेगा। जब हरिद्वार पहुंच जाएगी, तो उतरना पड़ेगा। तो उस आदमी ने कहा--वह बड़ा तार्किक आदमी था--उसने कहा, जब उतरना ही है तो चढ़ना क्या? यह तो विरोधाभासी है। चढ़ो भी, फिर उतरो भी। लेना-देना क्या है? हम चढ़ते ही नहीं। गाड़ी छूटने के करीब हो गई है, सीटी बजने लगी है, और भाग-दौड़ मच रही है।

आखिर उसके साथियों ने--जो उसके यात्री-दल के साथी थे--उन्होंने उसको पकड़ा और वह चिल्लाता ही जा रहा है कि जब उतरना है तो चढ़ना क्या, मगर उन्होंने कहा कि अब इसकी सुनें! समझाने का समय भी नहीं, उसको चढ़ा दिया।

फिर वही झंझट हरिद्वार के स्टेशन पर मची। वह कहे कि उतरेंगे नहीं। क्योंकि जब चढ़ ही गए तो चढ़ गए। अब उतर नहीं सकते। वह आदमी तार्किक था। वह यह कह रहा है कि विरोधाभासी काम मैं नहीं कर सकता हूं। वह किसी विश्वविद्यालय में तर्क का प्रोफेसर होगा!

जब मैं तुमसे कहता हूं, संसार की आकांक्षा छोड़ो--अमृतसर की स्टेशन पर; फिर तुमसे कहता हूं, अब जिस ट्रेन में चढ़ गए वह भी छोड़ो--हरिद्वार पर। परमात्मा का घर आ गया, हरिद्वार आ गया, उसका द्वार आ गया, अब यह ट्रेन छोड़ो। तुम्हें उस आदमी पर हंसी आती है। लेकिन अगर तुम अपने भीतर खोजोगे, तुम उसी आदमी को छिपा हुआ पाओगे।

लूटे मजे उसी ने तेरे इंतजार के

जो हद्दे-इंतजार के आगे निकल गया

विरोधाभास है!

लूटे मजे उसी ने तेरे इंतजार के

जो हद्दे-इंतजार के आगे निकल गया

इंतजार का मजा ही तब है, जब इंतजार भी न रह जाए। याद तभी पूरी आती है, जब याद भी नहीं आती।

इसे थोड़ा कठिन होगा समझना। क्योंकि जब तक याद आती है, उसका मतलब अभी याद पूरी आई नहीं। बीच-बीच में भूल-भूल जाती होगी, तभी तो याद आती है। जिसकी याद पूरी आ गई, उसकी फिर याद आने की जगह कहां रही! फिर भूलेंगे कहां? याद कैसे आएगी? याद तभी तक आती है जब भूलना जारी रहता है। जब भूलना ही मिट गया तो याद कैसी! भूलना मिट जाने के साथ याद भी खो जाती है।

हद्दे-इंतजार--अब सीमा पार हो गई। लेकिन तभी याद का मजा है जब याद भी नहीं आती। अब एक ही हो गए उससे। अब याद करने के लिए भी फासला और दूरी न रही। किसकी याद करे और कौन करे? किसको पुकारे और कौन पुकारे? जिसे चाहा था, जिसकी चाहत थी, वह जो प्रेमी था और जो प्रेयसी थी, वे दोनों एक हो गए। अपनी ही कोई कैसे याद करे!

लूटे मजे उसी ने तेरे इंतजार के

जो हद्दे-इंतजार के आगे निकल गया

और धर्म की सारी भाषा विरोधाभासी है। होगी ही। क्योंकि धर्म यात्रा का प्रारंभ भी है और अंत भी। वह जन्म भी है और मृत्यु भी। और वह दोनों के पार भी है। इसलिए जल्दी विरोधाभासों में मत उलझ जाना। और उनको हल करने की कोशिश मत करना, समझने की कोशिश करना। तब तुम पाओगे, दोनों की जरूरत है। जो सीढ़ी चढ़ाती है, वही रोक भी लेती है। अगर तुमने बहुत विरोधाभास देखे तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि तुम एक तो कर लोगे, फिर दूसरा करने में अटकोगे।

तुमने अगर यह कहा, तुमने अगर यह सुन लिया कि परमात्मा याद करने से मिलता है, और तुम याद ही करते रहे, और तुम कभी हद्दे-इंतजार के आगे न गए, तो कभी परमात्मा न मिलेगा। राम-राम जपते रहोगे, तोता-रटंत रहेगी। कंठ में रहेगा, हृदय तक न जाएगा। क्योंकि जो हृदय में चला गया, उसकी कहीं याद करनी

पड़ती है? याद होती रहती है, करनी नहीं पड़ती। होती रहती है कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि दो याद के बीच भी खाली जगह कहां? सातत्य बना रहता है। तब हद्दे-इंतजार।

और ऐसी घड़ी जब घटती है, तो ऐसा नहीं है कि जब तुम विरोधाभास की सीमा के पार निकलते हो, और जब तुम पैराडाक्स और विरोधाभास का अतिक्रमण करते हो, तो ऐसा नहीं है कि तुम ही परम आनंद को उपलब्ध होते हो, तुम्हारे साथ सारा अस्तित्व उत्सव मनाता है। क्योंकि तुम्हारे साथ सारा अस्तित्व भी अतिक्रमण करता है। एक सीमा और पार हुई।

जब अपने नफ्स पर इंसान फतह पाता है

जो गीत गाती है फितरत किसी को क्या मालूम

जो गीत गाती है फितरत किसी को क्या मालूम--जब सारी प्रकृति गीत गाती है, जब सारा अस्तित्व तुम्हारे उत्सव में सम्मिलित हो जाता है!

क्योंकि तुम अलग-थलग नहीं हो, तुममें अस्तित्व ने कुछ दांव पर लगाया है, तुम अस्तित्व के दांव हो, पासे हो, परमात्मा ने तुम्हारे ऊपर बड़ा दांव लगाया है, और बड़ी आशा रखी है। जिस दिन तुम उपलब्ध होते हो, तुम ही नहीं नाचते, परमात्मा भी नाचता है। तुम ही अकेले नाचे तो क्या नाच! परमात्मा भी खुश होता है। सारा अस्तित्व खुश होता है। एक फतह और मिली। एक विजय-यात्रा का चरण और पूरा हुआ।

जब अपने नफ्स पर इंसान फतह पाता है

जो गीत गाती है फितरत किसी को क्या मालूम

वह बड़ा चुप है गीत। इसलिए किसी को क्या मालूम! वह बड़ा मौन है। वह उन्हीं को दिखाई पड़ता है जिन्हें अदृश्य दिखाई पड़ने लगा। वह उन्हीं को सुनाई पड़ता है जो सन्नाटे को भी सुन लेते हैं। वह उन्हीं को स्पर्श हो पाता है जो अरूप का भी स्पर्श कर लेते हैं, निराकार से जिनकी चर्चा होने लगी।

जो गीत गाती है फितरत किसी को क्या मालूम

तीसरा प्रश्नः आकांक्षा मिटकर अभीप्सा बन जाती है। अभीप्सा की समाप्ति पर क्या कुछ बचता है? स्पष्ट करें।

आकांक्षा यानी संसार की आकांक्षाएं। आकांक्षा यानी आकांक्षाएं। एक नहीं, अनेक। संसार अर्थात अनेक। जब आकांक्षा मिटकर अभीप्सा बनती है--अभीप्सा यानी आकांक्षा, आकांक्षाएं नहीं। एक की आकांक्षा का नाम अभीप्सा, अनेक की अभीप्सा का नाम आकांक्षा। जब सारी आकांक्षाओं की किरणें इकट्ठी हो जाती हैं और एक सत्य पर, परमात्मा पर, या मोक्ष पर, या स्वयं पर, निर्वाण पर, कैवल्य पर केंद्रित हो जाती हैं, तो अभीप्सा। आकांक्षा और आकांक्षाओं का जाल जब संग्रहीभूत हो जाता है, तो अभीप्सा पैदा होती है। किरणें जब इकट्ठी हो जाती हैं, तो आग पैदा होती है। किरणें अनेक, आग एक।

यहां तक तो समझ में बात आ जाती है कि आदमी धन को चाहता है, पद को चाहता है, पत्नी को चाहता है, बेटे को चाहता है, भाई को चाहता है, जीवन चाहता है, लंबी उम्र चाहता है। यह सब चाहत, ये सब चाहतें इकट्ठी हो जाती हैं और आदमी सिर्फ परमात्मा को चाहता है--यहां तक भी समझ में आ जाता है। क्योंकि बहुत आकांक्षाएं जिसने की हैं वह इसकी भी कल्पना तो कम से कम कर ही सकता है कि सभी आकांक्षाएं इकट्ठी हो गयीं, सभी छोटे नदी-नाले गिर गए एक ही गंगा में और गंगा बहने लगी सागर की तरफ। लेकिन जब आकांक्षा

के बाद अभीप्सा भी खो जाती है तब क्या बचता है? नदी-नाले खो जाते हैं गंगा में; फिर जब गंगा खो जाती है सागर में, तो क्या बचता है? सागर बचता है। गंगा नहीं बचती।

अब इसे तुम समझो।

पहले तुम्हारी आकांक्षाएं खो जाएंगी, तुम बचोगे। फिर तुम भी खो जाओगे, परमात्मा बचेगा। जब तक तुम आकांक्षाओं में भटके हुए हो, तब तक तुम तीन-तेरह हो, टुकड़े-टुकड़े हो। जब तुम्हारी सारी आकांक्षाएं अभीप्सा बन जाएंगी, तुम एक हो जाओगे, तुम योग को उपलब्ध हो जाओगे। योग यानी जुड़ जाओगे।

सांसारिक आदमी खंड-खंड है, एक भीड़ है। एक मजमा है। धार्मिक आदमी भीड़ नहीं है, एक एकांत है। धार्मिक आदमी इकट्ठा है। योग को उपलब्ध हुआ है। सारी आकांक्षाएं सिकोड़ लीं उसने। लेकिन अभी है। अभी होनाभर मात्र बाधा बची। अभी तुम हो--अभीप्सा में--और परमात्मा है। यद्यपि तुम एक हो गए हो, लेकिन परमात्मा अभी दूसरा है, पराया है।

इसे थोड़ा समझो।

सांसारिक आदमी भीड़ है। अनेक है। धार्मिक आदमी एक हो गया, इकट्ठा हो गया। इंटीग्रेटेड, योगस्थ। लेकिन अभी परमात्मा बाकी है। तो द्वैत बचा। सांसारिक आदमी अनेकत्व में जीता है, धार्मिक आदमी द्वैत में। भक्त बचा, भगवान बचा। खोजी बचा, सत्य बचा। सागर बचा, गंगा बची। अब भक्त को अपने को भी डुबा देना है, ताकि भगवान ही बचे, ताकि सागर ही बचे। गंगा को अपने को भी खोना है। अनेक से एक, फिर एक से शून्य, तब कौन बचेगा? तब सागर बचता है, जो सदा से था। तुम नहीं थे तब भी था। वही बचेगा। जहां से तुम आए थे, वहीं तुम लौट जाओगे। जो तुम्हारे होने के पहले था, वही तुम्हारे बाद बचेगा।

मरने के बाद आए हैं ऐ राहबर जहां

मेरा कयास है कि चले थे यहीं से हम

वर्तुल पूरा हो जाता है। जन्म के पहले तुम जहां थे, मरने के बाद वहीं पहुंच जाते हो। थोड़ा सोचो; गंगा सागर में गिरती है, गंगा सागर से ही आई थी--सूरज की किरणों पर चढ़ा था सागर का जल, सीढ़ियां बनाई थीं सूरज की किरणों की, फिर बादल घनीभूत हुए थे आकाश में, फिर बादल बरसे थे हिमालय पर, बरसे थे मैदानों में, हजारों नदी-नालों में बहे थे गंगा की तरफ--गंगोत्री से बही थी गंगा, मेघ से आई थी, मेघ सागर से आए थे; फिर चली वापस, फिर सागर में खो जाएगी।

मरने के बाद आए हैं ऐ राहबर जहां

मेरा कयास है कि चले थे यहीं से हम

वही बचेगा, जो तुम्हारे होने के पहले था। उसे सत्य कहो... । तुम एक लहर हो। सागर तुम्हारे पहले भी था। लहर खो जाएगी, सो जाएगी, सागर फिर भी होगा। और ध्यान रखना, सागर बिना लहरों के हो सकता है, लहर बिना सागर के नहीं हो सकती। कभी सागर में लहरें होती हैं, कभी नहीं भी होतीं। जब लहरें होती हैं, उसको हम सृष्टि कहते हैं। जब लहरें नहीं होतीं उसको हम प्रलय कहते हैं। अगर सारी लहरों को सोचें, तो सृष्टि और प्रलय। अगर एक-एक लहर का हिसाब करें, तो जन्म और मृत्यु। जब लहर नहीं होती, तो मृत्यु। जब लहर होती है, तो जन्म। लेकिन जब लहर मिट जाती है तब क्या सच में ही मिट जाती है? यही सवाल है गहरा। लहर सच में मिट जाती है? आकार मिटता होगा, जो लहर में था। जो लहर में वस्तुतः था, वह तो कैसे मिटेगा? जो था, वह तो नहीं मिटता, वह तो सागर में फिर भी होता है। बड़ा होकर होता है, विराट होकर होता है।

तुम रहोगे, तुम जैसे नहीं। तुम रहोगे, बूंद जैसे नहीं। तुम रहोगे, सीमित नहीं। पता-ठिकाना न रहेगा, नाम-रूप न रहेगा। लेकिन जो भी तुम्हारे भीतर घनीभूत है इस क्षण, वह बचेगा, विराट होकर बचेगा। तुम मिटोगे, लेकिन मिटना मौत नहीं है। तुम मिटोगे, मिटना ही होना है।

आखिरी प्रश्नः पिछले एक प्रश्नोत्तर में आपने समर्पण और भक्ति में भीतर होश, बाहर बेहोशी कही है, और ध्यानी और ज्ञानी को भीतर से बेहोशी और बाहर से होश कहा है। यह ध्यानी को किस तरह की भीतर की बेहोशी होती है? और बाहर फिर वह किस चीज का होश रखता है, किस तरह से होश रखता है, जब कि भीतर बेहोशी रहती है? क्या मेरे सुनने या समझने में कहीं गलती हो रही है? कृपया फिर से ठीक से समझाकर कहें।

नहीं--सुनने में कोई गलती नहीं हुई। समझने में गलती हो रही है। क्योंकि समझ विरोधाभास को नहीं समझ पाती। सुन तो लोगे; कितनी ही विरोधाभासी बात कहूं, सुन तो लोगे। और यह भी समझ लोगे कि विरोधाभासी है, और यह भी समझ लोगे कि सुन लिया, लेकिन फिर भी समझ न पाओगे। क्योंकि जिसको तुम समझ कहते हो वह विरोधाभास को समझ ही नहीं सकती। इसीलिए तो विरोधाभास कहती है। मैं फिर से दोहरा देता हूं, बात बड़ी सीधी है। जटिल मालूम होती है, क्योंकि बुद्धि सीधी-सीधी बात को नहीं पकड़ पाती।

एक तो है भक्त, प्रेमी। वह नाचता है। तुम उसकी बेहोशी को--जब मैं कहता हूं बेहोशी, तो मेरा मतलब है उसकी मस्ती--तुम उसके जाम को छलकते बाहर से भी देख लेते हो। मदिरा बही जा रही है। मीरा के नाच में, चैतन्य के भजन में, कुछ भीतर जाकर खोजना न होगा। उसकी मस्ती बाहर है। मौजे-दरिया, लहरों में है। फूलों में है। अंधे को भी समझ आ जाएगी। बहरे को भी सुनाई पड़ जाएगी। नाचती हुई है, गीत गाती हुई है। अभिव्यक्त है। यह जो मस्ती है, यह मस्ती तभी संभव है जब भीतर होश हो। नहीं तो यह मस्ती पागलपन हो जाएगी।

पागल और भक्त में फर्क क्या है? यही। पागल भी कभी नाचता है, मुस्कुराता है, गीता गाता है, लेकिन तुम पहचान लोगे। उसकी आंखों में जरा झांक कर देखना--उसमें बेहोशी तो है, लेकिन भीतर होश का दीया नहीं। भक्त बेहोश भी है और होश का दीया भी सम्हाले है। नाचता भी है, लेकिन दीए की लौ नहीं कंपती भीतर। बाहर नाच चलता है, भीतर सब ठहरा है--अकंप। तभी तो पागल और परमात्मा के दीवाने का फर्क है।

तो तुम्हें कभी-कभी परमात्मा का दीवाना भी पागल लगेगा, क्योंकि पागल और परमात्मा के दीवाने में बाहर तो एक ही जैसी घटना घटती है। और कभी-कभी पागल भी तुम्हें परमात्मा का दीवाना लगेगा।

लेकिन इसका मतलब यही हुआ कि तुम जरा भीतर न गए, बाहर से ही बाहर लौट आए। बाहर-बाहर देखकर लौट आए। जरा भीतर उतरो। जरा दो-चार सीढ़ियां भीतर जाओ। जरा पागल के नाच में और दीवाने-परमात्मा की मस्ती के नाच में जरा गौर करो। स्वाद भिन्न है, रंग-ढंग बड़ा भिन्न है। अलग-अलग अंदाज हैं। लेकिन थोड़ा गौर से देखोगे तो। ऐसे ही राह से चलते हुए देखकर गुजर गए तो भ्रांति हो सकती है। ऊपर से दोनों एक जैसे लगते हैं। पागल सिर्फ पागल है। बेहोश है। भक्त सिर्फ बेहोश नहीं है। बेहोश भी है, और कुछ होश भी है। बेहोशी के भीतर होश का दीया जल रहा है। यही विरोधाभास समझ में नहीं आता।

फिर एक और विरोधाभास, तो चीजें और जटिल हो जाती हैं।

यह तो भक्त हुआ, फिर ध्यानी हैं। यह तो मीरा हुई, फिर बुद्ध हैं। बुद्ध के बाहर तो कंपन भी न मिलेगा। वे मौजे-दरिया नहीं हैं, शांत झील हैं। वे फूल के रंग जैसे बाहर दिखाई पड़ते हैं, ऐसे नहीं हैं। वे ऐसे हैं जैसे बीज

में फूल छिपा हो। हजार-हजार रंग भीतर दबाकर बैठे हैं। स्वर हैं बहुत, लेकिन ऐसे जैसे वीणा में सोए हों, किसी ने छेड़े न हों। तो बाहर बिल्कुल सन्नाटा है।

तुम बुद्ध के बाहर होश पाओगे, मीरा के बाहर तुम मस्ती पाओगे। बुद्ध के बाहर तुम परम होश पाओगे। वहां जरा भी कंपन न होगा। और जैसे मीरा के बेहोशी में भीतर होश है, ऐसा ही बुद्ध के बाहर के होश में भीतर बेहोशी होगी, क्योंकि दोनों साथ होने ही चाहिए, तभी परिपूर्णता होती है। अगर सिर्फ बाहर का होश ही हो और भीतर बेहोशी न हो, तो यह तो तुम साधारण त्यागी-विरक्त में पा लोगे। इसके लिए बुद्ध तक जाने की जरूरत नहीं। यही तो बुद्धों में और बुद्धों का अनुसरण करने वालों में फर्क है। बुद्ध में और पाखंडी में यही फर्क है।

मीरा और पागल में जैसे फर्क है, बुद्ध और पाखंडी में वैसे फर्क है। पाखंडी को देखकर अगर ऊपर-ऊपर से आ गए तो धोखा हो जाएगा। बगुले को देखा है खड़ा? कैसा बुद्ध जैसा खड़ा रहता है। इसीलिए तो बगुला भगत शब्द हो गया। कैसा भगत मालूम पड़ता है! एक टांग पर खड़ा रहता है। कौन योगी इतनी देर इस तरह खड़ा रहता है? लेकिन नजर मछली पर टिकी रहती है।

तो तुम्हें ऐसे लोग मिल जाएंगे--काफी है उनकी संख्या--क्योंकि सरल है बगुला बन जाना, बहुत आसान है। लेकिन उनकी नजर मछली पर लगी रहेगी। योगी बैठा हो भला आंख बंद किए, हो सकता है नजर तुम्हारी जेब पर लगी हो। बाहर से तो कोई भी साध ले सकता है आसन, प्राणायाम, नियम, मर्यादा। सवाल है भीतर का। यह निष्कंपता बाहर की ही तो नहीं है, अन्यथा सर्कस की है।

यह निष्कंपता अगर बाहर ही बाहर है, और भीतर कंपन चल रहा है, और भीतर आपाधापी मची है, और भीतर चिंतन और विचार चल रहा है, और वासनाएं दौड़ रही हैं, और भीतर कोई परमात्मा को पा लेने की मस्ती नहीं बज रही है, और भीतर कोई गीत की गुनगुन नहीं है, भीतर कोई नाच नहीं चल रहा है... ।

ऐसा समझो बुद्ध और मीरा बिल्कुल एक जैसे हैं। फर्क इतना ही है कि जो मीरा के बाहर है, वह बुद्ध के भीतर है। जो मीरा के भीतर है, वह बुद्ध के बाहर है। एक सिक्का सीधा रखा है, एक सिक्का उलटा रखा है। सिक्के दोनों एक हैं। जो भीतर जाएगा वही पहचान पाएगा। और इसलिए मैं कहता हूं कि मुझे दोनों रास्ते स्वीकार हैं।

तुम अगर बुद्ध के अनुयायियों से मीरा की बात कहोगे, वे कहेंगे, कहां की अज्ञानी स्त्री की बात उठाते हो? जैनों से जाकर कहो, महावीर के अनुयायियों से कहो मीरा की बात, वे कहेंगे कि आसक्ति, राग? कृष्ण का भी हुआ तो क्या! मोह? कहीं बुद्धपुरुष नाचते हैं? यह तो सांसारिकों की बात है। और कहीं बुद्धपुरुष ऐसा रोते हैं, याद करते हैं, ऐसा इंतजार करते हैं? कहीं बुद्धपुरुष ऐसा कहते हैं कि सेज सजाकर रखी है, तुम कब आओगे? न, जैन कहेंगे, यह तो अज्ञानी है मीरा।

जैन तो कृष्ण को भी ज्ञानी नहीं मान सकते। वह बांसुरी बाधा डालती है। ज्ञानी के ओंठों पर बांसुरी जंचती नहीं। करके देख लो कोशिश, किसी जैन-मंदिर में जाकर महावीर के मुंह पर बांसुरी रख आओ, वे पुलिस में रिपोर्ट कर देंगे तुम्हारी, कि तुमने हमारे भगवान बिगाड़ दिए। यह दुष्कर्म होगा वहां! यह दुर्घटना मानी जाएगी! यहां तुम बांसुरी जैन-मंदिर में लेकर आए कैसे? और महावीर के ओंठ पर रखने की हिम्मत कैसे की?

अनुयायियों के साथ बड़ा खतरा है। वे ऐसे ही हो जाते हैं जैसे घोड़ों की आंखों पर पट्टियां बंधी होती हैं--बस एक तरफ दिखाई पड़ता है। तांगे में जुते घोड़े देखे? बस वैसे ही अनुयायी होते हैं। बस एक तरफ दिखाई पड़ता है। जीवन का विस्तार खो जाता है। संप्रदाय का यही अर्थ है।

धर्म तो बहुआयामी है। संप्रदाय एक आयामी है, वन डायमेंशनल है। बस उन्होंने बुद्ध को देखा, समझा कि बात खतम हो गई। बुद्ध बहुत खूब हैं, लेकिन बुद्ध होने के और भी बहुत ढंग हैं। जिंदगी बड़ी अनंत आयामी है।

परमात्मा किसी पर चुक नहीं जाता। हजार-हजार रंगों में, हजार-हजार फूलों में, हजार-हजार ढंगों में अस्तित्व खिलता है और नाचता है।

मगर दो बड़े बुनियादी ढंग हैं। एक ध्यान का, और एक प्रेम का। मीरा प्रेम से पहुंची। जो प्रेम से पहुंचेगा, उसकी मस्ती बाहर नाचती हुई होगी, और भीतर ध्यान होगा। भीतर मौन होगा, सन्नाटा होगा। मीरा को भीतर काटोगे, तो तुम बुद्ध को पाओगे वहां। और मैं तुमसे कहता हूं, अगर बुद्ध की भी तुम खोजबीन करो और भीतर उतर जाओ, तो तुम वहां मीरा को नाचता हुआ पाओगे। इसके अतिरिक्त हो नहीं सकता। क्योंकि जब तक ध्यान मस्ती न बने, और जब तक मस्ती ध्यान न बने, तब तक अधूरा रह जाता है सब।

इसलिए कभी यह मत सोचना कि जिस ढंग से तुमने पाया, वही एक ढंग है। और कभी दूसरे के ढंग को नकार से मत देखना। और कभी दूसरे के ढंग को निंदा से मत देखना, क्योंकि वह अहंकार की चालबाजियां हैं। सदा ध्यान रखना, हजार-हजार ढंग से पाया जा सकता है। बहुत हैं रास्ते उसके। बहुत हैं द्वार उसके मंदिर के। तुम जिस द्वार से आए, भला। और भी द्वार हैं। और दो प्रमुख-द्वार हैं। होने ही चाहिए। क्योंकि स्त्री और पुरुष दो व्यक्तित्व के मूल ढंग हैं।

स्त्री यानी प्रेम। पुरुष यानी ध्यान। पुरुष अकेला होकर उसे पाता है। स्त्री उसके साथ होकर उसे पाती है। पुरुष सब भांति अपने को शून्य करके उसे पाता है। स्त्री सब भांति अपने को उससे भरकर पाती है। मगर जब मैं स्त्री और पुरुष कह रहा हूं, तो मेरा मतलब शारीरिक नहीं है। बहुत पुरुष हैं जिनके पास प्रेम का हृदय है, वे प्रेम से ही पाएंगे। बहुत स्त्रियां हैं जिनके पास ध्यान की क्षमता है, वे ध्यान से पाएंगी।

मगर यह बात तुम सदा ही ध्यान रखना कि जो तुम बाहर पाओगे, उससे विपरीत तुम भीतर पाओगे। क्योंकि विपरीत से जुड़कर ही सत्य निर्मित होता है। सत्य विरोधाभासी है। सत्य पैराडाक्स है।

आज इतना ही।

तेरहवां प्रवचन

अंतर्बाती को उकसाना ही ध्यान

अनवस्सुतचित्तस्स अनन्वाहतचेतसो।
पुं◌पापपहीनस्स नत्थि जागरतो भयं।। 34।।

कुम्भूपमं कायमिमं विदित्वा नगरूपमं चित्तमिदं ठपेत्वा।
योधेथ मारं पां◌युधेन जितं च रक्खे अनिवेसनोसिया।। 35।।

अचिरं वत" यं कायो पठविं अधिसेस्सति।
छुद्धो अपेतविं◌णो निरत्थं" व कलिङ्गरं।। 36।।

दिसो दिसं यन्तं कयिरा वेरी वा पन वेरिनं।
मिच्छापणिहितं चित्तं पापियो नं ततो करे।। 37।।

न तं माता पिता कयिरा अ◌ो◌◌ वापि च ◌ा◌तका।
सम्मापणिहितं चित्तं सेय्यसो नं ततो करे।। 38।।

दुनिया है तहलके में तो परवा न कीजिए
यह दिल है रूहे-अस्र का मसकन बचाइए
दिल बुझ गया तो जानिए अंधेर हो गया
एक शमा आंधियों में है रोशन बचाइए

संसार बदलता है, फिर भी बदलता नहीं। संसार की मुसीबतें तो बनी ही रहती हैं। वहां तो तूफान और आंधी चलते ही रहेंगे। अगर किसी ने ऐसा सोचा कि जब संसार बदल जाएगा तब मैं बदलूंगा, तो समझो कि उसने न बदलने की कसम खा ली। तो समझो कि उसकी बदलाहट कभी हो न सकेगी। उसने फिर तय ही कर लिया कि बदलना नहीं है, और बहाना खोज लिया।

बहुत लोगों ने बहाने खोज रखे हैं। वे कहते हैं, संसार ठीक हालत में नहीं है, हम ठीक होना भी चाहें तो कैसे हो सकेंगे? अंधे हैं ऐसे लोग; क्योंकि संसार कभी ठीक नहीं हुआ, फिर भी व्यक्तियों के जीवन में फूल खिले हैं। कोई बुद्ध रोशन हुआ, कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट सुगंध को उपलब्ध हुए हैं। संसार तो चलता ही रहा है। ऐसे ही चलता रहेगा। संसार के बदलने की प्रतीक्षा मत करना। अन्यथा तुम बैठे रहोगे प्रतीक्षा करते, अंधेरे में ही जीयोगे, अंधेरे में ही मरोगे। और संसार तो सदा है। तुम अभी हो, कल विदा हो जाओगे।

इसलिए एक बात ख्याल में रख लेनी है, बदलना है स्वयं को। और कितने ही तूफान हों, कितनी ही आंधियां हों, भीतर एक ऐसा दीया है कि उसकी शमा जलाई जा सकती है। और कितना ही अंधकार हो बाहर, भीतर एक मंदिर है जो रोशन हो सकता है।

तुम बाहर के अंधेरे से मत परेशान होना। उतनी ही चिंता और उतना ही श्रम भीतर की ज्योति को जलाने में लगा देना। और बड़े आश्चर्य की तो बात यही है कि जब भीतर प्रकाश होता है, जब तुम्हारी आंखों के भीतर प्रकाश होता है, तो बाहर अंधकार मिट जाता है। कम से कम तुम्हारे लिए मिट जाता है। तुम एक और दूसरे ही जगत में जीने लगते हो। और हर व्यक्ति परमात्मा की धरोहर है। कुछ है, जो तुम पूरा करोगे तो ही मनुष्य कहलाने के अधिकारी हो सकोगे।

एक अवसर है जीवन, जहां कुछ सिद्ध करना है। जहां सिद्ध करना है कि हम बीज ही न रह जाएंगे, अंकुरित होंगे, खिलेंगे, फूल बनेंगे। सिद्ध करना है कि हम संभावना ही न रह जाएंगे, सत्य बनेंगे। सिद्ध करना है कि हम केवल एक आकांक्षा ही न होंगे कुछ होने की, हमारे भीतर होना प्रगट होगा। उस प्रागट्य का नाम ही बुद्धत्व है।

दुनिया है तहलके में तो परवा न कीजिए

यह दिल है रूहे-अस्र का मसकन बचाइए

यह जो भीतर हृदय है, जिसे बुद्ध ने चित्त कहा, जिसे महावीर, उपनिषद और वेद आत्मा कहते हैं, यह अस्तित्व का मंदिर है।

... रूहे-अस्र का मसकन बचाइए

दिल बुझ गया तो जानिए अंधेर हो गया

अंधेरे की उतनी चिंता मत करिए। अंधेरे ने कब किसी रोशनी को बुझाया है? अंधेरा कितना ही बड़ा हो, एक छोटे से टिम-टिमाते दीए को भी नहीं बुझा सकता। अंधेरे से कभी अंधेर नहीं हुआ है।

दिल बुझ गया तो जानिए अंधेर हो गया

एक शमा आंधियों में है रोशन बचाइए

वह जो भीतर ज्योति जल रही है जीवन की, वह जो तुम्हारे भीतर जागा हुआ है, वह जो तुम्हारा चैतन्य है, बस उसको जिसने बचा लिया। सब बचा लिया। उसे जिसने खो दिया, वह सब भी बचा ले तो उसने कुछ भी बचाया नहीं। फिर तुम सम्राट हो जाओ, तो भी भिखारी रहोगे। और भीतर की ज्योति बचा लो, तो तुम चाहे राह के भिखारी रहो, तुम्हारे साम्राज्य को कोई छीन नहीं सकेगा।

सम्राट होने का एक ही ढंग है, भीतर की संपदा को उपलब्ध हो जाना। स्वामी होने का एक ही ढंग है, भीतर के दीए के साथ जुड़ जाना, एक हो जाना। और वह जो भीतर का दीया है, चाहता है प्रतिपल उसकी बाती को सम्हालो, उकसाओ। उस बाती के उकसाने का नाम ही ध्यान है। बाहर के अंधेरे पर जिन्होंने ध्यान दिया, वे ही अधार्मिक हो जाते हैं। और जिन्होंने भीतर के दीए पर ध्यान दिया, वे ही धार्मिक हो जाते हैं। मंदिर-मस्जिदों में जाने से कुछ भी न होगा। मंदिर तुम्हारा भीतर है। प्रत्येक व्यक्ति अपना मंदिर लेकर पैदा हुआ है। कहां खोजते हो मंदिर को? पत्थरों में नहीं है। तुम्हारे भीतर जो परमात्मा की छोटी सी लौ है, वह जो होश का दीया है, वहां है।

ये बुद्ध के सूत्र उस अप्रमाद के दीए को हम कैसे उकसाएं उसके ही सूत्र हैं। इन सूत्रों से दुनिया में क्रांति नहीं हो सकती, क्योंकि समझदार दुनिया में क्रांति की बात करते ही नहीं। वह कभी हुई नहीं। वह कभी होगी भी नहीं। समझदार तो भीतर की क्रांति की बात करते हैं, जो सदा संभव है। हुई भी है। आज भी होती है। कल भी होती रहेगी। असंभव की चेष्टा करना मूढ़ता है। और असंभव की चेष्टा में जो संभव था वह भी खो जाता है।

जो मिल सकता था वह भी नहीं मिल पाता उसकी चेष्टा में जो कि मिल ही नहीं सकता है। संभव की चेष्टा ही समझ का सबूत है। असंभव की चेष्टा ही मूढ़तापूर्ण जीवन है।

बुद्ध ने कहा है, "जिसके चित्त में राग नहीं है, और इसलिए जिसके चित्त में द्वेष नहीं है, जो पाप-पुण्य से मुक्त है, उस जाग्रत पुरुष को भय नहीं।"

तुम तो भगवान को भी खोजते हो तो भय के कारण। और भय से कहीं भगवान मिलेगा? हां, भगवान मिल जाता है तो भय खो जाता है। भगवान और भय साथ-साथ नहीं हो सकते। यह तो ऐसे ही है जैसे अंधेरा और प्रकाश साथ-साथ रखने की कोशिश करो। तुम्हारी प्रार्थनाएं भी भय से आविर्भूत होती हैं। इसलिए व्यर्थ हैं। दो कौड़ी का भी उनका मूल्य नहीं है। तुम मंदिर में झुकते भी हो तो कंपते हुए झुकते हो। यह प्रेम का स्पंदन नहीं है, यह भय का कंपन है।

बड़ा फर्क है दोनों में।

जब प्रेम उतरता है हृदय में, तब भी सब कंप जाता है। लेकिन प्रेम की पुलक! कहां प्रेम की पुलक, कहां भय का घबड़ाना, कंपना! ध्यान रखना, प्रेम की भी एक ऊष्मा है और बुखार की भी। और प्रेम में भी एक गरमाहट घेर लेती है और बुखार में भी। तो दोनों को एक मत समझ लेना। भय में भी आदमी झुकता है, प्रेम में भी। पर दोनों को एक मत समझ लेना। भयभीत भी प्रार्थना करने लगता है, प्रेम से भरा भी। लेकिन भयभीत की प्रार्थना अपने भीतर घृणा को छिपाए होती है। क्योंकि जिससे हम भय करते हैं उससे प्रेम हो नहीं सकता।

इसलिए जिन्होंने भी तुमसे कहा है, भगवान से भय करो, उन्होंने तुम्हारे अधार्मिक होने की बुनियाद रख दी। मैं तुमसे कहता हूं, सारी दुनिया से भय करना, भगवान से भर नहीं। क्योंकि जिससे भय हो गया, उससे फिर प्रेम के, आनंद के संबंध जुड़ते ही नहीं। फिर तो जहर घुल गया कुएं में। फिर तो पहले से ही तुम विषाक्त हो गए। फिर तुम्हारी प्रार्थना में धुआं होगा, प्रेम की लपट न होगी। फिर तुम्हारी प्रार्थना से दुर्गंध उठ सकती है। और तुम धूप और अगरबत्तियों से उसे छिपा न सकोगे। फिर तुम फूलों से उसे ढांक न सकोगे। फिर तुम लाख उपाय करो, सब उपाय ऊपर-ऊपर रह जाएंगे। थोड़ा सोचो, जब भीतर भय हो तो कैसे प्रार्थना पैदा हो सकती है?

इसलिए बुद्ध ने परमात्मा की बात ही नहीं की। अभी तो प्रार्थना ही पैदा नहीं हुई तो परमात्मा की क्या बात करनी? अभी आंख ही नहीं खुली तो रोशनी की क्या चर्चा करनी? अभी चलने के योग्य ही तुम नहीं हुए हो, घुटने से सरकते हो, अभी नाचने की बात क्या करनी? प्रार्थना पैदा हो तो परमात्मा। लेकिन प्रार्थना तभी पैदा होती है जब अभय--फियरलेसनेस।

यहां एक बात और समझ लेनी जरूरी है। अभय का अर्थ निर्भय मत समझ लेना। ये बारीक भेद हैं और बड़े बुनियादी हैं। निर्भय और अभय में बड़ा फर्क है। जमीन-आसमान का फर्क है। शब्दकोश में तो दोनों का एक ही अर्थ लिखा है। जीवन के कोश में दोनों के अर्थ बड़े भिन्न हैं। निर्भय का अर्थ है जो भीतर तो भयभीत है, लेकिन बाहर से जिसने किसी तरह इंतजाम कर लिया। जो भीतर तो कंपता है, लेकिन बाहर नहीं कंपता। जिसने न कंपने का अभ्यास कर लिया है। बाहर तक कंपन को आने नहीं देता। जिनको तुम बहादुर कहते हो, वे इतने ही कायर होते हैं, जितने कायर। कायर डरकर बैठ जाता है, बहादुर डरकर बैठता नहीं, चलता चला जाता है। कायर अपने भय को मान लेता है, बहादुर अपने भय को इनकार किए जाता है, लेकिन भयभीत तो है ही। अभय की अवस्था बड़ी भिन्न है। न वहां भय है, न वहां निर्भयता है। जब भय ही न रहा, तो निर्भय कोई कैसे होगा? अभय का अर्थ है, भय और निर्भय दोनों ही जहां खो जाते हैं। जहां वह बात ही नहीं रह जाती।

इस अवस्था को बुद्ध और महावीर दोनों ने भगवत्ता की तरफ पहला कदम कहा है। कौन आदमी अभय को उपलब्ध होगा? कौन से चित्त में अभय आता है? जिस चित्त में राग नहीं, उस चित्त में द्वेष भी नहीं होता। स्वभावतः। क्योंकि राग से ही द्वेष पैदा होता है।

तुमने ख्याल किया, किसी को तुम सीधा-सीधा शत्रु नहीं बना सकते। पहले मित्र बनाना पड़ता है। एकदम से किसी को शत्रु बनाओगे भी तो कैसे बनाओगे? शत्रु सीधा नहीं होता, सीधा पैदा नहीं होता, मित्र के पीछे आता है। द्वेष सीधे पैदा नहीं होता, राग के पीछे आता है। घृणा सीधे पैदा नहीं होती, जिसे तुम प्रेम कहते हो उसी के पीछे आती है। तो शत्रु किसी को बनाना हो तो पहले मित्र बनाना पड़ता है। और द्वेष किसी से करना हो तो पहले राग करना पड़ता है। किसी को दूर हटाना हो तो पहले पास लेना पड़ता है। ऐसी अनूठी दुनिया है। ऐसी उलटी दुनिया है।

द्वेष से तो तुम बचना भी चाहते हो। लेकिन जिसने राग किया, वह द्वेष से न बच सकेगा। जब तुमने व्यक्ति को स्वीकार कर लिया, तो उसकी छाया कहां जाएगी? वह भी तुम्हारे घर आएगी। तुम यह न कह सकोगे मेहमान से कि छाया बाहर ही छोड़ दो, हमने केवल तुम्हें ही बुलाया है। छाया तो साथ ही रहेगी। द्वेष राग की छाया है। वैराग्य राग की छाया है।

इसलिए तो मैं तुमसे कहता हूं, असली वैरागी वैरागी नहीं होता। असली वैरागी तो राग से मुक्त हो गया। इसलिए महावीर-बुद्ध ने उसे नया ही नाम दिया है, उसे वीतराग कहा है। तीन शब्द हुए--राग, वैराग्य, वीतरागता। राग का अर्थ है संबंध किसी से है, और ऐसी आशा कि संबंध से सुख मिलेगा। राग सुख का सपना है। किसी दूसरे से सुख मिलेगा, इसकी आकांक्षा है। द्वेष, किसी दूसरे से दुख मिल रहा है इसका अनुभव है। मित्रता, किसी को अपना मानने की आकांक्षा है। शत्रुता, कोई अपना सिद्ध न हुआ, पराया सिद्ध हुआ, इसका बोध है। मित्रता एक स्वप्न है। शत्रुता स्वप्न का टूट जाना। राग अंधेरे में टटोलना है, द्वार की आकांक्षा में। लेकिन जब द्वार नहीं मिलता और दीवाल मिलती है, तो द्वेष पैदा हो जाता है। द्वार अंधेरे में है ही नहीं, टटोलने से न मिलेगा। द्वार टटोलने में नहीं है। द्वार जागने में है।

तो बुद्ध कहते हैं, जिसके चित्त में राग नहीं है। राग का अर्थ है, जिसने यह ख्याल छोड़ दिया कि दूसरे से सुख मिलेगा। जो जाग गया, और जिसने समझा कि सुख किसी से भी नहीं मिल सकता। एक ही भ्रांति है, कहो इसे संसार, कि दूसरे से सुख मिल सकता है। पत्नी से, या पिता से, या भाई से, या बेटे से, या मित्र से, या धन से, या मकान से, या पद से, दूसरे से सुख मिल सकता है--तो राग पैदा होता है। स्वाभाविक, जिससे सुख मिल सकता है उसे हम गंवाना न चाहेंगे। जिससे सुख मिल सकता है उसे हम बचाना चाहेंगे। जिससे सुख मिल सकता है वह कहीं दूर न चला जाए, कहीं कोई और उस पर कब्जा न कर ले। तो पत्नी डरी है कि पति कहीं किसी और स्त्री की तरफ न देख ले। पति डरा है कि पत्नी कहीं किसी और में उत्सुक न हो जाए। क्योंकि इसी से तो सुख की आशा है। वह सुख कहीं और कोई दूसरा न ले ले।

लेकिन सुख कभी किसी दूसरे से मिला है? किसी ने भी कभी कहा कि दूसरे से सुख मिला है? आशा... और आशा... और आशा... । आशा कभी भरती नहीं। किसने तुम्हें आश्वासन दिया है कि दूसरे से सुख मिल सकेगा? और दूसरा जब तुम्हारे पास आता है, तो ध्यान रखना, वह अपने सुख की तलाश में तुम्हारे पास आया है। तुम अपने सुख की तलाश में उसके पास गए हो। न उसको प्रयोजन है तुम्हारे सुख से, न तुमको प्रयोजन है उसके सुख से। मिलेगा कैसे, प्रयोजन ही नहीं है? पत्नी तुम्हारे पास है, इसलिए नहीं कि तुम्हें सुख दे। तुम पत्नी के पास हो, इसलिए नहीं कि तुम उसे सुख दो।

उपनिषद कहते हैं, कौन पत्नी को पत्नी के लिए प्रेम करता है? पत्नी के लिए कोई प्रेम नहीं करता, अपने लिए प्रेम करता है। कौन पति को पति के लिए प्रेम करता है? अपने लिए प्रेम करता है। सुख की आकांक्षा अपने लिए है। और इसलिए अगर ऐसा भी हो जाए कि तुम्हें लगे कि दूसरे को दुख देकर सुख मिलेगा, तो भी तुम तैयार हो। और यही होता है। सोचते हैं दूसरे से सुख मिलेगा, लेकिन हम भी दूसरे को दुख ही दे पाते हैं और दूसरा भी हमें दुख दे पाता है।

जिसने इस सत्य को देख लिया वह संन्यस्त हो गया। संन्यास का क्या अर्थ है? जिसने इस सत्य को देख लिया कि दूसरे से सुख न मिलेगा, उसने अपनी दिशा मोड़ ली। वह भीतर घर की तलाश में लग गया। अपने भीतर खोजने लगा, कि बाहर तो सुख न मिलेगा अब भीतर खोज लूं। शायद जो बाहर नहीं है वह भीतर हो।

और जिन्होंने भी भीतर झांका, वे कभी खाली हाथ वापस न लौटे। उनके प्राण भर गए। उनके प्राण इतने भर गए कि उन्हें खुद ही न मिला, उन्होंने लुटाया भी, उन्होंने बांटा भी। कुछ ऐसा खजाना मिला कि बांटने से बढ़ता गया। कबीर ने कहा है, दोनों हाथ उलीचिए। जब सुख मिल जाए तो दोनों हाथ उलीचिए। क्योंकि जितना उलीचो उतना ही बढ़ता चला जाता है। जैसे कुएं से पानी खींचते जाओ, झरने और नया पानी ले आते हैं। पुराना चला जाता है, नया आ जाता है।

जिसको सुख मिल गया उसे यह राज भी पता चल गया कि बांटो। क्योंकि अगर सम्हालोगे तो पुराना ही सम्हला रहेगा, नया-नया न आ सकेगा। लुटाओ, ताकि तुम रोज नए होते चले जाओ। छोटा-छोटा कुआं भी छोटा थोड़े ही है। अनंत सागर से जुड़ा है। भीतर से झरनों के रास्ते हैं। इधर खाली करो, उधर भरता चला जाता है।

तुम आत्मा ही थोड़े ही हो, परमात्मा भी हो। तुम छोटे कुएं ही थोड़े ही हो, सागर भी हो। सागर ही छोटे से कुएं में से झांक रहा है। छोटा कुआं एक खिड़की है जिससे सागर झांका। तुम भी एक खिड़की हो, जिससे परमात्मा झांका। एक बार अपनी सुध आ जाए, एक बार यह ख्याल आ जाए कि मेरा सुख मुझ में है, तो राग समाप्त हो जाता है।

"जिसके चित्त में राग नहीं... ।"

अर्थात जिसने जान लिया कि सुख मेरा भीतर है। इसलिए जिसके चित्त में द्वेष भी नहीं है। स्वभावतः, जब दूसरे से सुख मिलता ही नहीं, तो कैसी शिकायत, कैसा शिकवा कि दूसरे से दुख मिला? यह बात ही फिजूल हो गई। सुख का ख्याल था तो ही दुख का ख्याल बनता था। जिससे तुम जितनी ज्यादा अपेक्षा रखते हो उससे उतना ही दुख मिलता है।

लोग मुझसे पूछते हैं कि पति-पत्नी एक-दूसरे के कारण इतने दुखी क्यों होते हैं? तो मैं उनसे कहता हूं, वह संबंध ऐसा है जहां सबसे ज्यादा अपेक्षा है, इसलिए। जितनी अपेक्षा, उतनी मात्रा में दुख होगा। क्योंकि उतनी असफलता हाथ लगेगी। राह पर चलता आदमी अचानक तुम्हारे पास से गुजर जाता है, उससे दुख नहीं मिलता। मिलने का कोई कारण नहीं, अजनबी है। अपेक्षा ही कभी नहीं की थी। और अगर अजनबी मुस्कुराकर देख ले, तो अच्छा लगता है।

तुम्हारी पत्नी मुस्कुराकर देखे, पति मुस्कुराकर देखे, तो भी कुछ अच्छा नहीं लगता। लगता है जरूर कोई जालसाजी होगी। पत्नी मुस्कुरा रही है! मतलब कहीं बाजार में साड़ी देख आई है? या कहीं गहने देख लिए? या कोई नया उपद्रव है? क्योंकि सस्ता नहीं है मुस्कुराना, कोई मुफ्त नहीं मुस्कुराता। जहां संबंध हैं वहां तो लोग मतलब से मुस्कुराते हैं। पति अगर आज ज्यादा प्रसन्न घर आ गया है, फूल ले आया है, मिठाइयां ले आया है, तो

पत्नी संदिग्ध हो जाती है, कि जरूर कुछ... जरूर कुछ दाल में काला है। किसी स्त्री को बहुत गौर से देख लिया होगा, प्रायश्चित्त कर रहा है। नहीं तो कभी घर कोई मिठाइयां लेकर आता है!

जिनसे जितनी अपेक्षा है उनसे उतना ही दुख मिलता है। जितनी अपेक्षा है, उतनी ही टूटती है। जितना बड़ा भवन बनाओगे ताश के पत्तों का, उतनी ही पीड़ा होगी। क्योंकि गिरेगा। उतना श्रम, उतनी शक्ति, उतनी अभीप्साओं के इंद्रधनुष, सब टूट जाएंगे। सब जमीन पर रौंदे हुए पड़े होंगे, उतनी ही पीड़ा होगी। अजनबी से दुख नहीं मिलता। अपरिचित से दुख नहीं मिलता। क्योंकि अपेक्षा जरूरी है।

लेकिन अगर तुम अपेक्षा ही छोड़ दो, तो तुम्हें क्या कोई दुख दे सकेगा? इसे बहुत सोचना। इस पर मनन करना, ध्यान करना। अगर तुम अपेक्षा छोड़ दो, कोई मांग न रहे--क्योंकि तुम जाग गए कि मिलना किसी से कुछ भी नहीं है--तो तुम अचानक पाओगे तुम्हारे जीवन से दुख विसर्जित हो गया। अब कोई दुख नहीं देता।

सुख न मांगो तो कोई दुख नहीं देता। तब तो बड़ी अभूतपूर्व घटना घटती है। तुम सुख नहीं मांगते, कोई दुख नहीं देता। न बाहर से सुख आता है, न दुख आता है। पहली बार तुम अपने में रमना शुरू होते हो। क्योंकि अब बाहर नजर रखने की कोई जरूरत ही न रही। जहां से कुछ मिलना ही नहीं है, जहां खदान थी ही नहीं, सिर्फ धोखा था, आभास था, तुम आंख बंद कर लेते हो।

इसलिए बुद्धपुरुषों की आंख बंद है। वह जो बंद आंख है ध्यान करते बुद्ध की, या महावीर की, वह इस बात की खबर है केवल कि अब बाहर देखने योग्य कुछ भी न रहा। जब पाने योग्य न रहा, तो देखने योग्य क्या रहा? देखते थे, क्योंकि पाना था। पाने का रस लगा था, तो गौर से देखते थे। जो पाना हो, वही आदमी देखता है। जब पाने की भ्रांति ही टूट गई तो आदमी आंख बंद कर लेता है। बंद कर लेता है कहना ठीक नहीं, आंख बंद हो जाती है। पलक अपने आप बंद हो जाती है। फिर आंख को व्यर्थ ही दुखाना क्या? फिर आंख को व्यर्थ ही खोलकर परेशान क्या करना? और यह जो दृष्टि पर पलक का गिर जाना है, यही भीतर दृष्टि का पैदा हो जाना है।

"जिसके चित्त में राग नहीं और इसलिए जिसके चित्त में द्वेष नहीं, जो पाप-पुण्य से मुक्त है, उस जाग्रत पुरुष को भय नहीं।"

पाप और पुण्य, वे भी बाहर से ही जुड़े हैं, जैसे सुख और दुख। इसे थोड़ा समझना। यह और भी सूक्ष्म, और भी जटिल है। यह तो बहुत लोग तुम्हें समझाते मिल जाएंगे कि सुख-दुख बाहर से मिलते नहीं, सिर्फ तुम्हारे ख्याल में हैं। लेकिन जो लोग तुम्हें समझाते हैं बाहर से सुख न मिलेगा, और इसलिए बाहर से दुख भी नहीं मिलता, वे भी तुमसे कहते हैं, पुण्य करो, पाप न करो। शायद वे भी समझे नहीं। क्योंकि समझे होते तो दूसरी बात भी बाहर से ही जुड़ी है। क्या है दूसरी बात? वह पहली का ही दूसरा पहलू है।

पहला है, दूसरे से मुझे सुख मिल सकता है। मिलता है दुख। इसलिए राग बांधता हूं और द्वेष फलता है। बोता राग के बीज हूं, फसल द्वेष की काटता हूं। चाहता हूं राग, हाथ में आता है द्वेष। तड़फड़ाता हूं। जैसे बुद्ध ने कहा, कोई मछली को सागर के बाहर कर दे। तट पर तड़फड़ाए। ऐसा आदमी तड़फड़ाता है।

फिर पाप-पुण्य क्या है? पाप-पुण्य इसका ही दूसरा पहलू है। पुण्य का अर्थ है, मैं दूसरे को सुख दे सकता हूं। पाप का अर्थ है, मैं दूसरे को दुख दे सकता हूं। तब तुम्हें समझ में आ जाएगा। दूसरे से सुख मिल सकता है यह, और मैं दूसरे को सुख दे सकता हूं यह, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हुए। दूसरा मुझे दुख देता है यह, और मैं दूसरे को दुख दे सकता हूं यह भी, उसी बात का पहलू हुआ।

इसलिए बुद्ध ने इस सूत्र में बड़ी महिमापूर्ण बात कही है। कहा है कि जिसके चित्त में न राग रहा, न द्वेष; जो पाप-पुण्य से मुक्त है। क्योंकि जब यही समझ में आ गया कि कोई मुझे सुख नहीं दे सकता, तो यह भ्रांति अब कौन पालेगा कि मैं किसी को सुख दे सकता हूं? तो कैसा पुण्य? फिर यह भ्रांति भी कौन पालेगा कि मैंने किसी को पाप किया, किसी को दुख दिया। यह भ्रांति भी गई। सुख-दुख के जाते ही, राग-द्वेष के जाते ही पाप-पुण्य भी चला जाता है। पाप-पुण्य सुख और दुख के ही सूक्ष्म रूप हैं।

इसलिए तो धर्मगुरु तुमसे कहते हैं कि जो पुण्य करेगा वह स्वर्ग जाएगा। स्वर्ग यानी सुख। तुमने चाहे इसे कभी ठीक-ठीक न देखा हो। और धर्मगुरु कहते हैं, जो पाप करेगा वह नर्क जाएगा। नर्क यानी दुख। अगर पुण्य का परिणाम स्वर्ग है और पाप का परिणाम नर्क है, तो एक बात साफ है कि पाप-पुण्य सुख-दुख से ही जुड़े हैं। जब सुख-दुख ही खो गया, तो पाप-पुण्य भी खो जाते हैं।

ध्यान रखना, दुनिया में दो तरह के भयभीत लोग हैं। जिनको तुम अधार्मिक कहते हो, वे डरे हैं कि कहीं दूसरा दुख न दे दे। और जिनको तुम धार्मिक कहते हो, वे डरे हैं कि कहीं मुझसे किसी दूसरे को दुख न हो जाए। जिनको तुम अधार्मिक कहते हो, वे डरे हैं कि कहीं ऐसा न हो कि मैं दूसरे से सुख लेने में चूक जाऊं। और जिनको तुम धार्मिक कहते हो, वे डरे हैं कि कहीं ऐसा न हो कि मैं दूसरे को सुख देने से चूक जाऊं। तो तुम्हारे धार्मिक और अधार्मिक भिन्न नहीं हैं। एक-दूसरे की तरफ पीठ किए खड़े होंगे, लेकिन एक ही तल पर खड़े हैं। तल का कोई भेद नहीं है। कोई तुम्हारा धार्मिक अधार्मिक से ऊंचे तल पर नहीं है, किसी और दूसरी दुनिया में नहीं है।

हो दौरे-गम कि अहदे-खुशी दोनों एक हैं

दोनों गुजश्तनी हैं खिजां क्या बहार क्या

चाहे पतझड़ हो, चाहे वसंत, दोनों ही क्षणभंगुर हैं। दोनों अभी हैं, अभी नहीं हो जाएंगे। दोनों पानी के बुलबुले हैं। दोनों ही क्षणभंगुर हैं। दोनों में कुछ चुनने जैसा नहीं है। क्योंकि अगर तुमने बहार को चुना, तो ध्यान रखना, अगर तुमने वसंत को चुना तो पतझड़ को भी चुन लिया। फिर वसंत में अगर सुख माना, तो पतझड़ में दुख कौन मानेगा?

एक महिला मेरे पास लाई गई। रोती थी, छाती पीटती थी, पति उसके चल बसे। वह कहने लगी, मुझे किसी तरह सांत्वना दें, समझाएं। किसी तरह मुझे मेरे दुख के बाहर निकालें। मैंने उससे कहा, सुख तूने लिया। माना कि सुख था, अब दुख कौन भोगेगा? तू बहुत होशियारी की बात कर रही है। पति के होने का सुख, तू कभी मेरे पास नहीं आई कि मुझे इस सुख से बचाएं। जगाएं, ये मैं सुख में डूबी जा रही हूं। तू कभी आई ही नहीं इस रास्ते पर।

लोग जब दुख में होते हैं तभी मंदिर की तरफ जाते हैं। और जो सुख में जाता है, वही समझ पाता है। दुख में जाकर तुम समझ न पाओगे। क्योंकि दुख छाया है, मूल नहीं। मूल तो जा चुका, छाया गुजर रही है। छाया को कैसे रोका जा सकता है?

मैंने उस महिला को कहा, तू रो ही ले, अब दुख को भी भोग ही ले। क्योंकि भ्रांति दुख की नहीं है, भ्रांति सुख की है। सुख मिल सकता है, तो फिर दुख भी मिलेगा। वसंत से मोह लगाया, तो पतझड़ में रोओगे। जवानी में खुश हुए, बुढ़ापे में रोओगे। पद में प्रसन्न हुए, तो फिर पद खोकर कोई दूसरा रोएगा तुम्हारे लिए? मुस्कुराए तुम, तो आंसू भी तुम्हें ही ढालने पड़ेंगे। और दोनों एक जैसे हैं ऐसा जिसने जान लिया, क्योंकि दोनों का स्वभाव क्षणभंगुर है, पानी के बबूले जैसे हैं... ।

ध्यान रखना, यह जानना सुख में होना चाहिए, दुख में नहीं। दुख में तो बहुत पुकारते हैं परमात्मा को, और फिर सोचते हैं, शायद उस तक आवाज नहीं पहुंचती। दुख में पुकारने की बात ही गलत है। जब तुमने सुख में न पुकारा, तो तुम गलत मौके पर पुकार रहे हो। जब तुम्हारे पास कंठ था और तुम पुकार सकते थे, तब न पुकारा; अब जब कंठ अवरुद्ध हो गया है तब पुकार रहे हो! अब पुकार निकलती ही नहीं। ऐसा नहीं है कि परमात्मा नहीं सुनता है। दुख में पुकार निकलती ही नहीं। दुख तो अनिवार्य हो गया।

अगर सुख में न जागे, और सुख को गुजर जाने दिया, तो अब छाया को भी गुजर जाने दो। मेरे देखे, जो सुख में जागता है वही जागता है। जो दुख में जागने की कोशिश करता है वह तो साधारण कोशिश है, सभी करते हैं। हर आदमी दुख से मुक्त होना चाहता है। ऐसा आदमी तुम पा सकते हो जो दुख से मुक्त नहीं होना चाहता? लेकिन इसमें सफलता नहीं मिलती, नहीं तो सभी लोग मुक्त हो गए होते। लेकिन जो सुख से मुक्त होना चाहता है, वह तत्क्षण मुक्त हो जाता है। लेकिन सुख से कोई मुक्त नहीं होना चाहता। यही आदमी की विडंबना है।

दुख से तुम मुक्त होना चाहते हो, लेकिन वहां से मार्ग नहीं। सुख से तुम मुक्त होना नहीं चाहते, वहां से मार्ग है। दीवाल से तुम निकलना चाहते हो, द्वार से तुम निकलना नहीं चाहते। जब दीवाल सामने आ जाती है, तब तुम सिर पीटने लगते हो कि मुझे बाहर निकलने दो। जब द्वार सामने आता है, तब तुम कहते हो अभी जल्दी क्या है? आने दो दीवाल को, फिर निकलेंगे।

ध्यान रखना, जो सुख में संन्यासी हुआ, वही हुआ। तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। उन्होंने ही छोड़ा जिन्होंने भोग में छोड़ा। पत्नी मर गई, इसलिए तुम संन्यासी हो गए। दिवाला निकल गया, इसलिए संन्यासी हो गए। नौकरी न लगी, इसलिए संन्यासी हो गए। चुनाव हार गए, इसलिए संन्यासी हो गए। तो तुम्हारा संन्यास हारे हुए का संन्यास है। इस संन्यास में कोई प्राण नहीं। लोग कहते हैं, "हारे को हरिनाम।" हारे को हरिनाम? हारे हुए को तो कोई हरि का नाम नहीं हो सकता।

जीत में स्मरण रखना बड़ा मुश्किल है। क्योंकि जीत बड़ी बेहोशी लाती है। जीत में तो तुम ऐसे अकड़ जाते हो कि अगर परमात्मा खुद भी आए, तो तुम कहो फिर कभी आना, आगे बढ़ो, अभी फुर्सत नहीं। और मैं तुमसे कहता हूं परमात्मा आया है, क्योंकि जीत में द्वार सामने होता है। लेकिन तुम अंधे होते हो।

"जिसके चित्त में राग नहीं और इसलिए जिसके चित्त में द्वेष नहीं, जो पाप-पुण्य से मुक्त है, उस जाग्रत पुरुष को भय नहीं।"

भय क्यों पैदा होता है? भय दो कारण से पैदा होता है। जो तुम चाहते हो, कहीं ऐसा न हो कि न मिले, तो भय पैदा होता है। या, जो तुम्हारे पास है, कहीं ऐसा न हो कि खो जाए, तो भय पैदा होता है। लेकिन जाग्रत पुरुष को पता चलता है कि तुम्हारे पास केवल तुम ही हो, और कुछ भी नहीं। और जो तुम हो, उसको खोने का कोई उपाय नहीं। उसे न चोर ले जा सकते हैं, न डाकू छीन सकते हैं। नैनं छिंदंति शस्त्राणि--उसे शस्त्र छेद नहीं पाते। नैनं दहति पावकः--उसे आग जलाती नहीं। जाग्रत को पता चलता है कि जो मैं हूं वह तो शाश्वत, सनातन है। उसकी कोई मृत्यु नहीं।

सोया कंपता है। डरता है कि कहीं कोई मुझसे छीन न ले।

दो दिन पहले एक युवती ने मुझे आकर कहा कि मैं सदा डरती रहती हूं कि जो मेरे पास है, कहीं छिन न जाए। मैंने उससे पूछा कि तू पहले मुझे यह बता, क्या तेरे पास है? उसने कहा, जब आप पूछते हो तो बड़ी मुश्किल होती है, है तो कुछ भी नहीं। फिर डर किस बात का है? क्या है तुम्हारे पास जो खो जाएगा? धन?

और जो तुम सोचते हो तुम्हारे पास है और खो सकता है, क्या तुम उसे बचा सकोगे? तुम कल पड़े रह जाओगे। सांस नहीं आएगी-जाएगी, मक्खियां उड़ेंगी तुम्हारे चेहरे पर--तुम उड़ा भी न सकोगे--धन यहीं का यहीं पड़ा रह जाएगा। धन तुम्हारा है? तुम नहीं थे तब भी यहां था, तुम नहीं होओगे तब भी यहां होगा। और ध्यान रखना, धन रोएगा नहीं कि तुम खो गए। मालिक खो गया और धन रोए। धन को पता ही नहीं कि तुम भी मालिक थे। तुमने ही मान रखा था।

तुम्हारी मान्यता ऐसी ही है जैसे मैंने सुना है, एक हाथी एक छोटे से नदी के पुल पर से गुजरता था और एक मक्खी उस हाथी के सिर पर बैठी थी। जब पुल कंपने लगा, और उस मक्खी ने कहा, देखो! हमारे वजन से पुल कंपा जा रहा है। हमारे वजन से! उसने हाथी से कहा, बेटे! हमारे वजन से पुल कंप रहा है। हाथी ने कहा कि मुझे अब तक पता ही न था कि तू भी ऊपर बैठी है।

कहते हैं छिपकलियां, उनको कभी निमंत्रण मिल जाता है उनकी जात-बिरादरी में तो जाती नहीं, वे कहती हैं महल गिर जाएगा, सम्हाले हुए हैं। छिपकली चली जाएगी तो महल गिर जाएगा!

तुम्हारी भ्रांति है कि तुम्हारे पास कुछ है। तुम्हारी मालकियत झूठी है। हां, जो तुम्हारे पास है वह तुम्हारे पास है। उसे न कभी किसी ने छीना है, न कोई छीन सकेगा। असलियत में संपदा की परिभाषा यही है कि जो छीनी न जा सके। जो छीनी जा सके वह तो विपदा है, संपदा नहीं है। वह संपत्ति नहीं है, विपत्ति है।

तो दो डर हैं आदमी जिनसे कंपता रहता है। कहीं मेरा छिन न जाए। स्वभावतः तुमने जो तुम्हारा नहीं है उसको मान लिया मेरा, इसलिए भय है। वह छिनेगा ही। सिकंदर भी न रोक पाएगा, नेपोलियन भी न रोक पाएगा, कोई भी न रोक पाएगा। वह छिनेगा ही। वह तुम्हारा कभी था ही नहीं। तुमने नाहक ही अपना दावा कर दिया था। तुम्हारा दावा झूठा था, इसलिए तुम भयभीत हो रहे हो। और जो तुम्हारा है, वह कभी छिनेगा नहीं। लेकिन उसकी तरफ तुम्हारी नजर नहीं है। जो अपना नहीं है, उसको मानकर बैठे हो। और जो अपना है, उसे त्याग कर बैठे हो। संसार का यही अर्थ है। संपदा का त्याग और विपदा का भोग। संसार का यही अर्थ है, जो अपना नहीं है उसकी घोषणा कि मेरा है, और जो अपना है उसका विस्मरण।

जिसको स्वयं का स्मरण आ गया वह निर्भय हो जाता है। निर्भय नहीं, अभय हो जाता है। वह भय से मुक्त हो जाता है। जो तुम्हारा नहीं है उसने ही तो तुम्हें भिखारी बना दिया है। मांग रहे हो, हाथ फैलाए हो। और कितनी ही भिक्षा मिलती जाए, मन भरता नहीं। मन भरना जानता ही नहीं।

बुद्ध कहते हैं, मन की आकांक्षा दुष्पूर है, वासना दुष्पूर है, वह कभी भरती नहीं।

एक सम्राट के द्वार पर एक भिखारी खड़ा था। और सम्राट ने कहा कि क्या चाहता है? उस भिखारी ने कहा, कुछ ज्यादा नहीं चाहता, यह मेरा भिक्षापात्र भर दिया जाए। छोटा सा पात्र था। सम्राट ने मजाक में ही कह दिया कि अब जब यह भिखारी सामने ही खड़ा है, और पात्र भरवाना है, और छोटा सा पात्र है, तो क्या अन्न के दानों से भरना, स्वर्ण अशर्फियों से भर दिया जाए।

मुश्किल में पड़ गया। स्वर्ण अशर्फियां भरी गयीं, सम्राट भी हैरान हुआ, वे स्वर्ण अशर्फियां खो गयीं। पात्र खाली का खाली रहा। लेकिन जिद पकड़ गई सम्राट को भी कि यह भिखारी, यह क्या मुझे हराने आया है! वह बड़ा सम्राट था, उसके खजाने बड़े भरपूर थे। उसने कहा कि चाहे सारा साम्राज्य लुट जाए, लेकिन इस भिखारी से थोड़े ही हारूंगा! उसने डलवायीं अशर्फियां।

लेकिन धीरे-धीरे उसके हाथ-पैर कंपने लगे। क्योंकि डालते गए और वे खोती गयीं। आखिर वह घबड़ा गया।

वजीरों ने कहा कि ये तो सब लुट जाएगा। और यह पात्र कोई साधारण पात्र नहीं मालूम होता। यह तो कोई जादू का मामला है। यह आदमी तो कोई शैतान है। उस भिखारी ने कहा, मैं सिर्फ आदमी हूं, शैतान नहीं। और यह पात्र आदमी के हृदय से बनाया है। हृदय कब भरता है? यह भी नहीं भरता। इसमें कुछ शैतानियत नहीं है, सिर्फ मनुष्यता है।

कहते हैं, सम्राट उतरा सिंहासन से, उस भिखारी के पैर छुए और उसने कहा कि मुझे एक बात समझ में आ गई--न तेरा पात्र भरता है, न मेरा भरा है। तेरे पात्र में भी ये सब स्वर्ण अशर्फियां खो गयीं, और मेरे पात्र में भी खो गई थीं, लेकिन तूने मुझे जगा दिया। बस अब इसको भरने की कोई जरूरत न रही। अब इस पात्र को ही फेंक देना है। जो भरता ही नहीं उस पात्र को क्या ढोना!

लेकिन आदमी मांगे चला जाता है, जो उसका नहीं है। और चाहे कितनी ही बेइज्जती से मिले, बेशर्मी से मिले, मांगे चला जाता है। भिखारी बड़े बेशर्म होते हैं। तुम उनसे कहते चले जाते हो, हटो, आगे जाओ, वे जिद्द बांधकर खड़े रहते हैं। बड़े हठधर्मी होते हैं। हठयोगी। भिखमंगा मन ही बड़ा जिद्दी है। बड़ी बेशर्मी से मांगे चला जाता है।

पिला दे ओक से साकी जो मुझसे नफरत है

प्याला गर नहीं देता न दे शराब तो दे

ओक से ही पी लेंगे।

प्याला गर नहीं देता न दे शराब तो दे

मांगे चले जाते हैं। कोई लज्जा भी नहीं है। पात्र कभी भरता नहीं। कितने जन्मों से तुमने मांगा है! कब जागोगे? कितनी बेइज्जती से मांगा है! कितने धक्के-मुक्के खाए हैं! कितनी बार निकाले गए हो महफिल से! फिर भी खड़े हो।

पिला दे ओक से साकी जो मुझसे नफरत है

प्याला गर नहीं देता न दे शराब तो दे

संसार में आदमी कितनी बेइज्जती झेल लेता है। कितनी बेशर्मी से मांगे चला जाता है। और एक बात नहीं देखता कि इतना मांग लिया, कुछ भरता नहीं; पात्र खाली का खाली है। कितना मांग लिया, कुछ भरता नहीं, दुष्पूर है। जिस दिन यह दिखाई पड़ जाता है उसी दिन तुम पात्र छोड़ देते हो। उसी क्षण अभय उत्पन्न हो जाता है।

अभय उन्हीं को उत्पन्न होता है जिन्होंने यह सत्य देख लिया कि जो तुम्हारा है वह तुम्हारा है, मांगने की जरूरत नहीं। तुम उसके मालिक हो ही। और जो तुम्हारा नहीं है, कितना ही मांगो, कितना ही इकट्ठा करो, तुम मालिक उसके हो न पाओगे। जिसके तुम मालिक हो, परमात्मा ने तुम्हें उसका मालिक बनाया ही है। और जिसके तुम मालिक नहीं हो, उसका तुम्हें मालिक बनाया नहीं। इस व्यवस्था में तुम कोई हेर-फेर न कर पाओगे। यह व्यवस्था शाश्वत है। एस धम्मो सनंतनो।

और जिसके जीवन में अभय आ गया, बुद्ध कहते हैं, उसके जीवन में सब आ गया। वह परमात्मा स्वयं हो गया। जहां अभय आ गया, वहां उठती है प्रार्थना, वहां उठता है परमात्मा। लेकिन उसकी बुद्ध बात नहीं करते, वह बात करने की नहीं है। वह चुपचाप समझ लेने की है। वह आंख से आंख में डाल देने की है। वह इशारे-इशारे में समझ लेने की है, जोर से कहने में मजा बिगड़ जाता है। वह बात चुप्पी में कहने की है। इसलिए बुद्ध उसकी

बात नहीं करते। वे मूल बात कह देते हैं, आधार रख देते हैं; फिर वे कहते हैं, बीज डाल दिया फिर तो वह अपने से ही अंकुर बन जाता है।

"इस शरीर को घड़े के समान अनित्य जान, इस चित्त को नगर के समान दृढ़ ठहरा, प्रज्ञारूपी हथियार से मार से युद्ध कर, जीत के लाभ की रक्षा कर, और उसमें आसक्त न हो।"

"इस शरीर को घड़े के समान अनित्य जान।"

शरीर घड़ा ही है। तुम भीतर भरे हो घड़े के, तुम घड़े नहीं हो। जैसे घड़े में जल भरा है। या और भी ठीक होगा, जैसा खाली घड़ा रखा है और घड़े में आकाश भरा है। घड़े को तोड़ दो, आकाश नहीं टूटता। घड़ा टूट जाता है, आकाश जहां था वहीं होता है। घड़ा टूट जाता है, सीमा मिट जाती है। जो सीमा में बंधा था वह असीम के साथ एक हो जाता है। घटाकाश आकाश के साथ एक हो जाता है।

शरीर घड़ा है। मिट्टी का है। मिट्टी से बना है, मिट्टी में ही गिर जाएगा। और जिसने यह समझ लिया कि मैं शरीर हूं, वही भ्रांति में पड़ गया। सारी भ्रांति की शुरुआत इस बात से होती है कि मैं शरीर हूं। तुमने अपने वस्त्रों को अपना होना समझ लिया। तुमने अपने घर को अपना होना समझ लिया। ठहरे हो थोड़ी देर को, पड़ाव है मंजिल नहीं, सुबह हुई और यात्रीदल चल पड़ेगा। थोड़ा जागकर इसे देखो।

मामूर-ए-फनां की कोताहियां तो देखो

एक मौत का भी दिन है दो दिन की जिंदगी में

बड़ी कंजूसी है। बड़ी संकीर्णता है।

मामूर-ए-फनां की कोताहियां तो देखो

एक मौत का भी दिन है दो दिन की जिंदगी में

कुल दो दिन की जिंदगी है। उसमें भी एक मौत का दिन निकल जाता है। एक दिन की जिंदगी है और कैसे इठलाते हो! कैसे अकड़े जाते हो! कैसे भूल जाते हो कि मौत द्वार पर खड़ी है! शरीर मिट्टी है और मिट्टी में गिर जाएगा।

"इस शरीर को घड़े के समान अनित्य जान।"

बुद्ध यह नहीं कहते कि मान। बुद्ध कहते हैं, जान। बुद्ध का सारा जोर बोध पर है। वे यह नहीं कहते कि मैं कहता हूं इसलिए मान ले कि शरीर घड़े की तरह है। वे कहते हैं, तू खुद ही जान। थोड़ा आंख बंद कर और पहचान, तू घड़े से अलग है।

ध्यान रखना, जिस चीज के भी हम द्रष्टा हो सकते हैं, उससे हम अलग हैं। जिसके हम द्रष्टा न हो सकें, जिसको दृश्य न बनाया जा सके, वही हम हैं। आंख बंद करो और शरीर को तुम अलग देख सकते हो। हाथ टूट जाता है, तुम नहीं टूटते। तुम लाख कहो कि मैं टूट गया, बात गलत मालूम होगी, खुद ही गलत मालूम होगी। हाथ टूट गया, पैर टूट गया, आंख चली गई, तुम नहीं चले गए। भूख लगती है, शरीर को लगती है, तुम्हें नहीं लगती। हालांकि तुम कहे चले जाते हो कि मुझे भूख लगी है। प्यास लगती है, शरीर को लगती है। फिर जलधार चली जाती है, तृप्ति हो जाती है, शरीर को होती है।

सब तृप्तियां, सब अतृप्तियां शरीर की हैं। सब आना-जाना शरीर का है। बनना-मिटना शरीर का है। तुम न कभी आते, न कभी जाते। घड़े बनते रहते हैं, मिटते जाते हैं। भीतर का आकाश शाश्वत है। उसे कोई घड़ा कभी छू पाया! उस पर कभी धूल जमी! बादल बनते हैं, बिखर जाते हैं। आकाश पर कोई रेखा छूटती है! तुम पर भी

नहीं छूटी। तुम्हारा क्वांरापन सदा क्वांरा है। वह कभी गंदा नहीं हुआ। इस भीतर के सत्य के प्रति जरा आंख बाहर से बंद करो और जागो।

बुद्ध कहते हैं, "इस शरीर को घड़े के समान अनित्य जान।"

सिद्धांत की तरह मत मान लेना कि ठीक है। क्योंकि तुमने बहुत बार सुना है, महात्मागण समझाते रहते हैं, शरीर अनित्य है, क्षणभर का बुलबुला है, तुमने भी सुन-सुनकर याद कर ली है बात। याद करने से कुछ भी न होगा। जानना पड़ेगा। क्योंकि जानने से मुक्ति आती है। ज्ञान रूपांतरित करता है।

इस चित्त को इस तरह ठहरा ले जैसे कि कोई नगर चट्टान पर बसा हो, या किसी नगर का किला पहाड़ की चट्टान पर बना हो--अडिग चट्टान पर बना हो।

"इस चित्त को नगरकोट के समान दृढ़ ठहरा ले।"

सारी कला इतनी ही है कि मन न कंपे, अकंप हो जाए। क्योंकि जब तक मन कंपता है तब तक दृष्टि नहीं होती। जब तक मन कंपता है तब तक तुम देखोगे कैसे? जिससे देखते थे वही कंप रहा है। ऐसा समझो कि तुम एक चश्मा लगाए हुए हो, और चश्मा कंप रहा है। चश्मा कंप रहा है, जैसे कि हवा में पत्ता कंप रहा हो, कोई पत्ता कंप रहा हो तूफान में, ऐसा तुम्हारा चश्मा कंप रहा है। तुम कैसे देख पाओगे? दृष्टि असंभव हो जाएगी। चश्मा ठहरा हुआ होना चाहिए।

मन कंपता हो, तो तुम सत्य को न जान पाओगे। मन के कंपने के कारण सत्य तुम्हें संसार जैसा दिखाई पड़ रहा है। जो एक है, वह अनेक जैसा दिखाई पड़ रहा है, क्योंकि मन कंप रहा है। जैसे कि रात चांद है, पूरा चांद है आकाश में, और झील नीचे कंप रही है लहरों से, तो हजार टुकड़े हो जाते हैं चांद के, प्रतिबिंब नहीं बनता। पूरे झील पर चांदी फैल जाती है, लेकिन चांद का प्रतिबिंब नहीं बनता। हजार टुकड़े हो जाते हैं। फिर झील ठहर गई, लहर नहीं कंपती, सब मौन हो गया, सन्नाटा हो गया, झील दर्पण बन गई, अब चांद एक बनने लगा। अनेक दिखाई पड़ रहा है, अनेक है नहीं। अनेक दिखाई पड़ रहा है कंपते हुए मन के कारण।

मैंने सुना है, एक रात मुल्ला नसरुद्दीन घर आया। शराब ज्यादा पी गया है। हाथ में चाबी लेकर ताले में डालता है, नहीं जाती, हाथ कंप रहा है। पुलिस का आदमी द्वार पर खड़ा है। वह बड़ी देर तक देखता रहा, फिर उसने कहा कि नसरुद्दीन, मैं कुछ सहायता करूं? लाओ चाबी मुझे दो, मैं खोल दूं। नसरुद्दीन ने कहा, चाबी की तुम फिकर न करो, जरा इस कंपते मकान को तुम पकड़ लो, चाबी तो मैं खुद ही डाल दूंगा।

जब आदमी के भीतर शराब में सब कंप रहा हो, तो उसे ऐसा नहीं लगता कि मैं कंप रहा हूं; उसे लगता है यह मकान कंप रहा है। तुमने कभी शराब पी? भांग पीकर कभी चले रास्ते पर? जरूर चलकर देखना चाहिए, एक दफा अनुभव करने जैसा है। उससे तुम्हें पूरे जीवन के अनुभव का पता चल जाएगा कि ऐसा ही संसार है। इसमें तुम नशे में चल रहे हो। तुम कंप रहे हो, कुछ भी नहीं कंप रहा है। तुम खंड-खंड हो गए हो, बाहर तो जो है वह अखंड है। तुम अनेक टुकड़ों में बंट गए हो, बाहर तो एक है। दर्पण टूट गया है तो बहुत चित्र दिखाई पड़ रहे हैं, जो है वह एक है। बुद्ध कहते हैं, चित्त ठहर जाए, अकंप हो जाए, जैसे दीए की लौ ठहर जाए, कोई हवा कंपाए न।

"प्रज्ञारूपी हथियार से मार से युद्ध कर, जीत के लाभ की रक्षा कर, पर उसमें आसक्त न हो।"

यह बड़ी कठिन बात है। कठिनतम, साधक के लिए। क्योंकि इसमें विरोधाभास है। बुद्ध कहते हैं, आकांक्षा कर, लेकिन आसक्त मत हो। सत्य की आकांक्षा करनी होगी। और सत्य को जीतने की भी यात्रा करनी होगी।

विजय को सुरक्षित करना होगा, नहीं तो खो जाएगी हाथ से विजय। ऐसे बैठे-ठाले नहीं मिल जाती है। बड़ा उद्यम, बड़ा उद्योग, बड़ा श्रम, बड़ी साधना, बड़ी तपश्चर्या।

"जीत के लाभ की रक्षा कर।"

और जो छोटी-मोटी जीत मिले उसको बचाना, रक्षा करना, भूल मत जाना, नहीं तो जो कमाया है वह भी खो जाता है।

तो ध्यान सतत करना होगा, जब तक समाधि उपलब्ध न हो जाए। अगर एक दिन की भी गाफिलता की, एक दिन की भी भूल-चूक की, तो जो कमाया था वह खोने लगता है। ध्यान तो ऐसा ही है जैसे कि कोई साइकिल पर सवार आदमी पैडल मारता है। वह सोचे कि अब तो चल पड़ी है साइकिल, अब क्या पैडल मारना! पैडल मारना बंद कर दे तो ज्यादा देर साइकिल न चलेगी। चढ़ाव होगा तब तो फौरन ही गिर जाएगी। उतार होगा तो शायद थोड़ी दूर चली जाए, लेकिन कितनी दूर जाएगी? ज्यादा दूर नहीं जा सकती। सतत पैडल मारने होंगे, जब तक कि मंजिल ही न आ जाए।

ध्यान रोज करना होगा। जो-जो कमाया है ध्यान से, उसकी रक्षा करनी होगी।

"जीत के लाभ की रक्षा कर।"

वह जो-जो हाथ में आ जाए उसको तो बचाना। जितना थोड़ा सा चित्त साफ हो जाए, ऐसा मत सोचना कि अब क्या करना है सफाई। वह फिर गंदा हो जाएगा। जब तक कि परिपूर्ण अवस्था न आ जाए समाधि की तब तक श्रम जारी रखना होगा।

हां, समाधि फलित हो जाए, फिर कोई श्रम का सवाल नहीं। समाधि उपलब्ध हो जाए, फिर तो तुम उस जगह पहुंच गए जहां कोई चीज तुम्हें कलुषित नहीं कर सकती। मंजिल पर पहुंच गए। फिर तो साइकिल को चलाना ही नहीं, उतर ही जाना है। फिर तो जो पैडल मारे वह नासमझ। क्योंकि वह फिर मंजिल के इधर-उधर हो जाएगा। एक ऐसी घड़ी आती है, जहां उतर जाना है, जहां रुक जाना है, जहां यात्रा ठहर जाएगी। लेकिन उस घड़ी के पहले तो श्रम जारी रखना। और जो भी छोटी-मोटी विजय मिल जाए, उसको सम्हालना है। संपदा को बचाना है।

"प्रज्ञारूपी हथियार से मार से युद्ध कर।"

वही एक हथियार है आदमी के पास--होश का, प्रज्ञा का। उसी के साथ वासना से लड़ा जा सकता है। और कोई हथियार काम न आएगा। जबर्दस्ती से लड़ोगे, हारोगे। दबाओगे, टूटोगे। वासना को किसी तरह छिपाओगे, छिपेगी नहीं। आज नहीं कल फूट पड़ेगी। विस्फोट होगा, पागल हो जाओगे। विक्षिप्त हो जाओगे, विमुक्त नहीं। एक ही उपाय है, जिससे भी लड़ना हो होश से लड़ना। होश को ही एकमात्र अस्त्र बना लेना। अगर क्रोध है, तो क्रोध को दबाना मत क्रोध को देखना, क्रोध के प्रति जागना। अगर काम है, तो काम पर ध्यान करना। होश से भरकर देखना, क्या है काम की वृत्ति।

और तुम चकित होओगे, इन सारी वृत्तियों का अस्तित्व निद्रा में है, प्रमाद में है। जैसे दीया जलने पर अंधेरा खो जाता है, ऐसे ही होश के आने पर ये वृत्तियां खो जाती हैं। मार, शैतान, काम--कुछ भी नाम दो--तुम्हारी मूर्च्छा का ही नाम है।

"अहो! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतना-रहित होकर व्यर्थ काठ की भांति पृथ्वी पर पड़ा रहेगा।"

बुद्ध कहते हैं, जब तुम जागकर देखोगे, परम आनंद का अनुभव होगा। भीतर एक उदघोष होगा--

"अहो! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतना-रहित होकर व्यर्थ काठ की भांति पृथ्वी पर पड़ा रहेगा।"

यह शरीर तुम नहीं। और जिस दिन तुम अपने शरीर को व्यर्थ काठ की भांति पड़ा हुआ देख लोगे, उसी दिन तुम शरीर के पार हो गए। अतिक्रमण हुआ। शरीर मौत है। शरीर रोग है। शरीर उपाधि है। जो शरीर से मुक्त हुआ, वह निरुपाधिक हो गया।

शरीर से मुक्त होने का क्या अर्थ है? शरीर से मुक्त होने का अर्थ है, इस बात की प्रतीति गहन हो जाए, सघन हो जाए; यह लकीर फिर मिटाए न मिटे, यह बोध फिर दबाए न दबे; यह बोध सतत हो जाए; जागने में, सोने में यह अनुभव होता रहे कि तुम शरीर में हो, शरीर ही नहीं।

"जितनी हानि द्वेषी द्वेषी की या वैरी वैरी की करता है, उससे अधिक बुराई गलत मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।"

दुश्मन से मत डरो, बुद्ध कहते हैं, वह तुम्हारा क्या बिगाड़ेगा? डरो अपने चित्त से। शत्रु शत्रु की इतनी हानि नहीं करता--नहीं कर सकता--जितना तुम्हारा चित्त गलत दिशा में जाता हुआ तुम्हारी हानि करता है। बुद्ध ने कहा है, तुम्हारा ठीक दिशा में जाता चित्त ही मित्र है। और तुम्हारा गलत दिशा में जाता चित्त ही शत्रु है। तुम अपने ही चित्त से सावधान हो जाओ। तुम अपने ही चित्त का सदुपयोग कर लो, सम्यक उपयोग कर लो, फिर तुम्हारी कोई हानि नहीं करता। अगर कोई दूसरा भी तुम्हारी हानि कर पाता है, तो सिर्फ इसीलिए कि तुम्हारा चित्त गलत दिशा में जा रहा था, नहीं तो कोई तुम्हारी हानि नहीं कर सकता। ठीक दिशा में जाते चित्त की हानि असंभव है। इसलिए असली सवाल उसी भीतर के दृढ़ दुर्ग को उपलब्ध कर लेना है।

"जितनी हानि द्वेषी द्वेषी की या वैरी वैरी की करता है, उससे अधिक बुराई गलत मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।"

क्या है गलत मार्ग? स्वयं को न देखकर शेष सब दिशाओं में भटकते रहना। भीतर न खोजकर, और सब जगह खोजना। अपने में न झांककर सब जगह झांकना। अपने घर न आना, और हर घर के सामने भीख मांगना गलत मार्ग है। और ऐसे तुम चलते ही रहे हो!

चलता हूं थोड़ी दूर हर एक राहरौ के साथ

पहचानता नहीं हूं अभी राहबर को मैं

यह चित्त तुम्हारा हरेक के साथ हो जाता है। कोई भी यात्री मिल जाता है, उसी के साथ हो जाता है। कोई स्त्री मिल गई, कोई पुरुष मिल गया, कोई पद मिल गया, कोई धन मिल गया, कोई यश मिल गया, चल पड़ा। थोड़ी दूर चलता है, फिर हाथ खाली पाकर फिर किसी दूसरे के साथ चलने लगता है। राह पर चलते अजनबियों के साथ हो लेता है। अभी अपने मार्गदर्शक को पहचानता नहीं है।

चलता हूं थोड़ी दूर हर एक राहरौ के साथ

जो मिल गया उसी के साथ हो लेता है। अपना कोई होश नहीं।

पहचानता नहीं हूं अभी राहबर को मैं

अभी कौन मार्गदर्शक है, कौन गुरु है, उसे मैं पहचानता नहीं।

बुद्ध ने कहा है, तुम्हारा होश ही तुम्हारा गुरु है। कभी आंख लुभा लेती है, रूप की तरफ चल पड़ता है। कभी कान लुभा लेता है, संगीत की तरफ चल पड़ता है। कभी जीभ लुभा लेती है, स्वाद की तरफ चल पड़ता है।

चलता हूं थोड़ी दूर हर एक राहरौ के साथ

पर हाथ कभी भरते नहीं, प्राण कभी तृप्त होते नहीं। सोचकर कि यह ठीक नहीं, फिर किसी और के साथ चल पड़ते हैं। मगर एक बात याद नहीं आती--

पहचानता नहीं हूं अभी राहबर को मैं

कौन है जिसके पीछे चलूं? होश, जागृति, ध्यान, उसके पीछे चलो तो ही पहुंच पाओगे। क्योंकि उसका जिसने साथ पकड़ लिया वह अपने घर लौट आता है, वह अपने स्रोत पर आ जाता है। गंगा गंगोत्री वापस आ जाती है।

"जितनी भलाई माता-पिता या दूसरे बंधु-बांधव नहीं कर सकते, उससे अधिक भलाई सही मार्ग पर लगा हुआ चित्त करता है।"

और कोई मित्र नहीं है, और कोई सगा-साथी नहीं है। और कोई संगी संग करने योग्य नहीं है। एक ही साथ खोज लेने योग्य है, अपने बोध का साथ। फिर तुम वीराने में भी रहो, रेगिस्तान में भी रहो, तो भी अकेले नहीं हो। और अभी तुम भरी दुनिया में हो और बिल्कुल अकेले हो। चारों तरफ भीड़-भाड़ है, बड़ा शोरगुल है, पर तुम बिल्कुल अकेले हो। कौन है तुम्हारे साथ? मौत आएगी, कौन तुम्हारे साथ जा सकेगा? लोग मरघट तक पहुंचा आएंगे। उससे आगे फिर कोई तुम्हारे साथ जाने को नहीं है। फिर तुम्हें कहना ही पड़ेगा, मन से कहो, बेमन से कहो--

शुक्रिया ऐ कब्र तक पहुंचाने वाले शुक्रिया

अब अकेले ही चले जाएंगे इस मंजिल से हम

फिर चाहे मन से कहो, चाहे बेमन से कहो; कहो चाहे न कहो; मौत के बाद अकेले हो जाओगे। थोड़ा सोचो, जो मौत में काम न पड़े वे जीवन में साथ थे! जो मौत में भी साथ न हो सका, वह जीवन में साथ कैसे हो सकता है? धोखा था, एक भ्रांति थी। मन को भुला लिया था, मना लिया था, समझा लिया था। डर लगता था अकेले में। अकेले होने में बेचैनी होती थी। चारों तरफ एक सपना बसा लिया था। अपनी ही कल्पनाओं का जाल बुन लिया था। अपने अकेलेपन को भुलाने के लिए मान बैठे थे कि साथ है। लेकिन कोई किसी के साथ नहीं। कोई किसी के संग नहीं। अकेले हम आते हैं और अकेले हम जाते हैं। और अकेले हम यहां हैं, क्योंकि दो अकेलेपन के बीच में कहां साथ हो सकता है?

जन्म के पहले अकेले, मौत के बाद अकेले, यह थोड़ी सी दूर पर राह मिलती है, इस राह पर बड़ी भीड़ चलती है, तुम यह मत सोचना तुम्हारे साथ चल रही है। सब अकेले-अकेले चल रहे हैं। कितनी ही बड़ी भीड़ चल रही हो, सब अकेले- अकेले चल रहे हैं। इसको जिसने जान लिया, इसको जिसने समझ लिया, वह फिर अपना साथ खोजता है। क्योंकि वही मौत के बाद भी साथ होगा। फिर वह अपना साथ खोजता है। वह कभी न छूटेगा।

अपना साथ खोजना ही ध्यान है। दूसरे का साथ खोजना ही विचार है। इसलिए विचार में सदा दूसरे की याद बनी रहती है। तुम्हारे सब विचार दूसरे की याद हैं। अगर तुम ध्यान करो--विचार पर विचार करो बैठकर--तो तुम पाओगे तुम्हारे विचारों में तुम करते क्या हो? तुम्हारे विचारों में तुम दूसरों की याद करते हो। बाहर से साथ न हों, तो भीतर से साथ हैं।

एक युवा संन्यस्त होने एक गुरु के पास पहुंचा। निर्जन मंदिर में उसने प्रवेश किया। गुरु ने उसके चारों तरफ देखा और कहा कि किसलिए आए हो? उस युवक ने कहा कि सब छोड़कर आया हूं तुम्हारे चरणों में, परमात्मा को खोजना है। उस गुरु ने कहा, पहले ये भीड़-भाड़ जो तुम साथ ले आए हो बाहर ही छोड़ आओ। उस युवक ने चौंककर चारों तरफ देखा, वहां तो कोई भी न था। भीड़-भाड़ का नाम ही न था, वह अकेले ही

खड़ा था। उसने कहा, आप भी कैसी बात करते हैं, मैं बिल्कुल अकेला हूं। तब तो उस युवक को थोड़ा शक हुआ कि मैं किसी पागल के पास तो नहीं आ गया!

उस गुरु ने कहा, वह मुझे भी दिखाई पड़ता है। आंख बंद करके देखो, वहां भीड़-भाड़ है। उसने आंख बंद की, जिस पत्नी को रोते हुए छोड़ आया है, वह दिखाई पड़ी। जिन मित्रों को गांव के बाहर बिदा मांग आया है, वे खड़े हुए दिखाई पड़े। बाजार, दुकान, संबंधी, तब उसे समझ आया कि भीड़ तो साथ है।

विचार बाहर की भीड़ के प्रतिबिंब हैं। विचार, जो तुम्हारे साथ नहीं हैं उनको साथ मान लेने की कल्पना है। ध्यान में तुम बिल्कुल अकेले हो; या अपने ही साथ हो, बस।

"जितनी भलाई माता-पिता या दूसरे बंधु-बांधव नहीं कर सकते, उससे अधिक भलाई सही मार्ग पर लगा चित्त करता है।"

सही मार्ग से क्या मतलब? अपनी तरफ लौटता। जिसको पतंजलि ने प्रत्याहार कहा है। भीतर की तरफ लौटता। जिसको महावीर ने प्रतिक्रमण कहा है। अपनी तरफ आता हुआ। जिसको जीसस ने कहा है, लौटो, क्योंकि परमात्मा का राज्य बिल्कुल हाथ के करीब है। वापस आ जाओ।

यह वापसी, यह लौटना ध्यान है। यह लौटना ही चित्त का ठीक लगना है। तुम चित्त के ठीक लगने से यह मत समझ लेना कि अच्छी-अच्छी बातों में लगा है। फिल्म की नहीं सोचता, स्वर्ग की सोचता है। स्वर्ग भी फिल्म है। अच्छी-अच्छी बातों में लगा है। दुकान की नहीं सोचता, मंदिर की सोचता है। मंदिर भी दुकान है। अच्छी-अच्छी बातों में लगा है। यह मत समझ लेना मतलब कि पाप की नहीं सोचता, पुण्य की सोचता है। पुण्य भी पाप है। अच्छी-अच्छी बातों का तुम मतलब मत समझ लेना कि राम-राम जपता है। मरा-मरा जपो कि राम-राम जपो, सब बराबर है। दूसरे की याद, पर का चिंतन! फिर वह मंदिर का हो कि दुकान का, राम का हो कि रहीम का, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

ठीक दिशा में लगे चित्त का अर्थ है, अपनी दिशा में लौटता। वहां विचार छूटते जाते हैं। धीरे-धीरे तुम ही रह जाते हो, तुम्हारा अकेला होना रह जाता है। शुद्ध। मात्र तुम। इतना शुद्ध कि मैं का भाव भी नहीं उठता। क्योंकि मैं का भाव भी एक विचार है। अहंकार भी नहीं उठता, क्योंकि अहंकार भी एक विचार है। जब और सब छूट जाते हैं, उन्हीं के साथ वह भी छूट जाता है। जिस मुकाम पर तुम "तू" को छोड़ आते हो, वहीं "मैं" भी छूट जाता है। जहां तुम दूसरों को छोड़ आते हो, वहीं तुम भी छूट जाते हो। फिर जो शेष रह जाता है, फिर जो शेष रह जाता है शुद्धतम, जब तक उसको न पा लो तब तक जिंदगी गलत दिशा में लगी है।

ये जिंदगी गुजार रहा हूं तेरे बगैर

जैसे कोई गुनाह किए जा रहा हूं मैं

जब तक इस जगह न आ जाओ तब तक सारी जिंदगी एक गुनाह है, एक पाप है। तब तक तुम कितना ही अपने को समझाओ, कितना ही अपने को ठहराओ, तुम कंपते ही रहोगे भय से। तब तक तुम कितना ही समझाओ, तुम धोखा दे न पाओगे। तुम्हारी हर सांत्वना के नीचे से खाई झांकती ही रहेगी भय की, घबड़ाहट की। मृत्यु तुम्हारे पास ही खड़ी रहेगी। तुम्हारी जिंदगी को जिंदगी मानकर तुम धोखा न दे पाओगे। और तुम कितने ही पुण्य करो, जब तक तुम स्वयं की सत्ता में नहीं प्रविष्ट हो गए हो--

ये जिंदगी गुजार रहा हूं तेरे बगैर

वही परमात्मा है। वही तुम्हारा होना है--तुमसे भी मुक्त। वही परमात्मा है। जहां घड़ा छूट गया और कोरा आकाश रह गया। नया, फिर भी सनातन। सदा का, फिर भी सदा नया और ताजा।

ये जिंदगी गुजार रहा हूं तेरे बगैर

जैसे कोई गुनाह किए जा रहा हूं मैं

और जब तक तुम उस जगह नहीं पहुंच जाते तब तक तुम अनुभव करते ही रहोगे कि कोई पाप हुआ जा रहा है। कुछ भूल हुई जा रही है। पैर कहीं गलत पड़े जा रहे हैं। लाख सम्हालो, तुम सम्हल न पाओगे। एक ही सम्हलना है, और वह सम्हलना है धीरे-धीरे अपनी तरफ सरकना। उस भीतरी बिंदु पर पहुंच जाना है, जिसके आगे और कुछ भी नहीं। जिसके पार बस विराट आकाश है।

इसे बुद्ध ने शुद्धता कहा है। इस शुद्धता में जो प्रविष्ट हो गया उसने ही निर्वाण पा लिया। उसने ही वह पा लिया जिसे पाने के लिए जीवन है। और जब तक ऐसा न हो जाए तब तक गुनगुनाते ही रहना भीतर, गुनगुनाते ही रहना--

ये जिंदगी गुजार रहा हूं तेरे बगैर

जैसे कोई गुनाह किए जा रहा हूं मैं

इसे याद रखना तब तक। भूल मत जाना। कहीं ऐसा न हो कि तुम किसी पड़ाव पर ही सोए रह जाओ। कहीं ऐसा न हो कि तुम भूल ही जाओ कि जीवन जागने का एक अवसर था। यह पाठशाला है। इससे उत्तीर्ण होना है। यहां घर बसाकर बैठ नहीं जाना है।

आज इतना ही।

चौदहवां प्रवचन

अनंत छिपा है क्षण में

पहला प्रश्नः आप श्रद्धा, प्रेम, आनंद की चर्चा करते हैं, लेकिन आप शक्ति के बारे में क्यों नहीं समझाते? आजकल मुझमें असह्य शक्ति का आविर्भाव हो रहा है। यह क्या है और इस स्थिति में मुझे क्या रुख लेना चाहिए?

शक्ति की बात करनी जरूरी ही नहीं। जब शक्ति का आविर्भाव हो तो प्रेम में उसे बांटो, आनंद में उसे ढालो। उसे दोनों हाथ उलीचो।

शक्ति के आविर्भाव के बाद अगर उलीचा न, अगर बांटा न, अगर औरों को साझीदार न बनाया, अगर प्रेम के गीत न गाए, उत्सव पैदा न किया जीवन में, तो शक्ति बोझ बन जाएगी। तो शक्ति पत्थर की तरह छाती पर बैठ जाएगी। फिर शक्ति से समस्या उठेगी।

गरीबी की ही समस्याएं नहीं हैं संसार में, अमीरी की बड़ी समस्याएं हैं। लेकिन अमीर की सबसे बड़ी समस्या यह है कि जो धन उसे मिल गया, उसका क्या करे? पर यह भी कोई समस्या है? उसे बांटो, उसे लुटाओ। बहुत हैं जिनके पास नहीं है, उन्हें दो।

कठिनाई इसलिए खड़ी होती है कि हमने जीवन में केवल मांगने की कला सीखी है। और जब हम सम्राट बनते हैं, तो अड़चन आ जाती है। मांगने की कला का अभ्यास, फिर अचानक जब हम सम्राट बन जाते हैं परमात्मा के प्रसाद से, उतरती है अपरिसीम ऊर्जा, तब भी हम मांगना ही जानते हैं, देना नहीं जानते। हमारे जीने का सारा ढंग मांगना सिखाता है। फिर जब परमात्मा हम पर बरसता है तो बांटने की हमारे पास कोई कला नहीं होती, आदत नहीं होती, अभ्यास नहीं होता, इसलिए अड़चन आती है। यही तो कठिनाई है।

मेरे पास बहुत अमीर लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं, बड़ी अड़चन है; धन तो है, क्या करें? अड़चन क्या है? अड़चन यही है कि आदत गरीबी की है, आदत भिखारी की है। अड़चन यही है। जिंदगीभर मांगा--कमाना सीखा। बांटना तो कभी सीखा नहीं! सीखते भी कैसे? था ही नहीं तो बांटते क्या? जो नहीं था उसको मांगा, इकट्ठा किया, जोड़ा, संजोया, सारा जीवन इकट्ठा करने की आदत बन गई। फिर मिला; अब देने को हाथ नहीं खुलते, बढ़ते नहीं, यही अड़चन है। यह अड़चन समझ ली तो हल हो गई। कुछ करना थोड़े ही है।

शक्ति मिल गई, आविर्भाव हुआ, यही तो सारे ध्यान की चेष्टा है।

और तुम पूछते हो कि "आप श्रद्धा, प्रेम, आनंद की बात करते हैं, शक्ति के बारे में क्यों नहीं समझाते?"

वही तो मैं शक्ति के बारे में समझा रहा हूं कि जब शक्ति उठे, तो आनंद बनाना। नहीं तो मुश्किल खड़ी होगी। जब शक्ति उठे तो नाचना। फिर साधारण चलने से काम न बनेगा, दौड़ना। फिर ऐसे ही उठना-बैठना काफी न होगा। अपूर्व नृत्य जब तक जीवन में न होगा तब तक बोझ मालूम होगा। जितनी बड़ी शक्ति, उतनी बड़ी जिम्मेवारी उतरती है। जितना ज्यादा तुम्हारे पास है, अगर तुम उसे फैला न सके तो बोझ हो जाएगा।

शक्ति की समस्या नहीं है, फैलाना सीखो। इसलिए तो प्रेम की बात करता हूं, शक्ति की बात नहीं करता। जिनके पास शक्ति नहीं है, उन्हें शक्ति के संबंध में क्या समझाना? जिनके पास है, उन्हें शक्ति के संबंध में क्या समझाना? जिनके पास नहीं है, उन्हें शक्ति कैसे पैदा की जाए--कैसे ध्यान, साधना, तपश्चर्या, अभ्यास, योग,

तंत्र--कैसे शक्ति पैदा की जाए, यह समझाना जरूरी है। फिर जिनके पास शक्ति आ जाए, द्वार खुल जाए परमात्मा का और बरसने लगे उसकी ऊर्जा, उन्हें शक्ति के संबंध में क्या समझाना? जब शक्ति सामने ही खड़ी है तो अब उसके संबंध में क्या बात करनी? उन्हें समझाना है प्रेम, आनंद, उत्सव। इसलिए प्रत्येक ध्यान पर मेरा जोर रहा है कि तुम उसे उत्सव में पूरा करना। कहीं ऐसा न हो कि ध्यान करने का तो अभ्यास हो जाए, और बांटने का अभ्यास न हो।

बहुत लोग दीनता से मरे हैं, बहुत लोग साम्राज्य से मर गए हैं। बहुत से लोग इसलिए दुखी हैं कि उनके पास नहीं है, फिर बहुत से लोग इसलिए दुखी हो जाते हैं कि उनके पास है, अब क्या करें? और जीवन का जो रसाध्यक्ष है, वह देखता है कि तुमने अपनी ऊर्जा का क्या उपयोग किया? उसे संचित किए चले गए? कृपणता की? इकट्ठा किया? तो जिससे महाआनंद फलित हो सकता था उससे सिर्फ नर्क ही निर्मित होगा।

तुमने कभी ख्याल किया, मीरा ने कुंडलिनी की बात नहीं की। बचेगी कहां कुंडलिनी? नाच में बह जाती है। योगी करते हैं बात, क्योंकि बांटना नहीं जानते। कुंडलिनी का अर्थ क्या है? ऊर्जा उठी और बह नहीं पा रही है। तो भीतर भरी मालूम पड़ती है। लेकिन मीरा में कहां बचेगी? भरने के पहले लुटाना आता है। आती भी नहीं कि बांट देती है। गीत बना लेती है, नाच ढाल लेती है। उत्सव में रूपांतरित हो जाती है। इसलिए मीरा ने कुंडलिनी की बात नहीं की। चैतन्य ने कुंडलिनी की बात नहीं की। तुम चकित होओगे, भक्तों ने बात ही नहीं की कुंडलिनी की।

क्या भक्तों को कभी कुंडलिनी का अनुभव नहीं हुआ है? एक महत्वपूर्ण सवाल है कि क्या भक्तों ने कुंडलिनी को नहीं जाना? जाना, लेकिन इकट्ठा नहीं किया। इसलिए कभी समस्या न बनी। कृपण के लिए धन समस्या हो जाती है। दाता के लिए कोई समस्या है? दाता तो आनंदित होता है कि इतने दिन तक बांटने की इतनी आकांक्षा थी, अब पूरी हुई जाती है।

मोहतसिब तस्बीह के दानों पे ये गिनता रहा

रसाध्यक्ष, जीवन का जो उत्सव जांच रहा है, देख रहा है, वह माला के दानों पर गिनता रहा--

मोहतसिब तस्बीह के दानों पे ये गिनता रहा

किनने पी किनने न पी किन-किन के आगे जाम था

शक्ति का अर्थ है, तुम्हारे आगे जाम है, अब पी लो। मत पूछो कि जाम का क्या करें? सामने प्याली भरी है। पीयो और पिलाओ। उत्सव बनो।

यहूदियों की अदभुत किताब तालमुद कहती है, परमात्मा तुमसे यह न पूछेगा कि तुमने कौन-कौन सी भूलें कीं? परमात्मा तुमसे यही पूछेगा कि तुमने आनंद के कौन-कौन से अवसर गंवाए? तुमसे यह न पूछेगा, तुमने कौन-कौन से पाप किए?

यह बात मुझे बड़ी जंचती है। परमात्मा और पाप का हिसाब रखे, बात ही ठीक नहीं। परमात्मा और पापों का हिसाब रखे! परमात्मा न हुआ तुम्हारा प्राइवेट सेक्रेटरी हो गया। कोई पुलिस का इंस्पेक्टर हो गया। कोई अदालत का मजिस्ट्रेट हो गया। परमात्मा न हुआ कोई आलोचक हो गया, कोई निंदक हो गया। परमात्मा की इतनी बड़ी आंखों में तुम्हारे पाप दिखाई पड़ेंगे? तुम्हारी भूलें दिखाई पड़ेंगी?

नहीं, तालमुद ठीक कहता है, परमात्मा पूछेगा कि इतने सुख के अवसर दिए उनको गंवाया क्यों? इतने नाचने के मौके थे, तुम बैठे क्यों रहे? इतने कंजूस क्यों थे? इतने कृपण क्यों थे? मैंने तुम्हें इतना दिया था, तुमने उसे बांटा होता। तुमने उसे बहाया होता। तुम एक बंद सरोवर की तरह क्यों रहे? तुम बहती हुई सरिता क्यों न

बने? तुम कृपण वृक्ष की तरह रहे कि जिसने फूलों को न खिलने दिया कि कहीं सुगंध बंट न जाए! तुम एक खदान की तरह रहे जो अपने हीरों को दबाए रही, कहीं सूरज की रोशनी न लग जाए!

परमात्मा ने तुम्हारे सामने जीवन की प्याली भरकर रख दी है। और एक बात समझ लेना कि तुम जितना इस प्याली पर दूसरों को निमंत्रित करोगे, उतनी यह प्याली भरती चली जाएगी। तुम इसे खाली ही न करोगे, तो यह बोझ भी हो जाएगी, और परमात्मा भरे कैसे इसे? और कैसे भरे? यह भरी हुई रखी है। तुम इसे उलीचो, खाली करो। तुम पर बोझ भी न होगी और परमात्मा को और भरने का मौका दो। जिसने एक आनंद की घड़ी का उपयोग कर लिया उसके जीवन में दस आनंद की घड़ियां उपलब्ध हो जाती हैं। जो एक बार नाचा, दस बार नाचने की क्षमता उसे उपलब्ध हो जाती है।

लेकिन यह बड़ी कठिन बात है। तुम कहते जरूर हो आनंद चाहते हैं, लेकिन तुम्हें आनंद के स्वभाव का कुछ पता नहीं। तुम्हें आनंद भी मिल जाए तो तुम उससे भी दुख पाओगे। तुम ऐसे अभ्यासी हो गए हो दुख के। दुख का स्वभाव है सिकुड़ना, आनंद का स्वभाव है फैलना। इसलिए जब कोई दुख में होता है तो एकांत चाहता है। बंद कमरा करके पड़ा रहता है अपने बिस्तर पर सिर को ढांककर। न किसी से मिलना चाहता है, न किसी से जुलना चाहता है। चाहता है मर ही जाऊं। कभी-कभी आत्महत्या भी कर लेता है कोई। सिर्फ इसीलिए कि अब क्या मिलने को रहा?

लेकिन जब तुम आनंदित होते हो, तब तुम मित्रों को बुलाना चाहते हो। मित्रों से मिलना चाहते हो। तुम चाहते हो किसी से बांटो, किसी को तुम्हारा गीत सुनाओ, कोई तुम्हारे फूल की गंध से आनंदित हो। तुम किसी को भोज पर आमंत्रित करते हो। तुम मेहमानों को बुला आते हो, आमंत्रण दे आते हो।

मेरे एक प्रोफेसर थे। उनका मुझसे बड़ा लगाव था। लेकिन वे मुझे घर बुलाने में डरते थे, क्योंकि शराब पीने की उन्हें आदत थी। और कहीं ऐसा न हो कि मुझे पता चल जाए। कहीं ऐसा न हो कि मेरे मन में उनकी जो प्रतिष्ठा है, वह गिर जाए। वे इससे बड़े भयभीत थे, बड़े डरे हुए थे। बहुत भले आदमी थे।

पर एक बार ऐसा हुआ कि मैं बीमार पड़ा और उन्हें मुझे हास्टल से घर ले जाना पड़ा। तो कोई दो महीने मैं उनके घर पर था। बड़ी मुश्किल हो गई। वे पीएं कैसे? पांच-दस दिन के बाद तो भारी होने लगा मामला। मैंने उनसे पूछा कि आप कुछ परेशान हैं, मुझे कह ही दें--अगर आप ज्यादा परेशान हैं, या कोई अड़चन है मेरे होने से यहां, तो मैं चला जाऊं वापस। उन्होंने कहा कि नहीं। पर मैं अपनी परेशानी कहे देता हूं कि मुझे पीने की आदत है। तो मैंने कहा, यह भी कोई बात हुई! आप पी लेते, लुक-छिपकर पी लेते, इतना बड़ा बंगला है। उन्होंने कहा, यही तो मुश्किल है, कि जब भी कोई पीता है--असली पीने वाला--अकेले में नहीं पी सकता। चार-दस मित्रों को न बुलाऊं तो पी नहीं सकता। अकेले में भी क्या पीना! उन्होंने कहा, पीना कोई दुख थोड़े ही है, पीना एक उत्सव है।

वह बात मुझे याद रह गई। जब जीवन की साधारण मदिरा को भी लोग बांटकर पीते हैं, तो जब तुम्हारी प्याली में परमात्मा भर जाए, और तुम न बांटो! जब शराबी भी इतना जानते हैं कि अकेले पीने में कोई मजा नहीं, जब तक चार संगी-साथी न हों तो पीना क्या! जब शराबी भी इतने होशपूर्ण हैं कि चार को बांटकर पीते हैं, तो होश वालों का क्या कहना!

बांटो। शक्ति का आविर्भाव हुआ है, लुटाओ। और यह भी मत पूछो किसको दे रहे हो, क्योंकि यह भी कंजूसों की भाषा है। पात्र की चिंता वही करता है जो कंजूस है। वह पूछता है, किसको देना? पात्र है कि नहीं? दो पैसा देता है, तो सोचता है कि यह आदमी दो पैसे का क्या करेगा? यह भी कोई देना हुआ, अगर हिसाब

पहले रखा कि यह क्या करेगा? यह तो देना न हुआ, यह तो इंतजाम पहले ही न देने का कर लिया। यह तो तुमने इस आदमी को न दिया, सोच-विचारकर दिया।

मेरे एक मित्र थे, बड़े हिंदी के साहित्यकार थे। हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष थे। और भारतीय संसद के सबसे पुराने सदस्य थे--पचास साल तक वे एम.पी. रहे। उनका जुगलकिशोर बिड़ला से बहुत निकट संबंध था। मेरे काम में उन्हें रस था। वे कहने लगे कि मेरा संबंध है बिड़ला से, अगर वे उत्सुक हो जाएं आपके काम में तो बड़ी सहायता मिल सकती है। तो हम दोनों को मिलाया।

बिड़ला मुझसे बातचीत किए। उत्सुक हुए। कहने लगे, जितना आपको चाहिए मैं दूंगा। और जिस समय चाहिए, तब दूंगा। सिर्फ एक बात मुझे पक्की हो जानी चाहिए कि जो मैं दूंगा, उसका उपयोग क्या होगा? मैंने कहा, बात ही खतम करो। यह अपने से न बनेगा, यह सौदा नहीं हो सकता। अगर यही पूछना है कि आप जो देंगे उसका मैं क्या करूंगा, अपने पास रखो। यह कोई देना हुआ? अगर बेशर्त देते हो, कि मैं तुम्हारे सामने ही यहां सड़क पर लुटाकर चला जाऊं, तो तुम मुझसे पूछ न सकोगे कि यह क्या किया? क्योंकि देने के बाद अगर तुम पूछ सको, तो तुमने दिया ही नहीं। और देने के पहले ही अगर तुम पूछने का इंतजाम कर लो, और पहले ही शर्त बांध लो, तो तुम किसी और को देना। यह शर्तबंद बात मुझसे न बनेगी।

वह बात टूट गई। आगे चलने का कोई उपाय न रहा। लोग देते भी हैं--अब बिड़ला जैसा धनपति भी हो, वह भी देता है तो शर्त रखकर देता है कि क्या काम में आएगा? किस काम में लगाएंगे? तो वह मुझे नहीं देता, अपने ही काम को देता है। उलटे मुझे भी सेवा में संलग्न कर रहा है। यह देना न हुआ, मुझे मुफ्त में खरीद लेना हुआ।

मैंने कहा, मुझे देख लो, मुझे समझ लो, मुझे दो। फिर शेष मुझ पर छोड़ दो। फिर मैं जो करूंगा करूंगा। उसके संबंध में कोई बात फिर न उठेगी।

पात्र अपात्र की क्या चिंता करनी? फूल खिलता है तो इसकी थोड़े ही फिकर करता है कि कोई पास से आ रहा है वह सुगंध का ज्ञाता है, कि अमीर है या गरीब है, कि सौंदर्य का उपासक है या नहीं। फूल इसकी थोड़े ही फिकर करता है। फूल खिलता है तो सुगंध को लुटा देता है हवाओं में। राह से कोई न भी गुजरता हो, निर्जन हो राह, तो भी लुटा देता है। जब बादल भरते हैं तो इसकी थोड़े ही फिकर करते हैं, कहां बरस रहे हैं! भराव से बरसते हैं। इतना ज्यादा है कि बरसना ही पड़ेगा। तो पहाड़ पर भी बरस जाते हैं, जहां पानी की कोई जरूरत नहीं। झीलों पर भी बरसते हैं, जहां पानी भरा ही हुआ है। यह थोड़े ही सवाल है कि कहां बरसना? बरसना।

अगर तुम जीवन को देखोगे तो बेशर्त पाओगे। वहां उत्सव बेशर्त है। वहां नाच अहर्निश चल रहा है। किसी के लिए चल रहा है, ऐसा भी नहीं है। ज्यादा है। परमात्मा इतना अतिशय है, इतना अतिरेक से है कि क्या करे अगर न लुटे, न बरसे?

जब तुम्हारे जीवन में शक्ति का आविर्भाव मालूम हो, जब तुम्हें लगे कि बादल भर गया--मेघ भरपूर है, जब तुम्हें लगे कि शक्ति तुम्हारे भीतर उठी है, तो समस्या बनेगी। नाचना, गाना। पागल की तरह उत्सव मनाना। शक्ति विलीन हो जाएगी। और ऐसा नहीं है कि तुम पीछे शक्तिहीन हो जाओगे। शक्ति को बांटकर ही कोई वस्तुतः शक्तिशाली होता है। क्योंकि तब उसे पता चलता है, झरने अनंत हैं। जितना बांटो उतना बढ़ता जाता है।

मोहतसिब तस्बीह के दानों पे ये गिनता रहा

ध्यान रखना, रसाध्यक्ष बैठा है। माला फेर रहा है। वह माला के दानों पर गिन रहा है--

किनने पी किनने न पी किन-किन के आगे जाम था

और एक ही पाप है जीवन में, और वह पाप है बिना उत्सव के विदा हो जाना। बिना नाचे, बिना गीत गाए विदा हो जाना। तुम्हारा गीत अगर अनगाया रह गया, तुम्हारा बीज अगर अनफूटा रह गया, तुम जो लेकर आए थे वह गंध कभी दसों दिशाओं में न फैली, तो परमात्मा तुमसे जरूर पूछेगा।

इसलिए जब शक्ति उठती है, तो सवाल उठता है कि अब क्या करें? हिसाब मत लगाओ। बेहिसाब लुटाओ। सभी पात्र हैं, क्योंकि सभी पात्रों में वही छिपा है। हर आंख से वही देखेगा नाच, और हर कान से वही सुनेगा गीत। हर नासारंध्र से सुवास उसी को मिलेगी।

एक बौद्ध साध्वी थी। उसके पास सोने की छोटी सी बुद्ध की प्रतिमा थी। स्वर्ण की। वह इतना उसे प्रेम करती थी, और जैसे कि साधारणतः कृपण मन होता है कि वह अपनी धूप भी जलाती तो हवाओं में यहां-वहां न फैलने देती, उसे वापस धक्के दे-देकर अपने छोटे से बुद्ध को ही पहुंचा देती। फूल भी चढ़ाती तो भी डरी रहती कि गंध कहीं यहां-वहां न उड़ जाए।

फिर एक बड़ी मुसीबत हुई एक रात। वह एक मंदिर में ठहरी। चीन में एक बहुत प्राचीन मंदिर है, हजार बुद्धों का मंदिर है। वहां हजार बुद्ध की प्रतिमाएं हैं। वह डरी। और सभी प्रतिमाएं बुद्ध की हैं, तो भी डर! वह डरी, कि यहां अगर मैंने धूप जलाई, अगरबत्तियां जलायीं, फूल चढ़ाए, तो यह धुआं तो कोई मेरे बुद्ध पर नहीं रुका रहेगा। यहां-वहां जाएगा। दूसरे बुद्धों पर पहुंचेगा। बुद्ध भी दूसरे! जिनकी प्रतिमा वह रखे है उन्हीं की प्रतिमाएं वे भी हैं। तालाब हैं, सरोवर हैं, सागर हैं, लेकिन चांद का प्रतिबिंब अलग कितना ही हो, एक ही चांद का है। तो उसने एक बांस की पोंगरी बना ली, और धूप जलाई और बांस की पोंगरी में से धूप को अपने बुद्ध की नाक तक पहुंचाया। सोने की बुद्ध की प्रतिमा का मुंह काला हो गया।

वह बड़ी दुखी हुई। वह सुबह मंदिर के प्रधान भिक्षु के पास गई और उसने कहा कि बड़ी मुश्किल हो गई। इसे कैसे साफ करूं? वह प्रधान हंसने लगा। उसने कहा, पागल! तेरे सत्संग में तेरे बुद्ध का चेहरा तक काला हो गया।

गलत साथ करो, यह मुसीबत होती है। इतनी भी क्या कृपणता! ये सभी प्रतिमाएं उन्हीं की हैं। इतनी भी क्या कंजूसी! अगर थोड़ा धुआं दूसरों के पास भी पहुंच गया होता, तो कुछ हर्ज हुआ जाता था? लेकिन मेरे बुद्ध!

ये सभी प्रतिमाएं बुद्धों की ही हैं। हर आंख से वही झांका है। हर पत्थर में वही सोया है। तुम इसकी फिकर ही मत करो। तुम्हारे जीवन में आनंद भरे--प्रेम दो, गीत दो, संगीत दो, नाचो; बांटो। इसी की तो प्रतीक्षा रही है कि कब वह क्षण आएगा जब हम बांट सकेंगे। अब पात्र-अपात्र का भी भेद छोड़ो। वे सब नासमझी के भेद हैं।

इसलिए शक्ति के संबंध में कुछ बोलता नहीं हूं। क्योंकि जो मैं बोल रहा हूं अगर समझ में आया, तो शक्ति कभी समस्या न बनेगी। इसलिए भी शक्ति के संबंध में नहीं बोलता हूं, क्योंकि वह शब्द जरा खतरनाक है। शांति के संबंध में बोलता हूं, शक्ति के संबंध में नहीं बोलता। क्योंकि शक्ति अहंकार की आकांक्षा है। शक्ति शब्द सुनकर ही तुम्हारे भीतर अहंकार अंगड़ाई लेने लगता है। अहंकार कहता है, ठीक, शक्ति तो चाहिए। इसीलिए तो तुम धन मांगते हो, ताकि धन से शक्ति मिलेगी। पद मांगते हो, क्योंकि पद पर रहोगे तो शक्तिशाली रहोगे। यश मांगते हो, पुण्य मांगते हो, लेकिन सबके पीछे शक्ति मांगते हो। योग और तंत्र में भी खोजते हो, शक्ति ही खोजते हो।

शक्ति की पूजा तो संसार में चल ही रही है। इसलिए मैं शक्ति की बात नहीं करता, क्योंकि धर्म के नाम पर भी अगर तुम शक्ति की ही खोज करोगे, तो वह अहंकार की ही खोज रहेगी। और जब तक अहंकार है तब तक शक्ति उपलब्ध नहीं होती। ऐसा सनातन नियम है। एस धम्मो सनंतनो।

जब तुम शक्ति की चिंता ही छोड़ देते हो और शांति की तलाश करते हो, शांति की तलाश में अहंकार को विसर्जित करना होगा, क्योंकि वही तो अशांति का स्रोत है। और जब अहंकार विसर्जित हो जाता है, द्वार से पत्थर हट जाता है। शांति तो मिलती है। शांति तो मूलधन है और शक्ति तो ब्याज की तरह उपलब्ध हो जाती है। शांति को खोजो, शक्ति अपने से मिल जाती है। शक्ति को खोजो, शक्ति तो मिलेगी ही नहीं, शांति भी खो जाएगी।

इसलिए शक्ति का खोजी हमेशा अशांत होगा, परेशान होगा। वह अहंकार की ही दौड़ है। नाम बदल गए, वेश बदल गया, दौड़ वही है। कौन चाहता है शक्ति? वह अहंकार। चाहता है कोई चमत्कार मिल जाए, रिद्धि-सिद्धि, शक्ति मिल जाए, तो दुनिया को दिखा दूं कि मैं कौन हूं।

इसलिए जहां तुम शक्ति की खोज करते हो, जान लेना कि वह धर्म की दिशा नहीं है, अधर्म की दिशा है। तुम्हारे चमत्कारी, तुम्हारे रिद्धि-सिद्धि वाले लोग, सब तुम्हारे ही बाजार के हिस्से हैं। उनसे धर्म का कोई लेना-देना नहीं। वे तुम्हें प्रभावित करते हैं, क्योंकि जो तुम्हारी आकांक्षा है, लगता है उन्हें उपलब्ध हो गया। जो तुम चाहते थे कि हाथ से ताबीज निकल जाएं, घड़ियां निकल जाएं, उनके हाथ से निकल रही हैं। तुम चमत्कृत होते हो, कि धन्य है! उनके पीछे चल पड़ते हो कि जो इनको मिल गया है, किसी न किसी दिन इनकी कृपा से हमको भी मिल जाएगा।

लेकिन घड़ियां निकाल भी लोगे तो क्या निकाला? जहां परमात्मा निकल सकता था वहां स्विस घड़ियां निकाल रहे हो। जहां शाश्वत का आनंद निकल सकता था वहां राख निकाल रहे हो। चाहे विभूति कहो उसको, क्या फर्क पड़ता है। जहां परमात्मा की विभूति उपलब्ध हो सकती थी, वहां राख नाम की विभूति निकाल रहे हो। मदारीगिरी है। अहंकार की मदारीगिरी है। लेकिन अहंकार की वही आकांक्षा है।

शक्ति की मैं बात नहीं करता, क्योंकि तुम तत्क्षण उत्सुक हो जाओगे उसमें कि कैसे शक्ति मिले, बताएं। उसमें अहंकार तो मिटता नहीं, अहंकार और भरता हुआ मालूम पड़ता है। तो मैं तुम्हें मिटाता नहीं फिर, मैं तुम्हें सजाने लगता हूं।

यही तो अड़चन है मेरे साथ। मैं तुम्हें सजाने को उत्सुक नहीं हूं, तुम्हें मिटाने को उत्सुक हूं। क्योंकि तुम जब तक न मरो, तब तक परमात्मा तुममें आविर्भूत नहीं हो सकता। तुम जगह खाली करो। तुम सिंहासन पर बैठे हो। तुम जगह से हटो, सिंहासन रिक्त हो, तो ही उसका अवतरण हो सकता है। जैसे ही तुम शांत होओगे, अहंकार सिंहासन से उतरेगा, तुम पाओगे शक्ति उतरनी शुरू हो गई। और यह शक्ति बात ही और है, जो शांत चित्त में उतरती है! क्योंकि अब अहंकार रहा नहीं जो इसका दुरुपयोग कर लेगा। अब वहां कोई दुरुपयोग करने वाला न बचा।

इसलिए जानकर ही उन शब्दों का उपयोग नहीं करता हूं जिनसे तुम्हारे अहंकार को थोड़ी सी भी खुजलाहट हो सकती है। तुम तो तैयार ही बैठे हो खुजाने को। जरा सा इशारा मिल जाए कि तुम खुजा डालोगे। तुम तो खाज के पुराने शिकार हो। तुम्हें जरा से इशारे की जरूरत है कि तुम्हारी आकांक्षा के घोड़े दौड़ पड़ेंगे। तुम सब लगामें छोड़ दोगे।

नहीं, मैं शांति की बात करता हूं। मैं मृत्यु की बात करता हूं, निर्वाण की बात करता हूं, शून्य होने की बात करता हूं, क्योंकि मुझे पता है कि तुम जब शून्य होओगे तो पूर्ण तो अपने आप चला आता है। उसको चर्चा के बाहर छोड़ो। चर्चा से नहीं आता, शून्य होने से आता है।

शक्ति की बात ही मत करो। वह तो शांत होते मिल ही जाती है। वह तो शांत हुए आदमी का अधिकार है।

जब मिल जाए, तो तुम क्या करोगे! इसलिए मैं आनंद, उत्सव और प्रेम की बात करता हूं। तुम जैसे हो, अभी प्रेम कर ही नहीं सकते। अभी तो तुम्हारा प्रेम धोखा है। तुम जैसे हो, आनंदित हो ही नहीं सकते। अभी तो आनंद केवल मुंह पर पोता गया झूठा रंग-रोगन है। अभी तुम जैसे हो, हंस ही नहीं सकते। अभी तुम्हारी हंसी ऊपर से चिपकाई गई है, मुखौटा है।

किसी ने पूछा है--

दूसरा प्रश्नः कल आपने कहा कि दूसरा कभी किसी को खुश नहीं कर सकता है। मगर प्रेमी के साथ प्रेम में डूब जाने में जो सुख, आनंद और अहोभाव अनुभव होता है, वह क्या है?

हो नहीं सकता। जल्दी मत कर लेना निर्णय की। जरा बड़े-बूढ़ों से पूछना।

यह मुक्ति ने पूछा है। अभी प्रेम के मकान के बाहर ही चक्कर लगा रही है। जरा बड़े-बूढ़ों से पूछना, वे कहते हैं--

जब तक मिले न थे जुदाई का था मलाल

अब ये मलाल है कि तमन्ना निकल गई

जब तक मिले न थे, तब तक दूर होने की पीड़ा थी। अब जब मिल गए, तो पास होने की आकांक्षा भी निकल गई। अब यह दुख है कि अब कैसे हटें, कैसे भागें?

जल्दी मत करना। अभी जिसको तुम प्रेम, आनंद, अहोभाव कह रहे हो वह सब शब्द हैं सुने हुए। अभी प्रेम जाना कहां? क्योंकि तुम जैसे हो उसमें प्रेम फलित ही नहीं हो सकता। प्रेम कोई ऐसा थोड़े ही है कि तुम कैसे ही हो और फलित हो जाओ। प्रेम जन्म के साथ थोड़े ही मिलता है। अर्जन है। उपलब्धि है। साधना है। सिद्धि है।

यही तो परेशानी है। सारी दुनिया में हर आदमी यही सोच रहा है कि जन्म के साथ ही हम प्रेम करने की योग्यता लेकर आए हैं। धन कमाने की तुम थोड़ी बहुत कोशिश भी करते हो, लेकिन प्रेम कमाने की तो कोई भी कोशिश नहीं करता। क्योंकि हर एक माने बैठा है कि प्रेम तो है ही। बस प्रेमी मिल जाए, काम शुरू। जिसको तुम प्रेमी कहते हो, उसे भी प्रेम का कोई पता नहीं है। दूर की ध्वनि भी नहीं सुनी है। न तुम्हें पता है।

जिसको तुम प्रेम समझ रहे हो वह सिर्फ मन की वासना है। जिसको तुम प्रेम समझ रहे हो--दूसरे के साथ होने का आनंद--वह केवल अपने साथ तुम्हें कोई आनंद नहीं मिलता, अपने साथ तुम परेशान हो जाते हो, अपने साथ ऊब और बोरियत पैदा होती है, दूसरे के साथ थोड़ी देर को अपने को भूल जाते हो, उसी को तुम दूसरे के साथ मिला आनंद कह रहे हो। दूसरे के साथ तुम्हारा जो होना है, वह अपने साथ न होने का उपाय है। वह एक नशा है, इससे ज्यादा नहीं। उतनी देर को तुम अपने को भूल जाते हो, दूसरा भी अपने को भूल जाता है। यह

आत्म-विस्मरण है, आनंद नहीं। मूर्च्छा है, अहोभाव इत्यादि कुछ भी नहीं है। मेरी बातें सुन-सुनकर तुम्हें अच्छे-अच्छे शब्द कंठस्थ हो जाएंगे। इनको तुम हर कहीं मत लगाने लगना।

"कल आपने कहा कि कोई दूसरा कभी किसी को खुश नहीं कर सकता।"

निश्चित मैंने कहा है। और कोई कभी नहीं कर सका है। लेकिन किसी भी युवा को समझाना मुश्किल है। क्योंकि जो युवक समझता है, वह तो समय के पहले प्रौढ़ हो गया। कभी कोई शंकराचार्य, कभी कोई बुद्ध समय के पहले समझ पाते हैं। अधिक लोग तो समय भी बीत जाता है--जवानी भी बीत जाती है, बुढ़ापा भी बीतने लगता है, मौत द्वार पर आ जाती है--तब तक भी नहीं समझ पाते।

समझ का संबंध तुम्हारे जीवन की होश की तीव्रता से है। अभी जिसको तुम सोचते हो कि प्रेमी के साथ प्रेम में डूब जाने में--अभी तुम अपने में नहीं डूबे, दूसरे में कैसे डूबोगे! जो अपने में नहीं डूब सका, वह दूसरे में कैसे डूब सकेगा! अभी तुम अपने भीतर ही जाना नहीं जानते, दूसरे के भीतर क्या खाक जाओगे। बातचीत है। अच्छे-अच्छे शब्द हैं। सभी जवान अच्छे-अच्छे शब्दों में अपने को झुठलाते हैं, भुलाते हैं। जवानी में अगर किसी से कहो कि यह प्रेम वगैरह कुछ भी नहीं है, तो न तो यह सुनाई पड़ती है बात--सुनाई भी पड़ जाए तो समझ में नहीं आती--क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को एक भ्रांति है कि दूसरे को न हुआ होगा, लेकिन मुझे तो होगा, हो रहा है।

अभी यात्रा का पहला ही कदम है। जरा बात पूरी हो जाने दो। जरा ठहरो, जल्दी निर्णय मत करो। जिन्होंने जाना है जीवन का यह दौर, जो इससे गुजरे हैं, उनसे पूछो।

सुलगती आग दहकता ख्याल तपता बदन

कहां पर छोड़ गया कारवां बहारों का

वह जिसको वसंत समझा था, बहार समझी थी, वह कहां छोड़ गई?

सुलगती आग दहकता ख्याल तपता बदन

एक रुग्ण दशा। एक बुखार। सब धूल-धूल। सब इंद्रधनुष टूटे हुए। सब सपनों के भवन गिर गए। और एक सुलगती आग, कि जीवन हाथ से व्यर्थ ही गया। लेकिन जब तुम सपनों में खोए हो, तब बड़ा मुश्किल है यह बताना कि यह सपना है। उसके लिए जागना जरूरी है।

प्रेम अर्जित किया जाता है। और जिसने प्रार्थना नहीं की, वह कभी प्रेम नहीं कर पाया। इसलिए प्रार्थना को मैं प्रेम की पहली शर्त बनाता हूं। जिसने ध्यान नहीं किया, वह कभी प्रेम नहीं कर पाता। क्योंकि जो अपने में नहीं गया, वह दूसरे में तो जा ही नहीं सकता। और जो अपने में गया, वह दूसरे में पहुंच ही गया। क्योंकि अपने में जाकर पता चलता है, दूसरा है ही नहीं। दूसरे का ख्याल ही अज्ञान का ख्याल है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन अपने एक मित्र के साथ बैठा था। और उसने अपने बेटे को कहा कि जा और तलघरे से शराब की बोतल ले आ। वह बेटा गया, वह वापस लौटकर आया। उस बेटे को थोड़ा कम दिखाई पड़ता है। और उसकी आंखों में एक तरह की बीमारी है कि एक चीज दो दिखाई पड़ती है। उसने लौटकर कहा कि दोनों बोतल ले आऊं या एक लाऊं?

नसरुद्दीन थोड़ा परेशान हुआ, क्योंकि बोतल तो एक ही है। अब अगर मेहमान के सामने कहे एक ही ले आओ, तो मेहमान कहेगा यह भी क्या कंजूसी! अगर कहे दो ही ले आओ, तो यह दो लाएगा कहां से? वहां एक ही है। और मेहमान के सामने अगर यह कहे कि इस बेटे को एक चीज दो दिखाई पड़ती है तो नाहक की बदनामी होगी। फिर इसकी शादी भी करनी है। तो उसने कहा, ऐसा कर, एक तू ले आ और एक को फोड़ आ--बाएं तरफ की फोड़ देना, दाएं तरफ की ले आना, क्योंकि बाएं तरफ की बेकार है। ऐसा उसने रास्ता निकाला।

बेटा गया। उसने बाएं तरफ की फोड़ दी, लेकिन दाएं तरफ कुछ था थोड़े ही! एक ही बोतल थी, वह फूट गई। बाएं तरफ और दाएं तरफ ऐसी कोई दो बोतलें थोड़े ही थीं। बोतल एक ही थी। दो दिखाई पड़ती थीं। वह बोतल फूट गई, शराब बह गई, वह बड़ा परेशान हुआ। उसने लौटकर कहा कि बड़ी भूल हो गई, वह बोतल एक ही थी, वह तो फूट गई।

मैं तुमसे कहता हूं, जहां तुम्हें दो दिखाई पड़ रहे हैं, वहां एक ही है। तुम्हें दो दिखाई पड़ रहे हैं, क्योंकि तुमने अभी एक को देखने की कला नहीं सीखी। प्रेम है एक को देखने की कला। लेकिन उस कला में उतरना हो तो पहले अपने ही भीतर की सीढ़ियों पर उतरना होगा। क्योंकि वही तुम्हारे निकट है।

भीतर जाओ, अपने को जानो। आत्मज्ञान से ही तुम्हें पता चलेगा मैं और तू झूठी बोतलें थे, जो दिखाई पड़ रहे थे। नजर साफ न थी, अंधेरा था, धुंधलका था, बीमारी थी--एक के दो दिखाई पड़ रहे थे। भ्रम था। भीतर उतरकर तुम पाओगे, जिसको तुमने अब तक दूसरा जाना था वह भी तुम्हीं हो। दूसरे को जब तुम छूते हो, तब तुम अपने ही कान को जरा हाथ घुमाकर छूते हो, बस। वह तुम्हीं हो। जरा चक्कर लगाकर छूते हो। जिस दिन यह दिखाई पड़ेगा, उस दिन प्रेम। उसके पहले जिसे तुम प्रेम कहते हो, कृपा करके उसे प्रेम मत कहो।

प्रेम शब्द बड़ा बहुमूल्य है। उसे खराब मत करो। प्रेम शब्द बड़ा पवित्र है। उसे अज्ञान का हिस्सा मत बनाओ। उसे अंधकार से मत भरो। प्रेम शब्द बड़ा रोशन है। वह अंधेरे में जलती एक शमा है। प्रेम शब्द एक मंदिर है। जब तक तुम्हें मंदिर में जाना न आ जाए तब तक हर किसी जगह को मंदिर मत कहना। क्योंकि अगर हर किसी जगह को मंदिर कहा, तो धीरे-धीरे मंदिर को तुम पहचानना ही भूल जाओगे। और तब मंदिर को भी तुम हर कोई जगह समझ लोगे।

जिसे तुम अभी प्रेम कहते वह केवल कामवासना है। उसमें तुम्हारा कुछ भी नहीं है। शरीर के हारमोन काम कर रहे हैं, तुम्हारा कुछ भी नहीं है। स्त्री के शरीर से कुछ हारमोन निकाल लो, पुरुष की इच्छा समाप्त हो जाती है। पुरुष के शरीर से कुछ हारमोन निकाल लो, स्त्री की आकांक्षा समाप्त हो जाती है। तुम्हारा इसमें क्या लेना-देना है? केमिस्ट्री है। थोड़ा रसायनशास्त्र है। अगर ज्यादा हारमोन डाल दिए जाएं पुरुष के शरीर में, तो वह दीवाना हो जाता है, पागल हो जाता है एकदम। मजनू के शरीर में थोड़े ज्यादा हारमोन रहे होंगे, और कुछ मामला नहीं है। जिसको तुम प्रेम की दीवानगी कहते हो, वह रसायनशास्त्र से ठीक की जा सकती है। और जिसको तुम प्रेम की सुस्ती कहते हो, वह इंजेक्शन से बढ़ाई जा सकती है और तुममें त्वरा आ सकती है और तुम पागल हो सकते हो।

इसे तुम प्रेम मत कहना, यह सिर्फ कामवासना है। और इसमें तुम जो प्रेम, और अहोभाव, और आनंद की बातें कर रहे हो, जरा होश से करना, नहीं तो इन्हीं बातों के कारण बहुत दुख पाओगे। क्योंकि जब कोई स्वर भीतर से आता न मालूम पड़ेगा अहोभाव का, तो फिर बड़ा फ्रस्ट्रेशन, बड़ा विषाद होता है। वह विषाद कामवासना के कारण नहीं होता, वह तुम्हारी जो अपेक्षा थी उसी के कारण होता है, कामवासना का क्या कसूर है? हाथ में एक पैसा लिए बैठे थे और रुपया समझा था, जब हाथ खोला, और मुट्ठी खोली तो पाया कि पैसा है। तो पैसा थोड़े ही तुम्हें कष्ट दे रहा है। पैसा तो तब भी पैसा था। पहले भी पैसा था, अब भी पैसा है, पैसा पैसा है। तुमने रुपया समझा था, तो तुम पीड़ित होते हो, तुम दुखी होते हो, तुम रोते-चिल्लाते हो कि यह धोखा हो गया।

तुमने जिसे प्रेम समझा है वह पैसा भी नहीं है, कंकड़-पत्थर है। जिस प्रेम की मैं बात कर रहा हूं वह किसी और ही दूसरे जगत का हीरा है। उसके लिए तुम्हें तैयार होना होगा। तुम जैसे हो वैसे ही वह नहीं घटेगा।

तुम्हें अपने को बड़ा परिष्कार करना होगा। तुम्हें अपने को बड़ा साधना होगा। तब कहीं वह स्वर तुम्हारे भीतर पैदा हो सकता है।

लेकिन प्रत्येक व्यक्ति को जिंदगी में एक नशे का दौर होता है। कामवासना का दौर होता है। तब काम ही राम मालूम पड़ता है। जिस दिन यह बोध बदलता है और काम काम दिखाई पड़ता है, उसी दिन तुम्हारी जिंदगी में पहली दफे राम की खोज शुरू होती है।

तो धन्यभागी हैं वे, जिन्होंने जान लिया कि यह प्रेम व्यर्थ है। धन्यभागी हैं वे, जिन्होंने जान लिया कि यह अहोभाव केवल मन की आकांक्षा थी, कहीं है नहीं। कहीं बाहर नहीं था, सपना था देखा। जिनके सपने टूट गए, आशाएं टूट गयीं, धन्यभागी हैं वे। क्योंकि उनके जीवन में एक नई खोज शुरू होती है। उस खोज के मार्ग पर ही कभी तुम्हें प्रेम मिलेगा। प्रेम परमात्मा का ही दूसरा नाम है। इससे कम प्रेम की परिभाषा नहीं।

तीसरा प्रश्नः क्या प्रयास व साधना विधि है और तथाता मंजिल है? या तथाता ही विधि और मंजिल दोनों है?

इतने हिसाब में क्यों पड़ते हो? यह हिसाब कहां ले जाएगा? हिसाब ही करते रहोगे या चलोगे भी? क्या मंजिल है, क्या मार्ग है, इसको सोचते ही रहोगे?

तो एक बात पक्की है, कितना ही सोचो, सोचने से कोई मार्ग तय नहीं होता, और न सोचने से कोई मंजिल करीब आती है। सोचने-विचारने वाला धीरे-धीरे चलने में असमर्थ ही हो जाता है। चलना तो चलने से आता है, होना होने से आता है।

नामों की चिंता में बहुत मत पड़ो। दोनों बातें कही जा सकती हैं। प्रेम ही मार्ग है, प्रेम ही मंजिल है। यह भी कहा जा सकता है कि प्रेम मार्ग है, परमात्मा मंजिल है। पर कोई फर्क नहीं है इन बातों में। जिस तरह से तुम्हारा मन चलने को राजी हो उसी तरह मान लो। क्योंकि मेरी फिकर इतनी है कि तुम चलो। तुम्हें अगर इसमें ही सकून मिलता है, शांति मिलती है कि प्रेम मार्ग, परमात्मा मंजिल है; योग मार्ग, मोक्ष मंजिल है; प्रयास, विधि मार्ग, तथाता मंजिल है; ऐसा समझ लो, कोई अड़चन नहीं है। मगर कृपा करके चलो।

जो तर्कनिष्ठ हैं, उन्हें यही मानना उचित होगा। क्योंकि तर्क कहता है, मंजिल और मार्ग अलग-अलग। जो तर्क की बहुत चिंता नहीं करते, और जो जीवन को बिना तर्क के देखने में समर्थ हैं--वैसी सामर्थ्य बहुत कम लोगों में होती है--लेकिन अगर हो तो उनको दिखाई पड़ेगा कि मार्ग और मंजिल एक ही हैं। क्योंकि मार्ग तभी पहुंचा सकता है मंजिल तक जब मंजिल से जुड़ा हो। नहीं तो पहुंचाएगा कैसे? अगर अलग-अलग हों तो पहुंचाएगा कैसे? तब तो दोनों के बीच फासला होगा। छलांग न लग सकेगी। दूरी होगी।

वही मार्ग पहुंचा सकता है जो मंजिल से जुड़ा हो। और अगर जुड़ा ही है तो फिर क्या फर्क करना। कहां तय करोगे कि कहां मार्ग समाप्त हुआ, कहां मंजिल शुरू हुई?

इसलिए महावीर का बड़ा अदभुत वचन है कि जो चल पड़ा वह पहुंच ही गया। जरूरी नहीं है। तुम जैसे चलने वाले हों तो बीच में ही बैठ जाएंगे कि लो, महावीर को गलत सिद्ध किए देते हैं। लेकिन महावीर के कहने में बड़ा सार है--जो चल पड़ा वह पहुंच ही गया। क्योंकि जब तुम चले, पहला कदम भी उठाया, तो पहला कदम भी तो मंजिल को ही छू रहा है। कितनी ही दूर हो, लेकिन एक कदम कम हो गई, पास आ गई।

लाओत्सू ने कहा है, एक-एक कदम चलकर हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है। तो ऐसा थोड़े ही है कि यात्रा तभी पूरी होती है जब पूरी होती है। जब तुम चले तब भी पूरी होनी शुरू हो जाती है। इंच-इंच चलते हो, कदम-कदम चलते हो, बूंद-बूंद चलते हो। सागर चुक जाता है एक-एक बूंद से।

तुम्हारे ऊपर निर्भर है। अगर बहुत तर्कनिष्ठ मन है और तुम ऐसा मानना चाहो कि मार्ग अलग, मंजिल अलग, ऐसा मान लो। अगर दृष्टि और साफ-सुथरी है, तर्क के ऊपर देख सकते हो और विरोधाभास से कोई अड़चन नहीं आती, तो मार्ग ही मंजिल है, ऐसा मान लो। दोनों बातें सही हैं। क्योंकि दोनों बातें एक ही सत्य को देखने के दो ढंग हैं।

मार्ग अलग है मंजिल से, क्योंकि मार्ग पहुंचाएगा और मंजिल वह है जब तुम पहुंच गए। मार्ग वह है जब तुम चलोगे, मंजिल वह है जब तुम पहुंच गए और चलने की कोई जरूरत न रही--अलग-अलग हैं। दोनों एक भी हैं। क्योंकि पहला कदम पड़ा कि मंजिल पास आने लगी। मार्ग छुआ नहीं कि मंजिल भी छू ली--कितनी ही दूर सही! किरण को जब तुम छूते हो, सूरज को भी छू लिया, क्योंकि किरण सूरज का ही फैला हुआ हाथ है। तुमने मेरे हाथ को छुआ तो मुझे छुआ या नहीं? हाथ मेरा दो फीट लंबा है कि दो हजार फीट लंबा है, इससे क्या फर्क पड़ता है? कि दस करोड़ मील लंबा है, इससे क्या फर्क पड़ता है? किरण सूरज का हाथ है। किरण को छू लिया, सूरज को छू लिया। यात्रा शुरू हो गई।

एक बात पर ही मेरा जोर है कि तुम बैठे मत रहो। क्योंकि विचार करने की एक हानि है कि विचारक सिर पर हाथ लगाकर बैठ जाता है, सोचने लगता है। कुछ करो। करने से रास्ता तय होगा, चलने से।

कई बार मैं देखता हूं, बहुत लोगों को, वे विचार ही करते रहते हैं। समय खोता जाता है। कभी-कभी बूढ़े लोग मेरे पास आ जाते हैं, वे अभी भी विचार कर रहे हैं कि ईश्वर ने दुनिया बनाई या नहीं! तुम अब कब तक यह विचार करते रहोगे? बनाई हो तो, न बनाई हो तो। जीवन को जानने के लिए कुछ करो। ईश्वर हो तो, न हो तो। तुम होने के लिए--स्वयं होने के लिए--कुछ करो। ये सारी चिंताएं, ये सारी समस्याएं अर्थहीन हैं। कितनी ही सार्थक मालूम पड़ें, सार्थक नहीं हैं। और कितनी ही बुद्धिमानीपूर्ण मालूम पड़ें, बुद्धिमानीपूर्ण नहीं हैं।

बेखुदी में हम तो तेरा दर समझकर झुक गए

अब खुदा मालूम वह काबा था या बुतखाना था

वह मंदिर था या मस्जिद थी, यह परमात्मा पर ही छोड़ देते हैं। हम तो झुक गए।

बेखुदी में हम तो तेरा दर समझकर झुक गए

हमने तो अपनी विनम्रता में, अपने निरअहंकार में सिर झुका दिया।

अब खुदा मालूम वह काबा था या बुतखाना था

अब यह खुदा सोच ले कि मस्जिद थी, कि मंदिर था, कि काशी थी, कि काबा था। यह चिंता साधक की नहीं है, यह चिंता पंडित की है कि कहां झुके?

जरा फर्क समझना, बारीक है और नाजुक है। समझ में आ जाए तो बड़ा क्रांतिकारी है।

पंडित पूछता है, कहां झुके? साधक पूछता है, झुके? पंडित का जोर है, कहां? पंडित पूछता है, किस चीज के सामने झुके? काबा था कि काशी? कौन था जिसके सामने झुके? साधक पूछता है, झुके? साधक की चिंता यही है, झुकाव आया? नम्रता आई? झुकने की कला आई? इससे क्या फर्क पड़ता है कहां झुके! झुक गए। जो झुक गया उसने पा लिया। इससे कोई भी संबंध नहीं कि वह कहां झुका। मस्जिद में झुका तो पा लिया,

मंदिर में झुका तो पा लिया। झुकने से पाया। मंदिर से नहीं पाया, मस्जिद से नहीं पाया। मंदिर-मस्जिदों से कहीं कोई पाता है! झुकने से पाता है।

और जो सोचकर झुका कि कहां झुक रहा हूं, वह झुका ही नहीं। कहीं कोई सोचकर झुका है! सोच-विचार करके तो कोई झुकता ही नहीं, झुकने से बचता है। अगर तुम बिल्कुल निर्णय करके झुके कि हां, यह परमात्मा है, अब झुकना है--सब तरह से तय कर लिया कि यह परमात्मा है, फिर झुके--तो तुम झुके नहीं। क्योंकि तुम्हारा निर्णय और तुम्हारा झुकना। तुम अपने ही निर्णय के सामने झुके। तुम परमात्मा के सामने न झुके, तुम अपने निर्णय के सामने झुके।

साधक झुकता है। झुकने का अर्थ है, निर्णय छोड़ता है। साधक कहता है, मैं कौन हूं, मैं कैसे जान पाऊंगा, मेरी हैसियत क्या? मेरी सामर्थ्य क्या? साधक कहता है कि मैं कुछ हूं नहीं। इस न होने के बोध में से झुकने का फूल खिलता है। इस न होने में से समर्पण आता है। इस न होने में से झुकना आ जाता है। ऐसा कहना ठीक नहीं कि साधक झुकता है। ऐसा कहना ज्यादा ठीक है कि साधक पाता है कि झुकना हो रहा है। देखता है तो पाता है, अकड़ की कोई जगह तो नहीं, कोई सुविधा नहीं, अकड़ का कोई उपाय नहीं। अकड़ का उपाय नहीं पाता, इसलिए झुकना घटने लगता है। तुम अगर झुकते भी हो, तो तुम्हीं झुकते हो। तुम्हीं झुके तो क्या खाक झुके। अगर झुकने में भी तुम रहे, तो झुकना न हुआ।

बेखुदी में हम तो तेरा दर समझकर झुक गए

अब खुदा मालूम वह काबा था या बुतखाना था

मार्ग और मंजिल एक हैं कि अलग-अलग, खुदा मालूम। तुम चलो। और जिस बहाने से चल सको उसी बहाने को मान लो। सब बहाने बराबर हैं। इसीलिए तो मैं सभी धर्मों की चर्चा करता हूं। कोई धर्म किसी से कम-ज्यादा नहीं है। सब बहाने हैं। खूंटियां हैं मकान में, किसी पर भी टांग दो अपने कपड़े। कृपा करो, टांगो। खूंटियों का बहुत हिसाब मत रखो कि लाल पर टांगेंगे, कि हरी पर टांगेंगे। हरी होगी इस्लाम की खूंटी, लाल होगी हिंदुओं की खूंटी। तुम टांगो। क्योंकि धार्मिक को टांगने से मतलब है, खूंटियों से मतलब नहीं।

अब खुदा मालूम वो काबा था या बुतखाना था

ये तुम परमात्मा पर छोड़ दो। ये सब बड़े हिसाब उसी पर छोड़ दो। तुम तो एक छोटा सा काम कर लो, तुम चलो। लेकिन लोग बड़े हिसाब में लगे हैं, बड़ी चिंतना करते हैं, बड़ा विचार करते हैं। बड़ी होशियारी में लगे हैं, कि जब सब तय हो जाएगा बौद्धिक रूप से, और हम पूरी तरह से आश्वस्त हो जाएंगे, तब।

तो तुम कभी न चलोगे। तुम जिंदगीभर जिंदगी का सपना देखोगे। तुम जिंदगी भर जीने का विचार करोगे, जी न पाओगे। तैयारी करोगे, लेकिन कभी तुम जा न पाओगे यात्रा पर। बोरिया-बिस्तर बांधोगे, खोलोगे, बांधोगे, खोलोगे; रेल्वे स्टेशन पर जाकर ट्रेन कब, कहां जाती है उसका पता लगाओगे; टाइम-टेबल का अध्ययन करोगे--तुम्हारे वेद, तुम्हारे कुरान टाइम-टेबल हैं, ज्यादा कुछ भी नहीं--उनका बैठकर तुम अध्ययन करते रहो, टाइम-टेबल से कहीं कोई यात्रा हुई है! कुछ लोगों को मैं देखता था, जब मैं सफर में होता था, वे बैठे हैं अपने टाइम-टेबल का ही अध्ययन कर रहे हैं। वेदपाठी कहना चाहिए। ज्ञानी, पंडित टाइम-टेबल का अध्ययन कर रहे हैं। उसी को उलट रहे हैं।

नक्शों को रखे बैठे रहोगे। नक्शों से कभी किसी ने यात्रा की है? मैं तुमसे कहता हूं, अगर यात्रा पर न जाना हो तो नक्शे का अध्ययन करना बहुत जरूरी है। मैं तुमसे कहता हूं, अगर यात्रा से बचना हो तो नक्शों को

पकड़ रखना बहुत जरूरी है। क्योंकि मन उलझा रहता है नक्शों में। और नक्शे बहुत प्रकार के हैं, नाना रंग-रूप के हैं।

बुद्ध ने क्या कहा है इसकी फिक्र मत करो। महावीर ने क्या कहा है इसकी चिंता मत करो। कृष्ण ने क्या कहा है इसका हिसाब मत रखो। बुद्ध क्या हैं, महावीर क्या हैं, कृष्ण क्या हैं--उनके होने पर थोड़ी नजर लाओ और तुम भी होने में लग जाओ। ये सब बाल की खाल हैं कि कौन सी विधि है और कौन सा पहुंचना; कौन सा मार्ग, कौन सी मंजिल। बाल की खाल मत निकालो। बहुत तर्कशास्त्री हैं। उनको तुम छोड़ दे सकते हो। और एक बात ध्यान रखना, अंत में तुम पाओगे कि जो चले वे पहुंच गए और जो सोचते रहे वे खो गए। साधक एक कदम की चिंता करता है। एक कदम चल लेता है फिर दूसरे की चिंता करता है।

चीन में कहानी है कि एक आदमी वर्षों तक सोचता था कि पास में एक पहाड़ पर तीर्थस्थान था वहां जाना है। लेकिन--कोई तीन-चार घंटे की यात्रा थी, दस-पंद्रह मील का फासला था--वर्षों तक सोचता रहा। पास ही था, नीचे घाटी में ही रहता था, हजारों यात्री वहां से गुजरते थे, लेकिन वह सोचता था पास ही तो हूं, कभी भी चला जाऊंगा।

बूढ़ा हो गया। तब एक दिन एक यात्री ने उससे पूछा कि भाई, तुम भी कभी गए हो? उसने कहा कि मैं सोचता ही रहा, सोचा इतना पास हूं, कभी भी चला जाऊंगा। लेकिन अब देर हो गई, अब मुझे जाना ही चाहिए। उठा, उसने दुकान बंद की। सांझ हो रही थी। पत्नी ने पूछा, कहां जाते हो? उसने कहा मैं, अब तो यह मरने का वक्त आ गया, और मैं यही सोचता रहा इतने पास है, कभी भी चला जाऊंगा, और मैं इन यात्रियों को ही जो तीर्थयात्रा पर जाते हैं सौदा-सामान बेचता रहा। जिंदगी मेरी यात्रियों के ही साथ बीती--आने-जाने वालों के साथ। वे खबरें लाते, मंदिर के शिखरों की चर्चा करते, शांति की चर्चा करते, पहाड़ के सौंदर्य की बात करते, और मैं सोचता कि कभी भी चला जाऊंगा, पास ही तो है। दूर-दूर के लोग यात्रा कर गए, मैं पास रहा रह गया। मैं जाता हूं।

कभी यात्रा पर गया न था। सिर्फ यात्रा की बातें सुनी थीं। सामान बांधा, तैयारी की रातभर--पता था कि तीन बजे रात निकल जाना चाहिए, ताकि सुबह-सुबह ठंडे-ठंडे पहुंच जाए। लालटेन जलाई। क्योंकि देखा था कि यात्री बोरिया-बिस्तर भी रखते हैं, लालटेन भी लेकर जाते हैं। लालटेन लेकर गांव के बाहर पहुंचा तब उसे एक बात ख्याल आई कि लालटेन का प्रकाश तो चार कदम से ज्यादा पड़ता नहीं। पंद्रह मील का फासला है। चार कदम तक पड़ने वाली रोशनी साथ है। यह पंद्रह मील की यात्रा कैसे पूरी होगी? घबड़ाकर बैठ गया। हिसाब लगाया। दुकानदार था, हिसाब-किताब जानता था। चार कदम पड़ती है रोशनी, पंद्रह मील का फासला है। इतनी सी रोशनी से कहीं जाना हो सकता है? घबड़ा गया। हिसाब बहुतों को घबड़ा देता है।

अगर तुम परमात्मा का हिसाब लगाओगे, घबड़ा जाओगे। कितना फासला है! कहां तुम, कहां परमात्मा! कहां तुम, कहां मोक्ष! कहां तुम्हारा कारागृह और कहां मुक्ति का आकाश! बहुत दूर है। तुम घबड़ा जाओगे, पैर कंप जाएंगे। बैठ जाओगे, आश्वासन खो जाएगा, भरोसा टूट जाएगा। पहुंच सकते हो, यह बात ही मन में समाएगी न।

उसके पैर डगमगा गए। वह बैठ गया। कभी गया न था, कभी चला न था, यात्रा न की थी। सिर्फ लोगों को देखा था आते-जाते। उनकी नकल कर रहा था, तो लालटेन भी ले आया था, सामान भी ले आया था। कहते हैं, पास से फिर एक यात्री गुजरा और उसने पूछा कि तुम यहां क्या कर रहे हो? उस आदमी ने कहा, मैं बड़ी मुसीबत में हूं। इतनी सी रोशनी से इतने दूर का रास्ता! पंद्रह मील का अंधकार, चार कदम पड़ने वाली रोशनी!

हिसाब तो करो! उस आदमी ने कहा, हिसाब-किताब की जरूरत नहीं। उठो और चलो। मैं कोई गणित नहीं जानता, लेकिन इस रास्ते पर बहुत बार आया-गया हूं। और तुम्हारी लालटेन तो मेरी लालटेन से बड़ी है। तुम मेरी लालटेन देखो--वह बहुत छोटी सी लालटेन लिए हुए था, जिससे एक कदम मुश्किल से रोशनी पड़ती थी--इससे भी यात्रा हो जाती है। क्योंकि जब तुम एक कदम चल लेते हो, तो आगे एक कदम फिर रोशन हो जाता है। फिर एक कदम चल लेते हो, फिर एक कदम रोशन हो जाता है।

जिनको चलना है, हिसाब उनके लिए नहीं है। जिनको नहीं चलना है, हिसाब उनकी तरकीब है। जिनको चलना है, वे चल पड़ते हैं। छोटी सी रोशनी पहुंचा देती है। जिनको नहीं चलना है, वे बड़े अंधकार का हिसाब लगाते हैं। वह अंधकार घबड़ा देता है। पैर डगमगा जाते हैं।

साधक बनो, ज्ञानी नहीं। साधक बिना बने जो ज्ञान आ जाता है, वह कूड़ा-करकट है। साधक बनकर जो आता है, वह बात ही और है। महावीर ठीक कहते हैं, जो चल पड़ा वह पहुंच गया; वह ज्ञानी की बात है। उस ज्ञानी की जो चला है, पहुंचा है।

महावीर के पास उनका खुद का दामाद उनका शिष्य हो गया था। लेकिन उसे बड़ी अड़चन होती थी। भारत में तो दामाद का ससुर पैर छूता है। तो महावीर को पैर छूना चाहिए दामाद का। मगर जब उसने दीक्षा ले ली और उनका शिष्य हो गया, तो उसको पैर छूना पड़ता था। तो उसे बड़ी पीड़ा होती थी। बड़ा अहंकारी राजपूत था। और फिर महावीर की बातों में उसे कई ऐसी बातें दिखाई पड़ने लगीं जो असंगत हैं। यह बात उनमें एक बात थी। तो उसने एक विरोध का झंडा खड़ा कर दिया। उसने महावीर के पांच सौ शिष्यों को भड़का लिया। और उसने कहा, यह तो बकवास है यह कहना कि जो चलता है वह पहुंच गया। महावीर कहते थे, अगर तुमने दरी बिछाने के लिए खोली--खोलना शुरू की कि खुल गई। अब यह बात तो बड़ी गहरी थी। मगर बुद्धू बुद्धिमानों के हाथ में पड़ जाए तो बड़ा खतरा। उसने कहा, इसका तो मैं प्रमाण दे सकता हूं कि यह बात बिल्कुल गलत है। वह एक दरी ले आया लपेटकर। उसने कहा कि यह लो, हम खोल दिए--जरा सी खोल दी और फिर रुक गया। और महावीर कहते हैं, खोली कि खुल गई। कहां खुली? उससे पांच सौ आदमियों को भड़का लिया, महावीर के शिष्यों को।

कभी-कभी पंडित भी ज्ञानियों के शिष्यों को भड़का लेते हैं, क्योंकि पंडित की बात ज्यादा तर्कपूर्ण होती है। वह ज्यादा बुद्धि को जंचती है। बात तो जंचेगी। यह क्या बात है? खोलने से कहीं खुलती है, बीच में भी रुक सकती है। चलने से कहीं कोई पहुंचता है, बीच में भी तो रुक सकता है।

महावीर करुणा के आंसू गिराए होंगे, लेकिन क्या कर सकते थे? सिद्ध तो वे भी नहीं कर सकते थे यह। करुणा के आंसू गिराए होंगे, क्योंकि उन्हें पता है कि जो एक कदम भी सत्य की तरफ चल पड़ा, वह कभी नहीं रुकता है--मगर अब इसको समझाएं कैसे--क्योंकि सत्य का आकर्षण ऐसा है। तुम जो नहीं चले हो उनको खींच रहा है। जो चल पड़ा वह फिर कभी नहीं रुकता है। नहीं जो चले हैं वे भी खिंचे जा रहे हैं, तो जो चल पड़ा है वह कहीं रुकने वाला है? जिसने जरा सा भी स्वाद ले लिया सत्य का फिर सब स्वाद व्यर्थ हो जाते हैं। जो सत्य की तरफ जरा सा झुक गया, सत्य की ऊर्जा, सत्य का आकर्षण चुंबक की तरह खींच लेता है। यह तो ऐसे ही है जैसे कि हमने छत से एक पत्थर छोड़ दिया जमीन की तरफ। महावीर यह कह रहे हैं कि पत्थर छोड़ दिया कि पहुंच गया।

अगर मैं होता तो महावीर के दामाद को ले गया होता छत पर। दरी न खुलवाई होती, क्योंकि दरी की बात मैं न करता--वह मैं भी समझता हूं कि वह झंझट हो जाएगी दरी में तो। एक पत्थर छोड़ देता और कहता,

छूट गया--पहुंच गया। क्योंकि बीच में रुकेगा कैसे? गुरुत्वाकर्षण है। हां, जब तक छत पर ही रखा हुआ है तब तक गुरुत्वाकर्षण कुछ भी नहीं कर सकता। जरा डगा दो। इसलिए मैं कहता हूं, सत्य ऐसा है जैसे छत से कोई छलांग लगा ले। तुम एक कदम उठाओ, बाकी फिर अपने से हो जाएंगे। तुम्हें दूसरा कदम उठाना ही न पड़ेगा। क्योंकि जमीन का गुरुत्वाकर्षण कर लेगा शेष काम।

महावीर ठीक कहते थे। लेकिन महावीर कोई तार्किक नहीं हैं। महावीर हार गए, ऐसा लगता है। रोए होंगे करुणा से कि यह पागल खुद भी पागल है और यह पांच सौ और पागलों को अपने साथ लिए जा रहा है।

महावीर जानते हैं कि जो एक कदम चल गया वह मंजिल पर पहुंच गया। कृष्णमूर्ति ने पहली किताब लिखी है--द फॅर्स्ट एंड लास्ट फ्रीडम, उस किताब का नाम है, पहली और आखिरी मुक्ति। क्योंकि पहले कदम पर ही आखिरी घट जाती है। वही महावीर कह रहे थे कि एक कदम उठा लिया कि मंजिल आ गई। जिन्होंने भी पहला कदम उठा लिया उनकी मंजिल आ गई।

अब तुम पूछते हो कि मंजिल क्या और मार्ग क्या?

चाहो, दो कर लो; चाहो, एक कर लो; असलियत तो यही है कि मार्ग ही मंजिल है। क्योंकि एक कदम उठाते ही पहुंचना हो जाता है। तुम अगर नहीं पहुंचे, तो यह मत सोचना कि हमने कदम तो बहुत उठाए, चूंकि मंजिल दूर है इसलिए नहीं पहुंच पा रहे। तुमने पहला कदम ही नहीं उठाया। इसलिए अटके हो।

मगर अहंकार को बड़ी पीड़ा होती है यह मानने में कि मैंने पहला कदम नहीं उठाया? यह बात ही गलत लगती है। कदम तो हमने बहुत उठाए, मार्ग लंबा है, मंजिल दूर है, इसलिए नहीं पहुंच रहे हैं। अहंकार को उसमें सुविधा है कि मंजिल दूर है इसलिए नहीं पहुंच रहे हैं।

मैं तुमसे कहता हूं, तुमने पहला कदम ही नहीं उठाया। अन्यथा तुम्हें कोई रोक सकता है? जिसने उठाया पहला कदम, वह पहुंच गया। पहले कदम पर ही पहुंचना हो जाता है। तुम उठाओभर कदम और मंजिल आ जाती है। लेकिन बैठे-बैठे हिसाब मत करो। काफी हिसाब कर लिए हो।

तथाता मार्ग भी है, मंजिल भी। तथाता का अर्थ क्या होता है? तथाता का अर्थ है, सर्व स्वीकार का भाव। अहंकार संघर्ष है। अहंकार कहता है, ऐसा होना चाहिए, ऐसा नहीं होना चाहिए। अहंकार कहता है, यह रहा ठीक, वह रहा गलत। अहंकार चुनाव करता है, भेद करता है, बांटता है, खंड-खंड करता है। तथाता का अर्थ है, सर्व स्वीकार, टोटल एक्सेप्टेन्स। जैसा है, जो है, राजी हैं। अहंकार है परिपूर्ण विरोध। तथाता है परिपूर्ण स्वीकार। अहंकार है प्रतिरोध, रेसिस्टेन्स। तथाता है राजी होना। अहंकार है नहीं, तथाता है हां। अस्तित्व जो कहे, हां।

तब तो पहले ही कदम पर मंजिल हो जाएगी। ऐसी घड़ी में तो क्रांति घट जाती है, रूपांतरण हो जाता है। फिर बचा क्या पाने को, जब तुमने सब स्वीकार कर लिया? लड़ाई कहां रही? फिर तुम तैरते नहीं, अस्तित्व की धारा तुम्हें ले चलती है सागर की तरफ।

रामकृष्ण ने कहा है, दो ढंग हैं यात्रा करने के। एक है पतवार लेकर नाव चलाना। वह अहंकार का ढंग है। बड़ा थकाता है, और ज्यादा दूर पहुंचाता भी नहीं। दूसरा रास्ता है पतवार छोड़ो, पाल खोलो, हवाएं ले जाएंगी। तुम हवाओं के सहारे चल पड़ो।

एहसान नाखुदा का उठाए मेरी बला
कश्ती खुदा पर छोड़ दूं लंगर को तोड़ दूं
कौन चिंता करे मांझी की?

एहसान नाखुदा का उठाए मेरी बला

अब ये मांझी का और कौन एहसान उठाए?

कश्ती खुदा पर छोड़ दूं लंगर को तोड़ दूं

लंगर भी तोड़ देता हूं, कश्ती भी उस पर छोड़ देता हूं। यह है तथाता। अब वह जहां ले जाए। अब अगर मझधार में डुबा दे तो वही किनारा है। अब डूबना भी उबरना है। स्वीकार में फासला कहां? अब न पहुंचना भी पहुंचना है। स्वीकार में फासला कहां? अब होना और न होना बराबर है। अब मंजिल और मार्ग एक है। अब बीज और वृक्ष एक है। अब सृष्टि और प्रलय एक है। क्योंकि वे सारे भेद बीच में अहंकार खड़ा होकर करता था। सारे भेद अहंकार के हैं। अभेद निरअहंकार का है।

एहसान नाखुदा का उठाए मेरी बला

कश्ती खुदा पर छोड़ दूं लंगर को तोड़ दूं

ऐसी मनोदशा परमावस्था है। और ऐसी परम अवस्था में साधन, साध्य का कोई भेद नहीं। सृष्टि, स्रष्टा का कोई भेद नहीं। जीवन, मृत्यु का कोई भेद नहीं। एक के ही अलग-अलग चेहरे हैं।

फिर तुम जहां हो वहीं मंजिल है। फिर कहीं और जाने को भी नहीं है। जाना भी अहंकार का ही ख्याल है। पहुंचने की आकांक्षा भी अहंकार की ही दौड़ है। वह भी महत्वाकांक्षा ही है।

चौथा प्रश्नः क्या क्षणभंगुरता का बोध ही जीवन में क्षण-क्षण जीने की कला बन जाता है?

निश्चित ही! जैसे-जैसे ही तुम जागोगे और देखोगे कि एक क्षण के अतिरिक्त हाथ में कोई दूसरा क्षण नहीं है--दो क्षण किसी के पास एक साथ नहीं होते। एक क्षण आता है, जाता है, तब दूसरा आता है--एक ही क्षण हाथ में है।

सारे जीवन की कला यही है कि इस एक क्षण में कैसे जी लो। कैसे यह एक क्षण ही तुम्हारा पूरा जीवन हो जाए। कैसे इस एक क्षण की इतनी गहराई में उतर जाओ कि यह क्षण शाश्वत और सनातन मालूम हो। एक क्षण से दूसरे क्षण पर जाना साधारण जीवन का ढंग है। और एक क्षण की गहराई में उतर जाना असाधारण जीवन का ढंग है।

सांसारिक जीवन का अर्थ है, इस क्षण को अगले क्षण के लिए कुर्बान करो, फिर उसको और अगले के लिए कुर्बान करना। आज को कल के लिए निछावर करो, कल को फिर और परसों के लिए निछावर करना। सांसारिक जीवन एक सतत स्थगन, एक पोसपोनमेंट है। संन्यास का जीवन, इस क्षण को पूरा जी लो परम अनुग्रह के भाव से। परमात्मा ने यह क्षण दिया, इसे पूरा पी लो। इस क्षण की प्याली में से एक बूंद भी अनपीयी न छूट जाए, तुम इसे पूरा ही गटक जाओ, तो तुम तैयार हो रहे हो दूसरे क्षण को पीने के लिए। जितना तुम पीयोगे उतनी तैयारी हो जाएगी। यह प्यास कुछ ऐसी है कि पीने से बढ़ती है। यह रस कुछ ऐसा है कि जितना तुम इसमें डूबोगे उतनी ही डूबने की क्षमता आती जाएगी।

क्षणभंगुरता का बोध अगर तुम्हें आ जाए कि एक ही क्षण पास है, दूसरा कोई क्षण पास नहीं--हो सकता है यही क्षण आखिरी हो--तो फिर तुम कल पर न छोड़ सकोगे। तुम आज जीओगे, यहीं जीओगे। तुम यह न कहोगे कि कल पर छोड़ते हैं, कल जी लेंगे। कल कर लेंगे प्रेम, कल कर लेंगे उत्सव, कल कर लेंगे आनंद, तुममें फिर यह सुविधा न रहेगी। आज ही है उत्सव, आज ही है पूजा, आज ही है प्रेम। आज के पार कुछ भी नहीं है।

क्षणभंगुर का अगर इतना स्पष्ट बोध हो जाए कि जीवन क्षण-क्षण बीता जा रहा है, चूका जा रहा है, तो तुम क्षण की शाश्वतता में उतरने में समर्थ हो जाओगे। एक क्षण भी अपनी गहराई में सनातन है, शाश्वत है।

ऐसे समझो कि एक आदमी किसी झील में तैरता है--ऊपर-ऊपर, एक लहर से दूसरी लहर। और एक दूसरा है गोताखोर, जो झील में एक ही लहर में गोता मारता है और गहरे उतर जाता है। सांसारिक आदमी एक लहर से दूसरी लहर पर चलता रहता है। सतह पर ही तैरता है। सतह पर सतह ही हाथ लगती है। गहराई में जो जाता है उसे गहराई के खजाने हाथ लगते हैं। किसी ने कभी लहरों पर मोती पाए? मोती गहराई में हैं।

जीवन का असली अर्थ क्षण की गहराई में छिपा है। तो यह तो ठीक है कि जीवन को क्षणभंगुर मानो--है ही; मानने का सवाल नहीं है, जानो। यह भी ठीक है कि एक क्षण से ज्यादा तुम्हें कुछ मिला नहीं। लेकिन इससे उदास होकर मत बैठ जाना। यह तो कहा ही इसलिए था ताकि झूठी दौड़ बंद हो जाए। यह तो कहा ही इसलिए था ताकि गलत आयाम में तुम न चलो। यह तो तुम्हें पुकारने को कहा था कि गहराई में उतर आओ।

बुद्ध जब कहते हैं, जीवन क्षणभंगुर है, तो वे यह नहीं कह रहे हैं कि इसे छोड़कर तुम उदास होकर बैठ जाओ। वे यही कह रहे हैं कि तुम्हारे होने का जो ढंग है अब तक, वह गलत है। उसे छोड़ दो, मैं तुम्हें एक और नए होने का ढंग बताता हूं।

साधारण आदमी तो क्षणभंगुर जीवन की सतह पर जीता है। इसी क्षणभंगुर सतह पर वह अपने स्वर्ग और नर्कों की भी कामना करता है, अपने आने वाले भविष्य जन्मों की भी कल्पना करता है--यहीं, इसी आयाम में। वह कभी नीचे झांककर नहीं देखता कि सतह की गहराई में कितना अनंत छिपा है।

एक-एक क्षण में अनंत का वास है। और एक-एक कण में विराट है। लेकिन वह कण को कण की तरह देखता है, क्षण को क्षण की तरह देखता है। और क्षण की वजह से--इतना छोटा क्षण जी कैसे पाएंगे--वह आगे की योजनाएं बनाता है कि कल जीएंगे और यह भूल ही जाता है, कि कल भी क्षण ही हाथ में होगा। जब भी होगा क्षण ही हाथ में होगा। ज्यादा कभी हाथ में न होगा। जब यह जीवन चूक जाता है, तो अगले जीवन की कल्पना करता है कि फिर जन्म के बाद होगा जीवन। लेकिन तुम वही कल्पना करोगे, उसी की आकांक्षा करोगे जो तुमने जाना है।

गालिब की बड़ी प्रसिद्ध पंक्तियां हैं--

क्यों न फिरदौस को दोजख में मिला लें या रब

सैर के वास्ते थोड़ी सी जगह और सही

गालिब कह रहा है कि नर्क को ही जाना है हमने तो, स्वर्ग को तो जाना नहीं। और जिनको हमने जाना है, उन्होंने भी नर्क को ही जाना है।

क्यों न फिरदौस को दोजख में मिला लें या रब

तो हम स्वर्ग को भी नर्क में क्यों न मिला लें?

सैर के वास्ते थोड़ी सी जगह और सही

स्वर्ग होगा भी छोटा नर्क के मुकाबले, क्योंकि अधिक लोग नर्क में जी रहे हैं। स्वर्ग में तो कभी कोई जीता है। इस थोड़ी सी जगह को भी और अलग क्यों छोड़ रखा है।

क्यों न फिरदौस को दोजख में मिला लें या रब

सैर के वास्ते थोड़ी सी जगह और सही

इसको क्यों अलग छोड़ रखा है? ये पंक्तियां बड़ी महत्वपूर्ण हैं। ये साधारण आदमी के मन की खबर हैं।

तुम्हें अगर स्वर्ग भी मिले तो तुम उसे अपने नर्क में ही जोड़ लेना चाहोगे, और तुम करोगे भी क्या? मैंने देखा है, तुम्हें धन भी मिल जाए तो तुम उसे अपनी गरीबी में जोड़ लेते हो, और तुम करोगे भी क्या? तुम्हें आनंद का अवसर भी मिल जाए तो तुम उसे भी अपने दुख में जोड़ लेते हो, तुम और करोगे भी क्या? तुम्हें अगर चार दिन जिंदगी के और मिल जाएं तो तुम उन्हें इसी जिंदगी में जोड़ लोगे, और तुम करोगे भी क्या? आदमी सत्तर साल जीता है, सात सौ साल जीए तो तुम सोचते हो कोई क्रांति हो जाएगी! बस ऐसे ही जीएगा। और सुस्त होकर जीने लगेगा। ऐसे ही जीएगा। सत्तर साल में अभी नहीं जीता तो सात सौ साल में तो और भी स्थगित करने लगेगा कि जल्दी क्या है?

क्यों न फिरदौस को दोजख में मिला लें या रब

सैर के वास्ते थोड़ी सी जगह और सही

तुम जो हो उसी में तो जोड़ोगे भविष्य को भी। तुम स्वर्ग को भी अपने नर्क में ही जोड़ लोगे। तुम अपने अधर्म में ही धर्म को भी जोड़ लेते हो। तुम अपनी दुकान में ही मंदिर को भी जोड़ लेते हो। तुम अपनी बीमारी में अपने स्वास्थ्य को भी जोड़ लेते हो। तुम अपनी मूर्च्छा में अमूर्च्छा की बातों को भी जोड़ लेते हो। तुम अपनी अशांति में अपने ध्यान को भी जोड़ लेते हो। रूपांतरण नहीं हो पाता।

नर्क में स्वर्ग को नहीं जोड़ना है। नर्क को मिटाना है, ताकि स्वर्ग हो सके। नर्क को छोड़ना है, ताकि स्वर्ग हो सके।

क्षणभंगुर जीवन है, यह सत्य है। इसके तुम तीन अर्थ ले सकते हो। एक, क्षणभंगुर है, इसलिए जल्दी करो। भोगो, कहीं भोग छूट न जाए। सांसारिक आदमी वही कहता है--खाओ, पीओ, मौज करो, जिंदगी जा रही है। फिर धार्मिक आदमी है, वह कहता है--जिंदगी जा रही है, खाओ, पीओ, मौज करो, इसमें मत गंवाओ। कुछ कमाई कर लो, जो आगे काम आए स्वर्ग में, मोक्ष में। ये दोनों गलत हैं। फिर एक तीसरा आदमी है जिसको मैं जागा हुआ पुरुष कहता हूं, बुद्धपुरुष कहता हूं, वह कहता है--जीवन क्षणभंगुर है, इसलिए कल पर तो कुछ भी नहीं छोड़ा जा सकता। स्वर्ग और भविष्य की कल्पनाएं नासमझियां हैं। इसलिए बुद्ध ने स्वर्गों की बात नहीं की। फिर वह यह कहता है कि जीवन क्षणभंगुर है तो सतह पर ही खाने-पीने और मौज में भी उसे गंवाना व्यर्थ है। तो थोड़ा हम भीतर उतरें, क्षण को खोलें, कौन जाने क्षण केवल द्वार हो जिसके बाहर ही हम जीवन को गंवाए दे रहे हैं। क्षण को खोलना ही ध्यान है।

महावीर ने तो ध्यान को सामायिक कहा। क्योंकि सामायिक का अर्थ है, समय को खोल लेने की कला। क्षण में खोलकर उतर जाना। द्वार तो छोटा ही होता है, महल बहुत बड़ा है। तुम द्वार के कारण महल को छोटा मत समझ लेना। द्वार तो छोटा ही होता है। द्वार के बड़े होने की जरूरत नहीं। तुम निकल जाओ इतना काफी है।

इतना मैं तुमसे कहता हूं, क्षण का द्वार इतना बड़ा है कि तुम उससे मजे से निकल सकते हो। इससे ज्यादा की जरूरत भी नहीं। क्षण के पार शाश्वत तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। तुम एक द्वार से दूसरे द्वार पर भाग रहे हो। कुछ द्वार-द्वार भीख मांगते फिर रहे हैं, वे सांसारिक लोग। कुछ हैं जो उदास होकर बैठ गए हैं द्वार के बाहर, सिर लटका लिया है कि जीवन बेकार है। इन दो से बचना।

एक तीसरा आदमी भी है, जिसने क्षण की कुंजी खोज ली--वही अमूर्च्छा है, अप्रमाद है--और क्षण का द्वार खोल लिया। क्षण का द्वार खोलते ही शाश्वत का द्वार खुल जाता है। अनंत छिपा है क्षण में, विराट छिपा है कण में।

आखिरी प्रश्नः आनंद की दशा में क्या बस फूल ही फूल हैं, कांटे क्या एक भी नहीं?

प्रश्न थोड़ा कठिन है। कठिन इसलिए है कि आनंद के मार्ग पर न तो फूल हैं और न कांटे। कांटे तुम्हारे देखने में होते हैं। फूल भी तुम्हारे देखने में होते हैं। कांटे और फूल बाहर नहीं हैं। कांटे और फूल तुम्हें मिलते नहीं हैं बाहर, तुम्हारे देखने से जन्मते हैं। गलत देखने से कांटे दिखाई पड़ते हैं। ठीक देखने से फूल दिखाई पड़ते हैं। तुम वही देख लेते हो जो तुम्हारी दृष्टि है। दृष्टि ही सृष्टि है, इसे स्मरण रखो।

बड़ी प्राचीन कथा है कि रामदास राम की कथा कह रहे हैं। कथा इतनी प्रीतिकर है, राम की कहानी इतनी प्रीतिकर है कि हनुमान भी सुनने आने लगे। हनुमान ने तो खुद ही आंखों से देखी थी सारी कहानी। लेकिन फिर भी कहते हैं, रामदास ने ऐसी कही कि हनुमान को भी आना पड़ा। खबर मिली तो वह सुनने आने लगे। बड़ी अदभुत थी। छिपे-छिपे भीड़ में बैठकर सुनते थे।

पर एक दिन खड़े हो गए, ख्याल ही न रहा कि छिपकर सुनना है, छिपकर ही आना है। क्योंकि रामदास कुछ बात कहे जो हनुमान को जंची नहीं, गलत थी, क्योंकि हनुमान मौजूद थे। और यह आदमी तो हजारों साल बाद कह रहा है। तो उन्होंने कहा कि देखो, इसको सुधार कर लो।

रामदास ने कहा कि जब हनुमान लंका गए और अशोक वाटिका में गए, और उन्होंने सीता को वहां बंद देखा, तो वहां चारों तरफ सफेद फूल खिले थे। हनुमान ने कहा, यह बात गलत है, तुम इसमें सुधार कर लो। फूल लाल थे, सफेद नहीं थे। रामदास ने कहा, तुम बैठो, बीच में बोलने की जरूरत नहीं है। तुम हो कौन? फूल सफेद थे।

तब तो हनुमान को अपना रूप बताना पड़ा। हनुमान ही हैं! भूल ही गए सब शिष्टाचार। कहा कि मैं खुद हनुमान हूं। प्रगट हो गए। और कहा कि अब तो सुधार करोगे? तुम हजारों साल बाद कहानी कह रहे हो। तुम वहां थे नहीं मौजूद। मैं चश्मदीद गवाह हूं। मैं खुद हनुमान हूं, जिसकी तुम कहानी कह रहे हो। मैंने फूल लाल देखे थे, सुधार कर लो।

मगर रामदास जिद्दी। रामदास ने कहा, होओगे तुम हनुमान, मगर फूल सफेद थे। इसमें फर्क नहीं हो सकता। बात यहां तक बढ़ गई कि कहते हैं राम के दरबार में दोनों को ले जाया गया, कि अब राम ही निर्णय करें कि अब यह क्या मामला होगा, कैसे बात हल होगी! क्योंकि हनुमान खुद आंखों देखी बात कह रहे हैं कि फूल लाल थे। और रामदास फिर भी जिद किए जा रहे हैं कि फूल सफेद थे।

राम ने हनुमान से कहा कि तुम माफी मांग लो। रामदास ठीक ही कहते हैं। फूल सफेद थे। हनुमान तो हैरान हो गए। उन्होंने कहा, यह तो हद्द हो गई, यह तो कोई सीमा के बाहर बात हो गई। मैंने खुद देखे, तुम भी वहां नहीं थे। और न ये रामदास थे और न तुम थे। तुमसे निर्णय मांगा यही भूल हो गई। मैं अकेला वहां मौजूद था। सीता से पूछ लिया जाए, वे मौजूद थीं।

सीता को पूछा गया। सीता ने कहा, हनुमान, तुम क्षमा मांग लो, फूल सफेद थे। संत झूठ नहीं कह सकते। होना मौजूद न होना सवाल नहीं है। अब रामदास ने जो कह दिया वह ठीक ही है। फूल सफेद ही थे। मुझे दुख होता है कि तुम्हें गलत होना पड़ रहा है, तुम्हीं अकेले एकमात्र गवाह नहीं हो, मैं भी थी, फूल सफेद ही थे। शानदार!

उसने कहा, यह तो कोई शड्यंत्र मालूम होता है। कोई साजिश मालूम पड़ती है। मुझे भलीभांति याद है।

राम ने कहा, तुम ठीक कहते हो, तुम्हें फूल लाल दिखाई पड़े थे, क्योंकि तुम क्रोध से भरे थे। आंखों में खून था। जब आंखों में खून हो, क्रोध हो, तो सफेद फूल कैसे दिखाई पड़ सकते हैं?

जब मैंने इस कहानी को पढ़ा तो मेरा मन हुआ, इसमें थोड़ा और जोड़ दिया जाए। क्योंकि फूल वहां थे ही नहीं। अगर हनुमान की आंखों में खून था इसलिए लाल दिखाई पड़े, तो यह रामदास के मन में एक शुभ्रता है जिसकी वजह से सफेद दिखाई पड़ रहे हैं। फूल वहां थे नहीं। मैं तुमसे कहता हूं, राम भी गलत थे, सीता भी गलत हैं, रामदास भी गलत हैं। फूल बाहर नहीं हैं। तुम्हारी आंख में ही खिलते हैं। कांटे भी बाहर नहीं हैं। तुम्हारी आंख में ही बनते हैं, निर्मित होते हैं। तुम्हें वही दिखाई पड़ जाता है जो तुम देख सकते हो।

अब तुम पूछते हो, "आनंद की दशा में क्या बस फूल ही फूल हैं?"

न तुम्हें आनंद की दशा का पता है, न तुमने कभी फूल देखे।

"कांटे क्या एक भी नहीं?"

अब तुम्हें पता ही नहीं तुम क्या पूछ रहे हो। जिसके भीतर आनंद का आविर्भाव हुआ है, उसके बाहर सिर्फ आनंद ही आनंद होता है, फूल ही फूल होते हैं। क्योंकि जो तुम्हारे भीतर है वही तुम्हारे बाहर छा जाता है। तुम्हारा भीतर ही फैलकर बाहर छा जाता है। तुम्हारा भीतर ही बाहर हो जाता है। तुम जैसे हो वैसा ही सारा अस्तित्व हो जाता है।

बुद्ध के साथ सारा अस्तित्व बुद्ध हो जाता है। मीरा के साथ सारा अस्तित्व मीरा हो जाता है। मीरा नाचती है तो सारा अस्तित्व नाचता है। बुद्ध चुप होते हैं तो सारा अस्तित्व चुप हो जाता है। तुम दुख से भरे हो, तो सारा अस्तित्व दुख से भरा है। तुमने कभी ख्याल भी किया होगा, तुम परेशान हो, दुखी हो, चांद को देखते हो, उदास मालूम होता है। उसी रात तुम्हारे ही पड़ोस में कोई प्रसन्न है, आनंदित है, उसी चांद को देखता है और लगता है आनंद बरस रहा है।

तुम्हारी दृष्टि ही तुम्हारा संसार है। और मोक्ष का अर्थ है, सारी दृष्टि का खो जाना। न सफेद, न लाल। जब कोई भी दृष्टि नहीं रह जाती तुम्हारी, तब तुम्हें वह दिखाई पड़ता है, जो है। उसको परमात्मा कहो, निर्वाण कहो।

साधु को भी जो दिखाई पड़ता है, वह है नहीं। असाधु को भी जो दिखाई पड़ता है, वह है नहीं। शैतान को जो दिखाई पड़ता है, वह है नहीं। संत को जो दिखाई पड़ता है, वह है नहीं। जो है, वह तो तभी दिखाई पड़ता है जब तुम्हारी कोई भी दृष्टि नहीं होती। तब तुम कुछ भी नहीं जोड़ते।

इसलिए बुद्ध ने तो उस परमदशा में आनंद है, ऐसा भी नहीं कहा। क्योंकि वह भी दृष्टि है। फूल हैं, ऐसा भी नहीं कहा। कांटे हैं, ऐसा भी नहीं कहा। क्योंकि कांटे तुम्हारी दुख की दृष्टि से पैदा होते थे, आनंद तुम्हारे आनंद की दृष्टि से पैदा हो रहा है। कांटों में भी तुम थे, फूलों में भी तुम हो। एक ऐसी भी घड़ी है निर्वाण की जब तुम होते ही नहीं; तब एक परमशून्य है। इसलिए बुद्ध ने कहा, निर्वाण, परमशून्यता। जहां कुछ भी नहीं है। जहां वही दिखाई पड़ता है, जो है। अब उसे कहने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि उसे कांटा कहो तो गलत होगा, फूल कहो तो गलत होगा, दुख कहो तो गलत होगा।

तो तीन दशाएं हैं। एक दुख की दशा है। तब तुम्हें चारों तरफ कांटे दिखाई पड़ते हैं। फूल केवल तुम्हारे सपने में होते हैं। कांटा चुभता है वस्तुतः और फूल केवल आशा में होता है। यह एक दशा। फिर एक आनंद की दशा है, जब चारों तरफ फूल होते हैं। कांटे सब खो गए होते हैं, कहीं कोई कांटा नहीं दिखाई पड़ता। लेकिन कांटा संभावना में छिपा होता है। क्योंकि फूल अगर है, तो कांटा कहीं संभावना में छिपा होगा। फिर एक

तीसरी परमदशा है। न कांटे हैं, न फूल हैं। उस परमदशा को ही आनंद कहो। वह सुख के पार, दुख के पार। कांटे के पार, फूल के पार।

आज इतना ही।

पंद्रहवां प्रवचन

केवल शिष्य जीतेगा

को इमं पठविं विजेस्सति यमलोकंच इमं सदेवकं।
को धम्मपदं सुदेसितं कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति।। 39।।

सेखो पठविं विजेस्सति यमलोकंच इमं सदेवकं।
सेखो धम्मपदं सुदेसितं कुसलो पुप्फमिव पचेस्सति।। 40।।

फेणूपमं कायमिमं विदित्वा मरीचिधम्मं अभिसम्बुधाना।
छेत्वान मारस्स पपुप्फकानि अदस्सनं मच्चुराजस्स गच्छे।। 41।।

पुप्फानि हेव पचिनन्तं व्यासत्तमनसं नरं।
सुत्तं गामं महोघोव मच्चु आदाय गच्छति।। 42।।

यथापि भमरो पुप्फं वण्णगन्धं अहेठयं।
पलेति रसमादाय एवं गामे मुनिचरे।। 43।।

चलने को चल रहा हूं पर इसकी खबर नहीं
मैं हूं सफर में या मेरी मंजिल सफर में है

जीवन यदि चलने से ही पूरा हो जाता, तो सभी मंजिल पर पहुंच गए होते। क्योंकि चलते तो सभी हैं। चलते ही नहीं, दौड़ते हैं। सारा जीवन चुका डालते हैं उसी दौड़ में, पर पहुंचता कभी कोई एकाध है--करोड़ों में, सदियों में।

यह चलना कैसा, जो पहुंचाता नहीं? यह जीना कैसा, जिससे जीवन का स्वाद आता नहीं? यह होने का कैसा ढंग है? न होने के बराबर। भटकना कहो इसे, चलना कहना ठीक नहीं। जब पहुंचना ही न होता हो, तो चलना कहना उचित नहीं है। मार्ग वही है जो मंजिल पर पहुंचा दे। चलने से ही कोई मार्ग नहीं होता, मंजिल पर पहुंचने से मार्ग होता है।

पहुंचते केवल वे ही हैं, जो जागकर चलते हैं। चलने में जिन्होंने जागने का गुण भी जोड़ लिया, उनका भटकाव बंद हो जाता है। और बड़े आश्चर्य की बात तो यही है कि जिन्होंने जागने को जोड़ दिया चलने में, उन्हें चलना भी नहीं पड़ता और पहुंच जाते हैं। क्योंकि जागना ही मंजिल है।

तो दो ढंग से जी सकते हो तुम। एक तो चलने का ही जीवन है, चलते रहने का। केवल थकान लगती है हाथ। राह की धूल लगती है हाथ। आदमी गिर जाता है आखिर में--कब्र में, मुंह के बल। उसे ही मंजिल मान लो, तब बात और!

एक और ढंग है चलने का--होशपूर्वक, जागकर। पैरों का उतना सवाल नहीं है जितना आंखों का सवाल है। शक्ति का उतना सवाल नहीं है जितना शांति का सवाल है। नशे-नशे में, सोए-सोए कितना ही चलो, पहुंचोगे नहीं।

यह चलना तो कोल्हू के बैल जैसा है। आंखें बंद हैं कोल्हू के बैल की, चलता चला जाता है। एक ही लकीर पर वर्तुलाकार घूमता रहता है। अपने जीवन को थोड़ा विचारो, कहीं तुम्हारा जीवन भी तो वर्तुलाकार नहीं घूम रहा है? जो कल किया था वही आज कर रहे हो। जो आज कर रहे हो वही कल भी करोगे। कहीं तो तोड़ो इस वर्तुल को। कभी तो बाहर आओ इस घेरे के।

यह पुनरुक्ति जीवन नहीं है। यह केवल आहिस्ता-आहिस्ता मरने का नाम है। जीवन तो प्रतिपल नया है। मौत पुनरुक्ति है। इसे तुम परिभाषा समझो। अगर तुम वही दोहरा रहे हो, जो तुम पहले भी करते रहे हो, तो तुम जी नहीं रहे हो। तुम जीने का सिर्फ बहाना कर रहे हो। सिर्फ थोथी मुद्राएं हैं, जीवन नहीं। तुम जीने का नाटक कर रहे हो। जीना इतना सस्ता नहीं है। रोज सुबह उठते हो, फिर वही शुरू हो जाता है। रोज सांझ सोते हो, फिर वही अंत हो जाता है।

कहीं से तोड़ो इस परिधि को। और इस परिधि को तोड़ने का एक ही उपाय है, जो बुद्धपुरुषों ने कहा है--आंख खोलो। कोल्हू का बैल चल पाता है एक ही चक्कर में, क्योंकि उसकी आंखें बंद कर दी गई हैं। उसे दिखाई नहीं पड़ता। तुम्हारी आंखें भी बंद हैं।

चलने को चल रहा हूं पर इसकी खबर नहीं

मैं हूं सफर में या मेरी मंजिल सफर में है

इतना भी पता नहीं है कि यह जिंदगी ही मंजिल है, या यह जिंदगी कहीं पहुंचाती है। यह बस होना काफी है, या इस होने से और एक बड़े होने का द्वार खुलने को है। मैं पर्याप्त हूं, या केवल एक शुरुआत हूं। मैं अंत हूं, या प्रारंभ हूं। मैं बीज हूं, या वृक्ष हूं। तुम जो हो, अगर वह पर्याप्त होता तो तुम आनंदित होते। क्योंकि जहां भी पर्याप्त हो जाता है, वहीं संतोष, परितृप्ति आ जाती है। जहां पर्याप्त हुए, वहीं परितोष आ जाता है।

तुम पर्याप्त तो नहीं हो, यह तुम्हारी बेचैनी कहे देती है। तुम्हारी आंख की उदासी कहे जाती है। तुम्हारे प्राणों का दुख भरा स्वर गुनगुनाए जाता है--तुम पर्याप्त नहीं हो। कुछ खो रहा है। कुछ चूका जा रहा है। कुछ होना चाहिए जो नहीं है। उसकी रिक्त जगह तुम अनुभव करते हो। वही तो जीवन का संताप है। तो फिर ऐसे ही अगर रहे और इसी को दोहराते रहे, तब तो वह रिक्त जगह कभी भी न भरेगी। तुम्हारा घर खाली रह जाएगा। जिसकी तुम प्रतीक्षा करते हो, वह कभी आएगा नहीं। जागकर देखना जरूरी है।

असली सवाल, कहां जा रहे हो, यह नहीं है। असली सवाल, किस मार्ग से जा रहे हो, यह भी नहीं है। असली सवाल यही है कि जो जा रहा है, वह कौन है? जिसने अपने को पहचाना, उसके कदम ठीक पड़ने लगे। अपनी पहचान से ही ठीक कदमों का जन्म होता है। जिसने अपने को न पहचाना, वह कितने ही शास्त्र और कितने ही नक्शे और कितने ही सिद्धांत लेकर चलता रहे, उसके पैर गलत ही पड़ते रहेंगे। वह तो एक ऐसा शराबी है, जो नक्शा लेकर चल रहा है। शराबी के खुद के पैर ही ठीक नहीं पड़ रहे हैं। शराबी के हाथ नक्शे का क्या उपयोग है?

तुम्हारे हाथ में शास्त्रों का कोई उपयोग नहीं। तुम्हारे साथ शास्त्र भी कंपेगा, डगमगाएगा। शास्त्र तुम्हें न ठहरा पाएगा, तुम्हारे कारण शास्त्र भी डगमगाएगा। तुम ठहर जाओ, शास्त्र की जरूरत ही नहीं। तुम्हारे ठहरने से ही शास्त्र का जन्म होता है, दृष्टि उपलब्ध होती है, दर्शन होता है। बुद्ध के ये सारे वचन सब तरफ से एक ही

दिशा की तरफ इंगित करते हैं कि जागो! प्रमाद में मत डूबे रहो, अप्रमाद तुम्हारे जीवन का आधार बने, आधारशिला बने।

पूछते हैं बुद्ध, "कौन इस पृथ्वी और देवताओं सहित इस यमलोक को जीतेगा? कौन? कौन कुशल पुरुष फूल की भांति सुदर्शित धर्मपथ को चुनेगा? कौन?"

तुम तो कैसे चुनोगे, जैसे तुम हो। चुनना तो तुम भी चाहते हो। कांटों से कौन बचना नहीं चाहता? फूलों को कौन आलिंगन नहीं कर लेना चाहता? सुख की आकांक्षा किसकी नहीं है? दुख से दूर हटने का भाव किसके मन में नहीं उठता? लेकिन बुद्ध पूछते हैं, कौन जीतेगा? कौन उपलब्ध होगा फूलों से भरे धर्मपथ को?

तुम जैसे हो वैसे न हो सकोगे। तुम सोए हो। तुम्हें खबर ही नहीं, तुम कौन हो। फूल और कांटे का भेद तो तुम कैसे करोगे? सार-असार को तुम कैसे अलग करोगे? सार्थक-व्यर्थ को तुम कैसे छांटोगे? तुम सोए हो। तुम्हारे स्वप्नों में अगर तुमने फूल और कांटे अलग भी कर लिए, तो जागकर तुम पाओगे दोनों खो गए। सपने के फूल और सपने के कांटों में कोई फर्क नहीं।

इसलिए असली सवाल तुम्हारे जागने का है। उसके बाद ही निर्णय हो सकेगा। नींद में तुम मंदिर जाओ कि मस्जिद, सब बेकार। कुरान पढ़ो कि वेद, सब व्यर्थ। नींद में तुम बुद्धपुरुषों को सुनते रहो, कुछ हल न होगा। तुम्हें जागना पड़ेगा। क्योंकि जागकर ही तुम सुनोगे तभी तुम समझ सकोगे। सुन लेना समझने के लिए काफी नहीं है। नींद अगर भीतर घिरी हो, तो तुम्हारे कान सुनते भी रहेंगे और तुम यह मानते भी रहोगे कि मैं सुन रहा हूं, फिर भी तुमने कुछ सुना नहीं। तुम बहरे के बहरे रह गए। अंधे के अंधे रहे। तुम्हारे जीवन में कोई क्रांति उससे पैदा न हो सकेगी।

"कौन इस पृथ्वी और देवताओं सहित इस यमलोक को जीतेगा? कौन कुशल पुरुष फूल की भांति सुदर्शित धर्मपथ को चुनेगा?"

"शिष्य--शैक्ष--इस पृथ्वी और देवताओं सहित इस यमलोक को जीतेगा। कुशल शैक्ष--कुशल शिष्य--फूल की भांति सुदर्शित धर्मपथ को चुनेगा।"

शिष्य को समझना होगा। बुद्ध का जोर शिष्य पर उतना ही है, जितना नानक का था। इसलिए नानक का पूरा धर्म ही सिक्ख धर्म कहलाया--शिष्य का धर्म। सिक्ख यानी शिष्य। सारा धर्म ही सीखने की कला है। तुम सोचते भी हो बहुत बार कि तुम सीखने को तैयार हो, लेकिन मुश्किल से कभी मुझे कोई व्यक्ति मिलता है जो सीखने को तैयार है। क्योंकि सीखने की शर्तें ही पूरी नहीं हो पातीं।

सीखने की पहली शर्त तो यह समझना है कि तुम जानते नहीं हो। अगर तुम्हें जरा सी भी भ्रांति है कि तुम जानते ही हो, तो तुम सीखोगे कैसे? सीखने के लिए जानना जरूरी है कि मैं अज्ञानी हूं। ज्ञान को निमंत्रण देने के लिए यह बुनियादी शर्त है। इसके पहले कि तुम पुकारो ज्ञान को, इसके पहले कि तुम अपना द्वार खोलो उसके लिए, तुम्हें बड़ी गहन विनम्रता में यह स्वीकार कर लेना होगा कि मैं नहीं जानता हूं।

इसलिए पंडित शिष्य नहीं हो पाते। और दुनिया जितनी ही जानकार होती जाती है उतना ही शिष्यत्व खोता चला जाता है। पंडित जान ही नहीं सकता।

यह बड़ी विरोधाभासी बात मालूम पड़ती है। क्योंकि हम तो सोचते हैं, पंडित जानता है। पंडित अकेला है जो नहीं जान सकता। अज्ञानी जान ले भला, पंडित के जानने का कोई उपाय नहीं। क्योंकि पंडित तो मानकर बैठा है कि मैं जानता ही हूं। उसे वेद कंठस्थ हैं। उसे उपनिषदों के वचन याद हैं। उसे बुद्धपुरुषों की गाथाएं

शब्दशः स्मरण में हैं। उसकी स्मृति भरी-पूरी है। और उसे भरोसा है कि मैं जानता हूं। वह कभी भी जान न पाएगा। क्योंकि जगह चाहिए। तुम पहले से भरे हो। खाली होना जरूरी है।

कौन है शिष्य? जिसे यह बात समझ में आ गई कि अब तक मैंने कुछ जाना नहीं। तुम्हें भी कभी-कभी यह बात समझ में आती है, लेकिन तुम्हें इस तरह समझ में आती है कि सब न जाना हो, थोड़ा तो मैंने जाना है। वहीं धोखा हो जाता है।

एक बात तुम्हें कह दूं, या तो जानना पूरा होता है, या बिल्कुल नहीं होता। थोड़ा-थोड़ा नहीं होता। या तो तुम जीते हो, या मरते हो। या तो मरे, या जिंदा। तुम ऐसा नहीं होते कि थोड़े-थोड़े जिंदा। या तो तुम जागे, या सोए। थोड़े-थोड़े जागे, थोड़े-थोड़े सोए, ऐसा होता ही नहीं। अगर तुम थोड़े भी जागे हो, तो तुम पूरे जागे हो। जागने के खंड नहीं किए जा सकते। ज्ञान के खंड नहीं किए जा सकते।

यही पांडित्य और बुद्धत्व का फर्क है। पांडित्य के खंड किए जा सकते हैं। तुमने पहली परीक्षा पास कर ली, दूसरी कर ली, तीसरी कर ली, बड़े पंडित होते चले गए। एक शास्त्र जाना, दूसरा जाना, तीसरा जाना, मात्रा बढ़ती चली गई। पांडित्य मात्रा में है, क्वांटिटी में है। बुद्धत्व क्वालिटी में है। मात्रा में नहीं, गुण में। बुद्धत्व होने का एक ढंग है। मात्र जानकारी की संख्या नहीं है, जागने की एक प्रक्रिया।

इसे थोड़ा सोचो। सुबह जब तुम जाग जाते हो, क्या तुम यह कह सकते हो कि अभी मैं थोड़ा-थोड़ा जागा हूं? कौन कहेगा? इतना जानने के लिए भी कि मैं थोड़ा-थोड़ा जागा हूं, पूरा जागना जरूरी है। जागने की मात्राएं नहीं होतीं। रात जब तुम सो जाते हो, क्या तुम कह सकते हो कि मैं थोड़ा-थोड़ा सोया हूं? कौन कहेगा? जब तुम सो गए तो सो गए। कौन कहेगा कि मैं थोड़ा-थोड़ा सोया हूं? अगर तुम कहने को अभी भी मौजूद हो, तो तुम सोए नहीं, तुम जागे हो।

न तो जागना बांटा जा सकता है, न सोना बांटा जा सकता है। न जीवन बांटा जा सकता, न मौत बांटी जा सकती। पांडित्य बांटा जा सकता है। जो बांटा जा सकता है, उसे तुम ज्ञान मत समझना। जो नहीं बांटा जा सकता, जो उतरता है पूरा उतरता है, नहीं उतरता बिल्कुल नहीं उतरता, उसे ही तुम ज्ञान समझना।

मेरे पास लोग आते हैं, उनको अगर मैं कहता हूं कि पहले तुम यह जानने का भाव छोड़ दो। वे कहते हैं कि इसीलिए तो हम आपके पास आए हैं। जो थोड़ा-बहुत जानते हैं, उससे कुछ सार नहीं हुआ; और जानने की इच्छा है। उनको वह जो ख्याल है थोड़ा-बहुत जानने का, वही बाधा बनेगा। वह उन्हें शिष्य न बनने देगा। वे विद्यार्थी बन जाएंगे, शिष्य न बन सकेंगे।

विद्यार्थी वह है जो थोड़ा जानता है, थोड़ा और जानने को उत्सुक है। विद्यार्थी यानी जिज्ञासु। जानकारी की खोज में निकला। शिष्य विद्यार्थी नहीं है, सत्यार्थी है। शिष्य जानकारी की खोज में नहीं निकला है, जानने की कला की खोज में निकला है। शिष्य का ध्यान जो जाना जाना है उस पर नहीं है, जो जानेगा उस पर है। विद्यार्थी आब्जेक्टिव है। बाहर उसकी नजर है। शिष्य सब्जेक्टिव है। भीतर उसकी नजर है। वह यह कह रहा है कि पहले तो मैं जाग जाऊं, फिर जानना तो गौण बात है। जाग गया तो जहां मेरी नजर पड़ेगी, वहीं ज्ञान पैदा हो जाएगा। जहां देखूंगा, वहीं झरने उपलब्ध हो जाएंगे ज्ञान के। पर मेरे भीतर जागना हो जाए।

विद्यार्थी सोया है और संग्रह कर रहा है। सोए लोग ही संग्रह करते हैं, जागों ने संग्रह नहीं किया। न धन का, न ज्ञान का, न यश का, न पद का। सोया आदमी संग्रह करता है। सोया आदमी मात्रा की भाषा में सोचता है।

कौन जीतेगा? बड़ा अजीब उत्तर देते हैं बुद्ध, शिष्य जीतेगा। कोई योद्धा नहीं। और शिष्य के होने की पहली शर्त यह है कि जिसने अपनी हार स्वीकार कर ली हो। जिसने यह कहा हो कि मैं अब तक जान नहीं पाया। चला बहुत, पहुंचा नहीं। सोचा बहुत, समझा नहीं। सुना बहुत, सुन नहीं पाया। देखा बहुत, भ्रांति रही, क्योंकि देखने वाला सोया था। जो हार गया है आकर, जिसने गुरु के चरणों में सिर रख दिया और कहा कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं, जिसने अपने सिर के साथ अपनी जानकारी भी सब गुरु के चरणों पर रख दी, वही सीखने को कुशल हुआ, सीखने में सफल हुआ। सीखने की क्षमता उसे उपलब्ध हुई। जिसने जाना कि मैं नहीं जानता हूं, वही शिष्य है। कठिन है। क्योंकि अहंकार कहता है कि मैं और नहीं जानता! पूरा न जानता होऊं, थोड़ा तो जानता हूं। सब न जान लिया हो, पर बहुत जान लिया है।

बुद्ध के पास एक महापंडित आया, सारिपुत्र। वह बड़ा ज्ञानी था। उसे सारे वेद कंठस्थ थे। उसके खुद पांच हजार शिष्य थे--शिष्य नहीं, विद्यार्थी कहने चाहिए। लेकिन वह समझता था कि शिष्य हैं, क्योंकि वह समझता था मैं ज्ञानी हूं।

जब वह बुद्ध के पास आया और उसने बहुत से सवाल उठाए, तो बुद्ध ने कहा, ये सब सवाल पांडित्य के हैं। ये सवाल शास्त्रों से पैदा हुए हैं। ये तेरे भीतर नहीं पैदा हो रहे हैं, सारिपुत्र! ये सवाल तेरे नहीं हैं, ये सवाल उधार हैं। तूने किताबें पढ़ी हैं। किताबों से सवाल पैदा हो गए हैं। अगर ये किताबें तूने न पढ़ी होतीं, तो ये सवाल पैदा न होते। अगर तूने दूसरी किताबें पढ़ी होतीं, तो दूसरे सवाल पैदा होते। ये सवाल तेरी जिंदगी के भीतर से नहीं आते, ये तेरे अंतस्तल से नहीं उठे, ये अस्तित्वगत नहीं हैं, बौद्धिक हैं।

सारिपुत्र अगर सिर्फ पंडित ही होता, तो नाराज होकर चला गया होता। उसने आंखें झुकायीं, उसने सोचा। उसने देखा कि बुद्ध जो कह रहे हैं उसमें तथ्य कितना है? और तथ्य पाया। उसने सिर उनके चरणों में रख दिया। उसने कहा कि मैं अपने सवाल वापस ले लेता हूं। ठीक कहते हैं आप, ये सवाल मेरे नहीं हैं। अब तक मैं इन्हें अपना मानता रहा। और जब सवाल ही अपना न हो, तो जवाब अपना कैसे मिलेगा? जब सवाल ही अभी अपने अंतरतम से नहीं उठा है, तो जवाब अंतरतम तक कैसे जाएगा?

एक तो जिज्ञासा है जो बुद्धि की खुजलाहट जैसी है, कुतूहल जैसी है। पूछ लिया, चलते-चलते। कोई जीवन दांव पर नहीं लगा है। और एक जिज्ञासा है जिसको हमने मुमुक्षा कहा है। जीवन दांव पर लगा है। यह कोई सवाल ऐसा ही नहीं है, कि चलते-चलते पूछ लिया। इसके उत्तर पर निर्भर करेगा जीवन का सारा ढंग। इसके उत्तर पर निर्भर करेगा कि मैं जीऊं या मरूं? इसके उत्तर पर निर्भर करेगा कि जीवन जीने योग्य है या व्यर्थ है? जहां सब दांव पर लगा है।

सारिपुत्र ने कहा, अब मैं तभी पूछूंगा जब मेरे अंतरतम का प्रश्न आएगा। मुझे शास्त्रों से मुक्त करें, भगवान! बुद्ध ने कहा, तू समझ गया, तू मुक्त हो गया। शास्त्र थोड़े ही तुझे पकड़े हुए हैं, तूने ही पकड़ा था। तू समझ गया, तूने छोड़ दिया। सारिपुत्र को बुद्ध ने शिष्य की तरह स्वीकार कर लिया।

कहते हैं, सारिपुत्र ने फिर कभी सवाल न पूछे, वर्षों तक। और बुद्ध ने एक दिन सारिपुत्र को पूछा कि तू पूछता नहीं। तू जब आया था, बड़े सवाल लेकर आया था। वह सवाल तो तुझसे छीन लिए गए थे। तूने कहा था, अब जब मेरा सवाल उठेगा, तब पूछूंगा। तूने पूछा नहीं। सारिपुत्र ने कहा, अचंभा है। पराए सवाल थे, बहुत थे। उत्तर भी बहुत मिल गए थे, फिर भी उत्तर मिलता नहीं था। क्योंकि अपना सवाल न था। प्राणों की कोई हूक न थी, कोई प्यास न थी। जैसे बिन प्यासे आदमी को पानी पिलाए जाओ। उलटी हो सकती है, तृप्ति थोड़े ही होगी। फिर उनको छोड़ दिया तो बड़ी हैरानी हुई। प्रश्न उठा ही नहीं और उत्तर मिल गया।

जिसने अपने भीतर उतरने की थोड़ी सी भी शुरुआत की, उसके प्रश्न खोते चले जाते हैं। अंतरतम में खड़े होकर, जहां से प्रश्न उठना चाहिए वहीं से जवाब उठ आता है। हर अस्तित्वगत प्रश्न अपना उत्तर अपने भीतर लिए है। प्रश्न तो बीज है। उसी बीज से फूटता है अंकुर, उत्तर प्रगट हो जाते हैं। तुम्हें तुम्हारे जीवन की समस्या मालूम पड़ती है समस्या की तरह, क्योंकि वह समस्या भी तुमने उधार ही बना ली है। किसी और ने तुमसे कह दिया है। और किसी और की मानकर तुम चल भी पड़े हो। किसी और ने तुम्हें समझा दिया है कि तुम बहुत प्यासे हो, पानी को खोजो।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ईश्वर को खोजना है। मैं उनकी तरफ देखता हूं--किसलिए खोजना है? ईश्वर ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? जरूरी खोजना है? निश्चित ही खोजना है? जीवन को दांव पर लगाने की तैयारी है? वे कहते हैं, नहीं, ऐसा कुछ नहीं। अगर मिल जाए! वैसे तो हमें पक्का भी नहीं कि है भी या नहीं। मैं उनसे पूछता हूं, तुम्हें ठीक-ठीक पक्का है कि तुम खोजने ही निकले हो? वे कहते हैं, वह भी कुछ साफ नहीं, धुंधला-धुंधला है। किसलिए खोज रहे हो ईश्वर को? सुन लिया है शब्द। शब्द पकड़ गया मन में। कोई और लोग भी खोज रहे हैं, तुम भी खोजने निकल पड़े हो।

नहीं, ऐसे खोज नहीं होती सत्य की। शिष्य होने से खोज होती है। पहले तो उधार ज्ञान छोड़ देना जरूरी है। उधार ज्ञान छोड़ते ही तुम ऐसे शांत और पवित्र हो जाते हो, क्वांरापन उतर आता है, सारी गंदगी हट जाती है।

"कौन जीतेगा? कौन कुशल पुरुष फूल की भांति सुदर्शित धर्मपथ को चुनेगा?"

"शिष्य इस पृथ्वी और देवताओं सहित इस यमलोक को जीतेगा।"

मृत्यु को भी जीत लेगा। लेकिन जीतने की कला है, जानने की भ्रांति को छोड़ देना। पांडित्य को छोड़ते ही जीवन अपने रंग खोलने शुरू कर देता है। पांडित्य जैसे आंखों से बंधे पत्थर हैं, जिनकी वजह से पलकें खुल नहीं पातीं, बोझिल हो गई हैं। पांडित्य के हटते ही तुम फिर छोटे बच्चे की भांति हो जाते हो।

शिष्य यानी फिर से तुम्हारा बालपन लौटा। जैसे छोटा बच्चा देखता है जगत को, बिना जानकारी के। गुलाब के फूल को छोटा बच्चा भी देखता है, तुम भी देखते हो। तुम जब देखते हो तब तुम्हारे भीतर एक शब्द बनता है--गुलाब का फूल। या एक शब्द बनता है कि--हां, सुंदर है। या तुलना उठती है कि--पहले देखे थे फूल, उतना ही सुंदर है, ज्यादा है, या कम है। बात खतम हो जाती है। थोड़े से शब्दों का भीतर शोरगुल होता है, और उन शब्दों के शोरगुल में जीवित फूल खो जाता है।

एक छोटा बच्चा भी गुलाब के फूल को देखता है। अभी उसे पता ही नहीं कि यह गुलाब है, कि कमल है, कि चमेली, कि जूही। अभी नाम उसे याद नहीं। अभी ज्ञान की उस पर कृपा नहीं हुई। अभी शिक्षकों ने उसे बिगाड़ा नहीं। अभी सौभाग्यशाली है, शिक्षा का जहर उस पर गिरा नहीं। अभी वह सिर्फ देखता है। अभी तुलना भी नहीं उठती। क्योंकि तुलना के लिए भी नाम सीख लेना जरूरी है। अतीत में भी उसने फूल देखे होंगे, उनको फूल भी नहीं कह सकता। रंगों का एक जागता हुआ अनुभव था। रंग भी नहीं कह सकता। शब्द तो उसके पास नहीं हैं। सीधा फूल को देखता है, बीच में कोई दीवाल खड़ी नहीं होती, कोई शब्द जाल नहीं बनता, कोई तुलना नहीं उठती। सीधे फूल से हृदय से हृदय का मिलन होता है। फूल के साथ एक तादात्म्य बनता है। फूल में डूबता है, फूल उसमें डूबता है। छोटा बच्चा एक डुबकी लगा लेता है फूल के अस्तित्व में। फूल अपने सारे सौंदर्य को उसके चारों तरफ बिखरा देता है। अपनी सारी सुगंध लुटा देता है। छोटे बच्चे का जो अनुभव है गुलाब के फूल के पास, वह तुम लाख तरसो, तब तक तुम्हें न हो सकेगा जब तक तुम फिर से बच्चे न हो जाओ।

जीसस ने कहा है, मेरे प्रभु के राज्य के वे ही अधिकारी होंगे जो छोटे बच्चों की भांति हैं। छोटे-छोटे बच्चों की भांति सरल हैं।

शिष्य का यही अर्थ है कि जो फिर से सीखने को तैयार है। जो कहता है, अब तक जो सीखा था, बेकार पाया। अब मैं फिर से द्वार पर खड़ा हूं अपने हृदय की झोली को भरने को। अब कूड़ा-करकट से नहीं भरना है। अब जानकारी से नहीं भरना है। अब होश को मांगने आया हूं।

विद्यार्थी ज्ञान मांगने आता है, शिष्य होश मांगने आता है। विद्यार्थी कहता है, और जानकारी चाहिए। शिष्य कहता है, जानकारी को क्या करेंगे, अभी जानने वाला ही मौजूद नहीं, जानने वाला चाहिए।

"कुशल शिष्य फूल की भांति सुदर्शित धर्मपथ को चुनेगा।"

और जिसने जीवन का थोड़ा सा भी स्वाद लेना शुरू कर दिया, जिसके भीतर होश की किरण पैदा हुई, होश का चिराग जला, अब उसे दिखाई पड़ने लगेगा--कहां कांटे हैं, कहां फूल हैं।

तुम्हें लोग समझाते हैं, बुरा काम मत करो। तुम्हें लोग समझाते हैं, पाप मत करो। तुम्हें लोग समझाते हैं, अनीति मत करो, बेईमानी मत करो, झूठ मत बोलो। मैं तुम्हें नहीं समझाता। मैं तुम्हें समझाता हूं, चिराग को जलाओ। अन्यथा पहचानेगा कौन कि क्या अनीति है, क्या नीति है? कौन जानेगा--कहां कांटे हैं, कहां फूल हैं? तुम अभी मौजूद ही नहीं हो। रास्ता कहां है, भटकाव कहां है, तुम कैसे जानोगे? तुम अगर दूसरों की मानकर चलते भी रहे तो तुम ऐसे ही होओगे, जैसे अंधा अंधों को चलाता रहे। न उन्हें पता है, न उनके आगे जो अंधे खड़े हैं उन्हें पता है। अंधों की एक कतार लगी है। वेद और शास्त्रों के ज्ञाताओं की कतार लगी है। और अंधे एक-दूसरे को पकड़े हुए चले जा रहे हैं।

किस बात को तुम कहते हो नीति? किस बात को तुम कहते हो धर्म? कैसे तुम जानते हो? तुम्हारे पास कसौटी क्या है? तुम कैसे पहचानते हो क्या सोना है क्या पीतल है? दोनों पीले दिखाई पड़ते हैं। हां, दूसरे कहते हैं यह सोना है, तो मान लेते हो। दूसरों की कब तक मानते रहोगे? दूसरों की मान-मानकर ही तो ऐसी गति हुई है, ऐसी दुर्गति हुई है।

धर्म कहता है, दूसरों की नहीं माननी है, अपने भीतर उसको जगाना है, जिसके द्वारा जानना शुरू हो जाता है और मानने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। चिराग जलाओ, ताकि तुम्हें खुद ही दिखाई पड़ने लगे--कहां गलत है, कहां सही है।

मैंने सुना है, दो युवक एक फकीर के पास आए। उनमें से एक बहुत दुखी था। बड़ा बेचैन था। दूसरा ऐसा कुछ खास बेचैन नहीं था, प्रतीत होता था मित्र के साथ चला आया है। पहले ने कहा, हम बड़े परेशान हैं। हमसे बड़े भयंकर पाप हो गए हैं, उनसे छुटकारे का और प्रायश्चित्त का कोई मार्ग बताओ। उस फकीर ने पहले से पूछा कि तू अपने पापों के संबंध में कुछ बोल। तो उसने कहा, ज्यादा मैंने पाप नहीं किए, मगर एक बहुत जघन्य अपराध किया है। और उसका बोझ मेरी छाती पर एक चट्टान की तरह रखा है। दया करो, किसी तरह यह बोझ मेरा उतर जाए। मैं पछता रहा हूं, भूल हो गई। लेकिन अब क्या करूं, जो हो गया हो गया। वह रोने लगा, आंख से उसकी आंसू गिरने लगे।

उस फकीर ने कहा दूसरे से कि तेरा क्या पाप है? दूसरे ने मुस्कुराते हुए कहा, ऐसा कुछ खास नहीं। कोई बड़े पाप मैंने नहीं किए हैं। ऐसे ही छोटे-छोटे, जिनका कोई हिसाब भी नहीं, और कोई उनसे मैं दबा भी नहीं जा रहा हूं। मित्र आता था, इसलिए मैं भी साथ चला आया। और अगर इसके बड़ों से छुटकारा मिल सकता है, तो मेरे छोटे-छोटे पापों का भी आशीर्वाद दो कि छुटकारा हो जाए।

उस फकीर ने कहा, ऐसा करो, तुम दोनों बाहर जाओ। और उस पहले युवक से कहा कि तू अपने पाप की दृष्टि से उतने ही वजन का एक पत्थर उठा ला। और दूसरे से कहा कि तू भी, तूने जो छोटे-छोटे पाप किए हैं कंकड़-पत्थर उसी हिसाब की संख्या से भर ला। पहला तो एक बड़ी चट्टान उठाकर लाया। पसीने से तरबतर हो गया, उसे लाना भी मुश्किल था, हांफने लगा। दूसरा झोली भर लाया, छोटे-छोटे कंकड़-पत्थर बीनकर।

जब वे अंदर आ गए, उस फकीर ने कहा, अब तुम एक काम करो। जिस जगह से तुम यह बड़ा पत्थर उठा लाए हो, वहीं रख आओ। और उस दूसरे से भी कहा कि तू ये जो छोटे-छोटे कंकड़-पत्थर बीन लाया, जहां-जहां से उठाए हैं वहीं-वहीं वापस रख आ।

उसने कहा, यह तो झंझट हो गई। जिसने बड़ा पाप किया है यह तो खैर रख आएगा, मैं कहां रखने जाऊंगा? अब तो याद भी करना मुश्किल है कि कौन सा पत्थर मैंने कहां से उठाया था। सैकड़ों कंकड़-पत्थर बीन लाया हूं।

उस फकीर ने कहा, पाप बड़ा भी हो, लेकिन अगर उसकी पीड़ा हो, तो प्रायश्चित्त का उपाय है। पाप छोटा भी हो और उसकी पीड़ा न हो, तो प्रायश्चित्त का उपाय नहीं है। और जो तुम्हारे पत्थर के संबंध में तुम्हारी स्थिति है, वही तुम्हारे पापों के संबंध में भी स्थिति है। जिसका दीया जला हुआ है, वह न तो बड़े करता है, न छोटे करता है। जिनके दीए अभी जले हुए नहीं हैं, वे बड़े करने से भला डरते हों, छोटे-छोटे तो मजे से करते रहते हैं। छोटे-छोटे का तो पता ही कहां चलता है!

तुमने किसी आदमी से जरा सा झूठ बोल दिया, कई बार तो तुम ऐसे झूठ बोलते हो कि तुम्हें पता ही नहीं चलता कि तुमने झूठ भी बोला। कई बार तो तुम्हें फिर जीवन में कभी याद भी नहीं आता उसका। लेकिन वह सब इकट्ठा होता चला जाता है। छोटे-छोटे पत्थर इकट्ठे होकर भी बड़ी-बड़ी चट्टानों से ज्यादा बोझिल हो सकते हैं।

असली सवाल छोटे और बड़े का नहीं है। और जिन्होंने जागकर देखा है, उनका तो कहना यह है कि पाप छोटे-बड़े होते ही नहीं। पाप यानी पाप। छोटा-बड़ा कैसे? एक आदमी ने दो पैसे की चोरी की। क्या छोटा पाप है? और एक आदमी ने दो लाख की चोरी की। क्या बड़ा पाप है?

थोड़ा सोचो। चोरी चोरी है। दो पैसे की भी उतनी ही चोरी है, जितनी दो लाख की। चोर होना बराबर है। दो लाख से ज्यादा का नहीं होता, दो पैसे से कम का नहीं होता। चोर होने की भावदशा बस काफी है। इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। दो लाख और दो पैसे का भेद बाजार में है। लेकिन दो लाख और दो पैसे की चोरी का भेद धर्म में नहीं हो सकता। चोरी यानी चोरी। लेकिन यह तो उसे दिखाई पड़ेगा जिसका भीतर का दीया जल रहा है। फिर पाप पाप है। बड़ा-छोटा नहीं है। पुण्य पुण्य है। छोटा-बड़ा नहीं है।

लेकिन जब तक तुम दूसरों के पीछे चल रहे हो, जब तक तुम जानकारी को ही जीवन मानकर चल रहे हो, और पांडित्य से तुम्हारे जीवन को मार्गदर्शन मिलता है, तब तक तुम ऐसे ही भटकते रहोगे।

शिष्य वही है जिसने अपने को जगाने की तैयारी शुरू की। शिष्य वही है जिसके लिए पांडित्य व्यर्थ दिखाई पड़ गया और अब जो बुद्धत्व को खोजने निकला है। और जैसे ही तुम्हारे जीवन में यह क्रांति घटित होती है, शिष्यत्व की संभावना बढ़ती है, बड़े अंतर पड़ने शुरू हो जाते हैं। तब तुम और ही ढंग से सुनते हो। तब तुम और ही ढंग से उठते हो। तब तुम और ही ढंग से सोचते हो। तब जीवन की सारी प्रक्रियाओं का एक ही केंद्र हो जाता है कि कैसे जागूं? कैसे यह नींद टूटे? कैसे यह कटघरा पुनरुक्ति का मिटे और मैं बाहर आ जाऊं? तब तुम्हारा सारा उपक्रम एक ही दिशा में समर्पित हो जाता है।

शिष्य का जीवन एक समर्पित जीवन है। उसके जीवन में एक ही अभीप्सा है, सब द्वारों से वह एक ही उपलब्धि के लिए चेष्टा करता है, द्वार खटखटाता है कि मैं कैसे जाग जाऊं? और जिसके जीवन में ऐसी अभीप्सा पैदा हो जाती है कि मैं कैसे जाग जाऊं, उसे कौन रोक सकेगा जागने से? उसे कोई शक्ति रोक नहीं सकती। वह जाग ही जाएगा। आज चाहे जागने की आकांक्षा बड़ी मद्धिम मालूम पड़ती हो, लेकिन बूंद-बूंद गिरकर जैसे चट्टान टूट जाती है, ऐसी बूंद-बूंद आकांक्षा जागने की तंद्रा को तोड़ देती है। तंद्रा कितनी ही प्राचीन हो और कितनी ही मजबूत हो, इससे कोई भेद नहीं पड़ता।

"इस शरीर को फेन के समान जान; इसकी मरीचिका के समान प्रकृति को पहचान; मार के पुष्प-जाल को काट; यमराज की दृष्टि से बचकर आगे बढ़।"

तुम जहां बैठे हो वहां कुछ पाया तो नहीं, फिर किसकी प्रतीक्षा कर रहे हो? तुम जहां बैठे हो वहां कुछ भी तो अनुभव नहीं हुआ, अब तुम राह क्या देख रहे हो?

न कोई वादा न कोई यकीं न कोई उम्मीद

मगर हमें तो तेरा इंतजार करना था

न तो किसी ने कोई वादा किया है वहां मिलने का, न तुम्हें यकीन है कि कोई मिलने वाला है, न तुम्हें कोई उम्मीद है, क्योंकि जीवनभर वहीं बैठ-बैठकर तुम थक गए हो--नाउम्मीद हो गए हो--लेकिन फिर भी इंतजार किए जा रहे हो। कितनी बार तुमने क्रोध किया है, कितनी बार लोभ किया है, कितनी बार मोह किया है, कितनी बार राग किया है, पाया कुछ? गांठ गठियाया कुछ? मुट्ठी बांधे बैठे हो, मुट्ठी के भीतर कोई संपदा इकट्ठी हुई?

न कोई वादा न कोई यकीं न कोई उम्मीद

मगर हमें तो तेरा इंतजार करना था

कैसी जिद पकड़कर बैठ गए हो इंतजार करने की। किस का इंतजार कर रहे हो? इस राह से कोई गुजरता ही नहीं। तुम जिस राह पर बैठे हो, वह किसी की भी रहगुजर नहीं।

बुद्ध कहते हैं, "इस जीवन की मृग-मरीचिका के समान प्रकृति को पहचान।"

प्यासे को मरुस्थल में भी पानी दिखाई पड़ जाता है। वह मृग-मरीचिका है। है नहीं वहां कहीं पानी। प्यास की कल्पना से ही दिखाई पड़ जाता है। प्यास बहुत सघन हो, तो जहां नहीं है वहां भी तुम आरोपित कर लेते हो।

तुमने भी इसे अनुभव किया होगा। तुम्हारे भीतर जो चीज बहुत ज्यादा सघन होकर पीड़ा दे रही है, जिसे तुम खोज रहे हो, वह दिखाई पड़ने लगती है। कभी तुम किसी की राह देख रहे हो घर के अंदर बैठे, कोई प्रियजन आ रहा है, कोई मित्र आ रहा है, प्रेयसी या प्रेमी आ रहा है, पत्ता भी खड़कता है तो ऐसा लगता है कि उसके पैर की आवाज सुनाई पड़ गई। फिर उठकर देखते हो। पोस्टमैन द्वार पर आकर खड़ा हो जाता है, तो समझते हो कि प्रेमी आ गया। प्रसन्न होकर, धड़कती छाती से द्वार खोलते हो। कोई नहीं भी आता, न पत्ता खड़कता है, न पोस्टमैन आता है, न द्वार से कोई निकलता है, तो तुम कल्पना करने लगते हो कि शायद आवाज सुनी, शायद किसी ने द्वार खटखटाया, या कोई पगध्वनि सुनाई पड़ी सीढ़ियों पर चढ़ती हुई। भागकर पहुंचते हो, कोई भी नहीं है।

न कोई वादा न कोई यकीं न कोई उम्मीद

मगर तुम कल्पना किए चले जाते हो। मृग-मरीचिका का अर्थ है, जहां नहीं है वहां देख लेना। और जो व्यक्ति वहां देख रहा हो जहां नहीं है, वह वहां देखने से वंचित रह जाएगा जहां है। तो मृग-मरीचिका जीवन के आत्यंतिक सत्य को देखने में बाधा बन जाती है। तुम दौड़ते रहते हो उस तरफ जहां नहीं है। और तुम उस तरफ देखते ही नहीं लौटकर जहां है।

जिसे तुम खोज रहे हो, वह तुम्हारे भीतर छुपा है। जिसे तुम पाने निकले हो, उसे तुमने कभी खोया ही नहीं। उसे तुम लेकर ही आए थे। परमात्मा किसी को दरिद्र भेजता ही नहीं। सम्राट के अलावा वह किसी को कुछ और बनाता ही नहीं। फिर भिखमंगे तुम बन जाते हो, वह तुम्हारी ही कुशलता है। वह तुम्हारी ही कला है। तुम्हारी मौज। परमात्मा तुम्हें इतनी स्वतंत्रता देता है कि तुम अगर भिखमंगे भी होना चाहो तो उसमें भी बाधा नहीं डालता।

"इस शरीर को फेन के समान जान।"

शिष्य को कह रहे हैं यह बात बुद्ध, विद्यार्थी को नहीं। विद्यार्थी से बुद्धों का कोई मिलना ही नहीं होता। केवल शिष्यों से। जो वस्तुतः आतुर हैं, और जिनका जीवन एक लपट बन गई है--एक खोज, और जो सब कुर्बान करने को राजी हैं। जिन्हें जीवन में ऐसी कोई बात दिखाई ही नहीं पड़ती जिसके लिए रुके रहने की कोई जरूरत हो। जो अज्ञात की तरफ जाने को तत्पर हैं। जो ज्ञान को छोड़कर अज्ञान को स्वीकार किए हैं, केवल वे ही ज्ञात से मुक्त होते हैं और अज्ञात में उनका प्रवेश होता है। उनसे ही बुद्ध कह रहे हैं--

"इस शरीर को फेन के समान जान।"

समुद्र के तट पर तुमने फेन को इकट्ठे होते देखा है। कितना सुंदर मालूम होता है! दूर से अगर देखा हो तो बड़ा आकर्षक लगता है। कभी सूर्य की किरणें उससे गुजरती हों तो इंद्रधनुष फैल जाते हैं फेन में। पास आओ, पानी के बबूले हैं। वह शुभ्रता, वह चांद जैसी सफेदी, या चमेली के फूल जैसी जो बाढ़ आ गई थी, वह कुछ भी नहीं मालूम पड़ती। फिर हाथ में, मुट्ठी में फेन को लेकर देखा है? बबूले भी खो जाते हैं।

जिंदगी आदमी की बस ऐसी ही है। फेन की भांति। दूर से देखोगे, बड़ी सुंदर; पास आओगे, सब खो जाता है। दूर-दूर रहोगे, बड़े सुंदर इंद्रधनुष दिखाई पड़ते रहेंगे; पास आओगे, हाथ में कुछ भी नहीं आता।

सुनते हैं चमन को माली ने फूलों का कफन पहनाया है

दूर से फूल दिखाई पड़ते हैं, पास आओ कफन हो जाता है। जिसको तुम जिंदगी कहते हो, दूर से जिंदगी मालूम होती है, पास आओ मौत हो जाती है।

सुनते हैं चमन को माली ने फूलों का कफन पहनाया है

चारों तरफ जहां-जहां तुम्हें फूल दिखाई पड़ें, जरा गौर से पास जाना, हर फूल में छिपा हुआ कांटा तुम पाओगे। हर फूल चुभेगा। हां, दूर से ही देखते रहो तो भ्रांति बनी रहती है। पास जाने से भ्रांतियां टूट जाती हैं। दूर के ढोल सुहावने मालूम होते हैं। दूर से सभी चीजें सुंदर मालूम होती हैं।

तुमने कभी ख्याल किया, दिन में चीजें उतनी सुंदर नहीं मालूम पड़तीं जितनी रात की चांदनी में मालूम पड़ती हैं। चांदनी एक तिलिस्म फैला देती है, क्योंकि चांदनी एक धुंधलका दे देती है। वैसे ही आंखें नहीं हैं, वैसे ही अंधापन है, चांदनी और आंखों को धुएं से भर देती है। जो चीजें दिन में साधारण दिखाई पड़ती हैं, वे भी रात में सुंदर होकर दिखाई पड़ने लगती हैं। जितना तुम्हारी आंखों में धुंध होता है, उतना ही जीवन का फेन बहुमूल्य मालूम होने लगता है। हीरे-जवाहरात दिखाई पड़ने लगते हैं।

लो आओ मैं बताऊं तिलिस्मे-जहां का राज

जो कुछ है सब ख्याल की मुट्ठी में बंद है

जितने दूर रहो, उतना ही वस्तुओं से संपर्क नहीं होता, सिर्फ ख्यालों से संपर्क होता है। जितने पास आओ, जीवन का यथार्थ दिखाई पड़ता है, ख्याल टूटने लगते हैं। और जिसने भी जीवन का यथार्थ देखा, वह घबड़ा गया। वह भयभीत हो गया। क्योंकि वहां जीवन के घर में छिपी मौत पाई, फूल में छिपे कांटे पाए। सुंदर सपनों के पीछे सिवाय पत्थरों के कुछ भी नहीं था। पानी की झाग थी, कि मरुस्थल में देखे गए जल के झरने थे। दूर से बड़े मनमोहक थे, पास आकर थे ही नहीं।

और यह सभी को अनुभव होता है, लेकिन फिर भी तुम न मालूम किसका इंतजार कर रहे हो? न किसी ने वादा किया है, न तुम्हें भरोसा है कि कोई आएगा, उम्मीद भी नहीं है--मगर शायद तुम सोचते हो, और करें भी क्या? अगर इंतजार न करें, तो और करें भी क्या?

बुद्धपुरुष तुम्हें बुलाते हैं कि तुम गलत राह पर बैठे हो और जिसकी तुम प्रतीक्षा करते हो वह वहां से गुजरता ही नहीं। और भी राहें हैं। प्रतीक्षा करने के लिए और भी प्रतीक्षालय हैं। अगर प्रतीक्षा ही करनी है तो थोड़ा भीतर की तरफ चलो। जितने तुम बाहर गए हो उतने ही तुम ने झाग और फेन के बुलबुले पाए हैं। थोड़े भीतर की तरफ आओ और तुम पाओगे उतना ही यथार्थ प्रगट होने लगा। जितने तुम भीतर आओगे उतना सत्य, जितने तुम बाहर जाओगे उतना असत्य। जिस दिन तुम बिल्कुल अपने केंद्र पर खड़े हो जाओगे, उस दिन सत्य अपने पूरे राज खोल देता है। उस दिन सारे पर्दे, सारे घूंघट उठ जाते हैं।

"इस शरीर को फेन के समान जान; और इसकी मरीचिका के समान प्रकृति को पहचान; मार के पुष्पजाल को काट।"

बुद्ध कहते हैं, वासना ने बड़े फूलों का जाल फैलाया है।

"मार के पुष्पजाल को काट।"

सुनते हैं चमन को माली ने फूलों का कफन पहनाया है

मार का पुष्पजाल। उन फूलों के पीछे कुछ भी नहीं है। धोखे की टट्टी है। पीछे कुछ भी नहीं है। सारा सौंदर्य पर्दे में है। खाली घूंघट है, भीतर कोई चेहरा नहीं है। लेकिन घूंघट को जब तक तुम खोलोगे न और भीतर की रिक्तता का पता न चलेगा, तब तक तुम जागोगे न। कई बार तुमने घूंघट भी खोल लिए हैं। एक घूंघट के भीतर तुमने कोई न पाया, तो भी तुम्हें समझ नहीं आती। तब तुम दूसरा घूंघट खोलने में लग जाते हो। एक मुट्ठी झाग झाग सिद्ध हो गई तो मन कहे चला जाता है, सारी ही झाग थोड़ी झाग होगी। एक घूंघट व्यर्थ हुआ, दूसरे घूंघट में खोज लेंगे। ऐसा जन्मों-जन्मों से घूंघट उठाने का क्रम चल रहा है। किसी घूंघट में कभी किसी को नहीं पाया। सब घूंघट खाली थे।

तुमने कभी किसी में किसी को पाया? पति में कुछ पाया? पत्नी में कुछ पाया? मित्र में कुछ पाया? सगे-साथी में कुछ पाया? या सिर्फ घूंघट था। नहीं मिलता है, कोई नहीं मिलता है वहां; लेकिन मन की आशा कहती है, यहां नहीं मिला तो कहीं और मिल जाएगा। इस झरने में पानी सिद्ध नहीं हुआ, फिर दूर और झरना दिखाई पड़ने लगता है। तुम कब जागोगे इस सत्य से कि झरने तुम कल्पित करते हो, कहीं कोई नहीं है! तुम्हारे अतिरिक्त सब अयथार्थ है। तुम्हारे अतिरिक्त सब माया है।

"यमराज की दृष्टि से बचकर आगे बढ़ो।"

अगर जीवन को सचमुच पाना है तो मौत से... जहां-जहां मौत हो वहां-वहां जीवन नहीं है, इसको तुम समझ लो। जहां-जहां परिवर्तन हो, वहां शाश्वत नहीं है। और जहां-जहां क्षणभंगुर हो वहां सनातन नहीं है। और

जहां-जहां चीजें बदलती हों, वहां समय को मत गंवाना। उसको खोजो जो कभी नहीं बदलता है। उस न बदलने को खोज लेने की कला का नाम धर्म है। एस धम्मो सनंतनो।

"विषयरूपी फूलों को चुनने वाले, मोहित मन वाले पुरुष को मृत्यु उसी तरह उठा ले जाती है, जिस तरह सोए हुए गांव को बढ़ी हुई बाढ़।"

जैसे सोए हुए गांव में अचानक नदी में बाढ़ आ जाए और लोग सोए-सोए ही बह जाते हैं, ऐसे ही विषयरूपी फूलों को चुनने वाले, मोहित मन वाले पुरुष को मृत्यु उठा ले जाती है। सोए ही सोए बाढ़ आ जाती है और जिंदगी विदा हो जाती है। तुम सपने ही देखते रहते हो और बाढ़ आ जाती है। सारी कामवासना स्वप्न देखने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

ये ऐश के बंदे सोते रहे फिर जागे भी तो क्या जागे

सूरज का उभरना याद रहा और दिन का ढलना भूल गए

एक तो जागते ही नहीं, सोए ही रहकर बिता देते हैं। और अगर कभी कोई सोचता भी है कि जाग गया, तो सोचता ही है कि जाग गया। वह भी जागना जैसे सपने में ही जागना है।

सूरज का उभरना याद रहा और दिन का ढलना भूल गए

तो लोग अपने जन्मदिन को याद रखते हैं। मृत्युदिन की कौन चर्चा करता है? लोग जीवन पर नजर रखते हैं। मौत! मौत की बात ही करनी बेहूदी मालूम पड़ती है। अगर किसी से पूछो कि कब मरोगे, तो वह नाराज हो जाता है। मरोगे कि नहीं? तो वह फिर दुबारा तुम्हें कभी मिलेगा ही नहीं। वह तुम्हें दुश्मन समझ लेगा। पूछा कुछ गलत न था। जो होने ही वाला था वही पूछा था। लेकिन मौत की लोग बात भी नहीं करना चाहते। बात से भी भय लगता है। फिर भी मौत तो है। उस तथ्य को इनकार न कर सकोगे। किसी भांति उस तथ्य को स्वीकार करो तो शायद इस जीवन से जागने की क्षमता आ जाए।

जिसने भी मृत्यु को स्वीकार किया वह देखेगा, मृत्यु कभी आती है ऐसा थोड़े ही, रोज हम मर रहे हैं। अभी आती है। अभी आ रही है, अभी घट रही है। ऐसा थोड़े ही कि कभी सत्तर साल के बाद घटेगी। रोज-रोज घटती है, सत्तर साल में पूरी हो जाती है। जन्म के साथ ही मौत का सिलसिला शुरू होता है, मरने के साथ पूरा होता है। लंबी प्रक्रिया है। मृत्यु कोई घटना नहीं है, प्रक्रिया है। पूरे जीवन पर फैली है। जैसे झील पर लहरें फैली हों, ऐसे जीवन पर मौत फैली है। अगर तुम मौत को छिपाते हो, ढांकते हो, बचते हो, तो तुम जीवन के सत्य को न देख पाओगे। जिसे तुम जीवन कहते हो इस जीवन का सत्य तो मृत्यु है।

सूरज का उभरना याद रहा और दिन का ढलना भूल गए

सूरज उग चुका है, ढलने में ज्यादा देर न लगेगी। जो उग चुका, वह ढल ही चुका। जो उग गया है, वह ढलने के मार्ग पर है। सुबह का सूरज सांझ का सूरज बनने की चेष्टा में संलग्न है। सांझ दूर नहीं है, अगर सुबह हो गई। जब सुबह ही हो गई, तो सांझ कितनी दूर हो सकती है! जिसको तुम भर जवानी कहते हो, वह केवल आधे दिन का पूरा हो जाना है--आधी सांझ का आ जाना है। जवानी आधी मौत है। लेकिन कौन याद रखता है? जो याद रख सके, वही शिष्य है।

मौत ही इंसान की दुश्मन नहीं

जिंदगी भी जान लेकर जाएगी

मौत ही इंसान की दुश्मन नहीं, जिंदगी भी जान लेकर जाएगी--मौत को दुश्मन मत समझना। जिसे तुम जिंदगी कहते हो वह मौत ही है, वह भी जान लेकर जाएगी।

"फूलों को चुनने वाले, मोहित मन वाले पुरुष को मृत्यु उसी तरह उठा ले जाती है, जिस तरह सोए हुए गांव को बढ़ी हुई बाढ़।"

तू हविश में दुनिया की जिंदगी मिटा बैठा

भूल हो गई गाफिल जिंदगी ही दुनिया थी

तू हविश में दुनिया की जिंदगी मिटा बैठा--दुनिया को पाने की चेष्टा में वह जो जीवन था उसे तूने मिटा दिया। और दुनिया को पाने की चेष्टा को ही तूने जिंदगी समझी। वह जिंदगी न थी। भूल हो गई गाफिल--सोए हुए आदमी, भूल हो गई। जिंदगी ही दुनिया थी।

इसे थोड़ा समझ लो। जिसे तुम दुनिया कहते हो, तुम्हारे बाहर जो फैलाव है, उसे जिंदगी मत समझ लेना। अगर उस बाहर की दुनिया को ही इकट्ठा करने में लगे रहे, तो असली जिंदगी गंवा दोगे। पीछे पछताओगे। समय बीत जाएगा और रोओगे। फिर शायद कुछ कर भी न सकोगे। अभी कुछ किया जा सकता है। मरते क्षण में शायद अधिकतम लोगों को यह समझ आती है--

तू हविश में दुनिया की जिंदगी गंवा बैठा

मरते वक्त अधिक लोगों को यह ख्याल आना शुरू हो जाता है--

भूल हो गई गाफिल जिंदगी ही दुनिया थी

लेकिन तब समय नहीं बचता। मरते-मरते दिखाई पड़ना शुरू होता है कि महल जो बनाए, धन जो इकट्ठा किया, साम्राज्य जो फैलाया--

भूल हो गई गाफिल जिंदगी ही दुनिया थी

भीतर की जिंदगी को जान लेते तो दुनिया को पा लेते। बाहर की दुनिया को पाने में लग गए, भीतर की जिंदगी गंवा दी। बाहर और भीतर में उतना ही फर्क है, जितना सत्य में और स्वप्न में। बाहर है स्वप्न का जाल, भीतर है साक्षी का निवास। जो दिखाई पड़ता है उस पर ध्यान मत दो, जो देखता है उस पर ध्यान दो। जो भोगा जाता है उस पर ध्यान मत दो, जो भोगता है उस पर ध्यान दो। आंख की फिकर मत करो, आंख के पीछे जो खड़ा देखता है उसकी फिकर करो। कान की फिकर मत करो, कान के पीछे खड़ा जो सुनता है उसकी फिकर करो। न जन्म की चिंता करो न मृत्यु की; चिंता करो उसकी जो जन्म में आता है और मृत्यु में जाता है। जो जन्म के भी पहले है और मृत्यु के भी बाद है। मरते क्षण में यह याद भी आए तो फिर क्या करोगे? जिनको पहले याद आ जाती है वे कुछ कर लेते हैं।

हिचकियों पर हो रहा है जिंदगी का राग खत्म

झटके देकर तार तोड़े जा रहे हैं

मरते क्षण में तो फिर ऐसा ही लगेगा कि जिसको जिंदगी समझी--

हिचकियों पर हो रहा है जिंदगी का राग खत्म

वे सारे स्वप्न, वे सारे गीत, वह सारा संगीत, हिचकियों में बदल जाता है। हिचकियां ही हाथ में रह जाती हैं।

हिचकियों पर हो रहा है जिंदगी का राग खत्म

झटके देकर तार तोड़े जा रहे हैं

इसके पहले कि सब कुछ हिचकियों में बदल जाए, और इसके पहले कि तुम्हारा साज तोड़ा जाए, भीतर के गीत को गा लो। इसके पहले कि मौत शरीर को छीने, तुम उसे जान लो जिसे मौत छीन न सकेगी। इसके

पहले कि बाहर का जगत खो जाए, तुम भीतर के जगत में पैर जमा लो। अन्यथा तुम सोए हुए गांव की तरह हो, बढ़ी हुई नदी की बाढ़ तुम्हें सोया-सोया बहा ले जाएगी।

"जैसे भ्रमर फूल के वर्ण और गंध को हानि पहुंचाए बिना रस को लेकर चल देता है, वैसे ही मुनि गांव में भिक्षाटन करे।"

जीवन के गांव की बात है। बुद्ध कह रहे हैं, जैसे भ्रमर फूल के वर्ण और गंध को हानि पहुंचाए बिना रस को लेकर चल देता है, ऐसे ही तुम इस जिंदगी में रहो। जीवन जो रस दे सके, ले लो। मगर रस केवल वे ही ले पाते हैं जो जाग्रत हैं। शेष तो उन भौंरों की तरह हैं, जो रस लेने में इस तरह डूब जाते हैं कि उड़ना ही भूल जाते हैं। सांझ जब कमल की पखुड़ियां बंद होने लगती हैं तब वे उसी में बंद हो जाते हैं। उनके लिए कमल भी कारागृह हो जाते हैं।

जैसे भ्रमर फूल के वर्ण और गंध को बिना हानि पहुंचाए रस लेकर चुपचाप चल देता है, ऐसे जिंदगी को बिना कोई हानि पहुंचाए--यही अहिंसा का सूत्र है। अहिंसा का सूत्र इतना ही है कि रस लेने के तुम हकदार हो, लेकिन किसी को हानि पहुंचाने के नहीं। फूल को तोड़कर भी भोगा जा सकता है। वह भी कोई भोगना हुआ! भौंरा आता है फूल पर चुपचाप, गुनगुनाता है गीत, रिझा लेता है फूल को, रस ले लेता है, उड़ जाता है। तोड़ता नहीं, मिटाता नहीं। भौंरे की तरह मुक्त, भ्रमर की तरह मुक्त, बुद्ध कहते हैं, जीवन के गांव में तुम जीओ जरूर, लेकिन आबद्ध मत हो जाना, बंद मत हो जाना। हमारी हालत तो बड़ी उलटी है, इससे ठीक उलटी। बुद्ध कहते हैं, दुनिया में रहना, लेकिन दुनिया के मत हो जाना। बुद्ध कहते हैं, दुनिया में रहना, लेकिन दुनिया तुममें न रहे। हमारी हालत इससे ठीक उलटी है।

बाद मरने के भी दिल लाखों तरह के गम में है

बाद मरने के भी दिल लाखों तरह के गम में है

हम नहीं दुनिया में लेकिन एक दुनिया हम में है

मर भी जाएं हम तो भी गम नहीं मरते। कब्र में भी तुम पड़े रहोगे--

हम नहीं दुनिया में लेकिन एक दुनिया हम में है

तब भी तुम सपने देखोगे। तब भी तुम उसी दुनिया के सपने देखोगे जिससे तुमने कुछ कभी पाया नहीं। तुम्हारी आंखें फिर भी उसी अंधेरे में खोई रहेंगी, जहां कभी रोशनी की किरण न मिली।

तो एक तो है ढंग सांसारिक व्यक्ति का, वह मर भी जाए, तो भी दुनिया उसके भीतर से नहीं हटती। और एक है संन्यासी का ढंग, वह जीता भी है, तो भी दुनिया उसके भीतर नहीं होती।

यह जीवन के विराट नगर के संबंध में भी सही है, और यही बुद्ध ने अपने भिक्षुओं के लिए कहा कि गांव-गांव जब तुम भीख भी मांगने जाओ--भिक्षाटन भी करो--तो चुपचाप मांग लेना, ऐसे ही जैसे भौंरा फूलों से मांग लेता है, और विदा हो जाना। ले लेना, जो मिलता हो। धन्यवाद दे देना, जहां से मिले। अनुग्रहपूर्वक स्वीकार कर लेना। न मिले, तो दुखी मत होना। क्योंकि मिलना चाहिए, ऐसी कोई शर्त कहां? मिल जाए, धन्यभाग! न मिले, संतोष! और जो न मिलने में संतुष्ट है, उसे मिल ही जाता है। लेकिन हमारी स्थिति ऐसी है कि मिल जाने पर भी संतोष नहीं है। तो मिलकर भी नहीं मिल पाता। हम दरिद्र के दरिद्र ही रह जाते हैं।

जीवन से बहुत कुछ पाया जा सकता है। सपने से भी सीखा जा सकता है। और मृग-मरीचिकाएं भी बुद्धत्व का आधार बन जाती हैं। भ्रम से भी जागने की कला उपलब्ध हो जाती है।

"जैसे भ्रमर फूल के वर्ण और गंध को हानि पहुंचाए बिना रस को लेकर चल देता है, वैसे ही मुनि गांव में भिक्षाटन करे।"

न तो संसार का सवाल है। न संसार को छोड़ने का सवाल है। क्योंकि जो तुम्हारा है ही नहीं उसे तुम छोड़ोगे कैसे? इतनाभर जानने की बात है कि हम यहां मेहमान से ज्यादा नहीं। जब तुम किसी के घर मेहमान होते हो, जाते वक्त तुम ऐसा थोड़े ही कहते हो कि अब सारा घर तुम्हारे लिए छोड़े जाते हैं, त्याग किए जाते हैं। मेहमान का यहां कुछ है ही नहीं। जितनी देर घर में ठहरने का सौभाग्य मिल गया, धन्यवाद! अपना कुछ है नहीं, छोड़ेंगे क्या?

इसलिए त्यागी वही है जिसने यह जान लिया कि हमारा कुछ भी नहीं है। वह नहीं, जिसने छोड़ा। क्योंकि जिसने छोड़ा, उसे तो अभी भी ख्याल है कि अपना था, छोड़ा। अपना हो तो ही छोड़ा जा सकता है। अपना हो ही न, तो छोड़ना कैसा?

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, छोड़ने की भ्रांति में मत पड़ना, क्योंकि वह पकड़ने की ही भ्रांति का हिस्सा है। तुम तो पकड़ने की भ्रांति को ही समझ लेना। अपना कुछ भी नहीं। अभी नहीं थे तुम, अभी हो, अभी फिर नहीं हो जाओगे। घड़ीभर का सपना है। आंख झपक गई, एक सपना देखा। आंख खुल गई, सपना खो गया। इस संसार को भीतर घर मत बनाने देना। तुम संसार में रहना, लेकिन संसार तुम में न रह पाए। गुजरना पानी से, लेकिन पैर भीगें नहीं। जीना, लेकिन भौंरे की तरह--किसी को हानि न पहुंचे।

"जैसे भ्रमर फूल के वर्ण और गंध को हानि पहुंचाए बिना रस को लेकर चल देता है।"

क्या रस है? किस रस की बात कर रहे हैं बुद्ध? समझा दूं, क्योंकि डर है कि तुम कुछ गलत न समझ लो। बुद्ध किस रस की बात कर रहे हैं? किस भौंरे की बात कर रहे हैं? तुम जिन्हें सुख कहते हो उनकी बात नहीं कर रहे हैं। बुद्ध तो इस जीवन का एक ही रस जानते हैं, वह है बुद्धत्व। वह है इस जीवन से जागने की कला सीख कर चल देना। वही रस है। क्योंकि जिसने वह जान लिया उसके लिए महारस के द्वार खुल गए।

तो जीवन के हर फूल से और जीवन की हर घटना से--जन्म हो कि मृत्यु--और जीवन की हर प्रक्रिया से तुम एक ही रस को खोजते रहना और चुनते रहनाः हर अवस्था तुम्हें जगाने का कारण बन जाए, निमित्त बन जाए। घर हो कि गृहस्थी, बाजार हो कि दुकान, कोई भी चीज तुम्हें सुलाने का बहाना न बने, जगाने का बहाना बन जाए, तो तुमने रस ले लिया। मरने के पहले अगर तुमने इतना जान लिया कि तुम अमृतपुत्र हो, तो तुमने रस ले लिया। मौत के पहले अगर तुमने जीवन--असली जीवन को, महाजीवन को--जान लिया, तो तुमने रस ले लिया। तो तुम यूं ही न भटके। तो तुमने ऐसे ही गर्द-गुबार न खाई। तो रास्ते पर तुम चले ही नहीं, पहुंचे। पहुंचे भी।

तब, तब तुम अचानक हैरान होओगे, चकित होओगे, कि जिसे तुम खोजते फिरते थे वह तुम्हारे भीतर था। वह परमात्मा का राज्य तुम्हारे हृदय के ही राज्य का दूसरा नाम है। मोक्ष तुम्हारे भीतर छिपी स्वतंत्रता का ही नाम है। और क्या है स्वतंत्रता? तुम दुनिया में रहो, दुनिया तुममें न हो। वह निर्वाण तुम्हारे अहंकार के बुझ जाने का ही नाम है। जब तुम्हारे अहंकार का टिमटिमाता दीया बुझ जाता है, तो ऐसा नहीं कि अंधकार हो जाता है। उस टिमटिमाते दीए के बुझते ही महासूर्यों का प्रकाश तुम्हें उपलब्ध हो जाता है।

रवींद्रनाथ ने लिखा है कि जब वे गीतांजलि लिख रहे थे, तो पद्मा नदी पर एक बजरे में निवास करते थे। रात गीत की धुन में खोए--कोई गीत उतर रहा था, उतरे चला जा रहा था--वे एक टिमटिमाती मोमबत्ती को जलाकर बजरे में और देर तक गीत की कड़ियों को लिखते रहे। कोई आधी रात फूंक मारकर मोमबत्ती बुझाई,

हैरान हो गए। पूरे चांद की रात थी यह भूल ही गए थे। यद्यपि वे जो लिख रहे थे वह पूरे चांद का ही गीत था। जैसे ही मोमबत्ती बुझी कि बजरे की उस छोटी सी कोठरी में सब तरफ से चांद की किरणें भीतर आ गयीं। रंध्र-रंध्र से। वह छोटी सी मोमबत्ती की रोशनी चांद की किरणों को बाहर रोके हुए थी।

तुमने कभी ख्याल किया, कमरे में दीया जलता हो तो चांद भीतर नहीं आता। फिर दीया फूंक मारकर बुझा दिया, चांद बरस पड़ा भीतर, बाढ़ की तरह सब तरफ से आ गया।

रवींद्रनाथ उस रात नाचे। और उन्होंने अपनी डायरी में लिखा कि आज एक अपूर्व अनुभव हुआ। कहीं ऐसा ही तो नहीं है कि जब तक यह अहंकार का दीया भीतर जलता रहता है, परमात्मा का चांद भीतर नहीं आ पाता।

यही बुद्ध ने कहा है कि अहंकार के दीए को फूंक मारकर बुझा दो। दीए के बुझाने का ही नाम निर्वाण है। इधर तुम बुझे, उधर सब तरफ से परमात्मा, सत्य--या जो भी नाम दो--भीतर प्रविष्ट हो जाता है।

तो एक तो जीवन को जीने का ढंग है, जैसा तुम जी रहे हो। एक बुद्धों का ढंग भी है। चुनाव तुम्हारे हाथ में है। तुम बुद्धों की भांति भी जी सकते हो--कोई तुम्हें रोक नहीं रहा है सिवाय तुम्हारे। और तुम दीन-हीन भिखमंगों की भांति भी जी सकते हो--जैसा तुम जी रहे हो--कोई तुम्हें जबर्दस्ती जिला नहीं रहा। तुमने ही न मालूम किस बेहोशी और नासमझी में इस तरह की जीवन-शैली को चुन लिया है। तुम्हारे अतिरिक्त कोई जिम्मेवार नहीं है। एक झटके में तुम तोड़ दे सकते हो, क्योंकि सब बनाया तुम्हारा ही खेल है। ये सब जो घर तुमने बना लिए हैं अपने चारों तरफ, जिनमें तुम खुद ही कैद हो गए हो।

मैं एक घर में मेहमान था। सामने एक मकान बन रहा था और एक छोटा लड़का वहां मकान के सामने पड़ी हुई रेत और ईंटों के बीच में खेल रहा था। उसने धीरे-धीरे--मैं देखता रहा बाहर बैठा हुआ, मैं देख रहा था--उसने धीरे-धीरे अपने चारों तरफ ईंटें लगा लीं और ईंटों को जमाता गया ऊपर। फिर वह घबड़ाया जब उसके गले तक ईंटें आ गयीं, क्योंकि वह खुद कैद हो गया। तब वह चिल्लाया कि बचाओ!

मैं उसे देख रहा था, और मुझे लगा, यही आदमी की अवस्था है। तुम ही अपने चारों तरफ ईंटें जमा लेते हो, जिसको तुम जिंदगी कहते हो। फिर एक दिन तुम पाते हो कि गले तक डूब गए। तब चिल्लाते हो कि बचाओ।

तुमने ही रखी हैं ईंटें, चिल्लाने की कोई जरूरत नहीं। जिस ढंग से रखी हैं उसी ढंग से गिरा दो। तुमने ही रखी हैं, तुम ही उठा सकते हो। कारागृह तुम्हारा ही बनाया हुआ है, किसी और ने तुम्हें कारागृह में बंद नहीं किया है। खेल-खेल में बना लिया है। खेल-खेल में ही आदमी बंद हो जाता है। जंजीरों में उलझ जाता है।

चलने को चल रहा हूं पर इसकी खबर नहीं

मैं हूं सफर में या मेरी मंजिल सफर में है

अब ऐसे मत चलो। अब जरा जागकर चलना हो जाए। अब जरा होश से चलो। अब जरा देखकर चलो। जितने जागोगे, उतना पाओगे मंजिल करीब। जिस दिन पूरे जागोगे, उस दिन पाओगे मंजिल सदा भीतर थी।

आज इतना ही।

सोलहवां प्रवचन

समझ और समाधि के अंतरसूत्र

पहला प्रश्नः महाकाश्यप उस दिन सुबह खिलखिलाकर न हंसा होता, तो भी क्या बुद्ध उसे मौन के प्रतीक फूल को देते?

प्रश्न पूछते समय थोड़ा सोचा भी करें कि प्रश्न का सार क्या है। यदि ऐसा हुआ होता! यदि वैसा हुआ होता! इन सारी बातों में क्यों व्यर्थ समय को व्यतीत करते हो?

महाकाश्यप न हंसा होता तो बुद्ध फूल देते या न देते, इससे तुम्हें क्या होगा? महाकाश्यप न भी हुआ हो, हुआ हो, कहानी सिर्फ कहानी हो, तो भी तुम्हें क्या होगा? कुछ अपनी पूछो। कुछ ऐसी बात पूछो जो तुम्हारे काम पड़ जाए। प्रश्न ऐसे न हों कि सिर्फ मस्तिष्क की खुजलाहट हों, क्योंकि खुजलाहट का गुण है जितना खुजाओ बढ़ती चली जाती है। पूछने के लिए ही मत पूछो। अगर न हो प्रश्न तो पूछो ही मत। चुप बैठेंगे, शायद तुम्हारे बीच कोई महाकाश्यप हंस दे।

हंसना न हंसना महत्वपूर्ण नहीं है। बाहर जो घटता है उसका कोई मूल्य बुद्धपुरुषों के लिए नहीं है। फूल तो महाकाश्यप को दिया ही होता। वह अकेला ही था वहां जो बुद्ध के मौन को समझ सकता था। हर हालत में फूल उसके पास गया होता। बुद्ध न देते तो भी गया होता। छोड़ दो फिकर! हंसता नहीं, बुद्ध न भी देते फूल, तो भी मैं कहता हूं, उसी के पास गया होता। फूल खुद चला गया होता। कोई बुद्ध को देने की जरूरत भी न थी।

घटना को समझने की कोशिश करो, ब्यौरे की व्यर्थ बकवास में मत पड़ो। घटना सीधी है कि बुद्ध चुप रहे, उस चुप्पी को कोई और न समझ पाया। चुप्पी को समझने के लिए तुम्हें भी चुप होना जरूरी है। जिस भाषा को समझना हो उस भाषा को जानना जरूरी है। मैं हिंदी बोल रहा हूं, तो हिंदी जानना जरूरी है। मैं चीनी बोलूं, तो चीनी जानना जरूरी है, तभी समझ सकोगे।

बुद्ध उस दिन मौन बोले, मौन की भाषा बोले, जो मौन का रस जानता था वही समझा। जो मौन का रस नहीं जानते थे, उन्होंने इस मौन को भी अपने चिंतन का व्यापार बना लिया। वे सोचने लगे, बुद्ध मौन क्यों बैठे हैं? अभागे लोग! जब बुद्ध मौन थे तब तुम चुप हो गए होते, तो फूल उन्हें भी मिल सकता था। लेकिन वे सोचने लगे कि बुद्ध मौन क्यों बैठे हैं? कि बुद्ध हाथ में फूल क्यों लिए हैं? जिसने सोचा, उसने गंवाया।

बुद्धों के पास सोचने से संबंध नहीं जुड़ता। बुद्धों के पास तो न सोचने की कला आनी चाहिए। महाकाश्यप चुप रहा। उसने बस भर आंख देखा। उसने सोचा नहीं। कौन फिकर करे? इतना अप्रतिम सौंदर्य उस दिन प्रगट हुआ था! ऐसा सूरज उगा था जैसा कभी-कभी सदियों में उगता है। बुद्ध उस दिन सब द्वार-दरवाजे अपने मंदिर के खोलकर बैठे थे। निमंत्रण दिया था कि जिसे भी आना हो आ जाए। परमात्मा द्वार पर आकर खड़ा था। दस्तक दे रहा था। तुम सोचने लगे, तुम विचार करने लगे, ऐसा क्यों? वैसा क्यों? क्यों बुद्ध चुप बैठे हैं? पहले क्यों कभी नहीं बैठे?

विचारक चूक गए। महाकाश्यप कोई विचारक न था। वह सिर्फ देखता रहा बुद्ध को। जैसे बुद्ध फूल को देखते रहे, ऐसा महाकाश्यप बुद्ध को देखता रहा। वही तो इशारा था कि जैसे मैं देख रहा हूं फूल को--मात्र द्रष्टा हूं--ऐसे ही तुम भी द्रष्टा हो जाओ आज। हो चुकीं बहुत बातें दर्शन की, अब द्रष्टा हो जाओ। दर्शन की बात कब

तक चलाए रखोगे? हो चुकी चर्चा भोजन की, अब भोजन करो। अब स्वाद लो। बुद्ध ने थाली सजा दी थी अपनी। तुम सोचने लगे भोजन के संबंध में, बुद्ध भोजन रखे सामने बैठे थे।

जैसे बुद्ध फूल को देख रहे थे, वैसा ही महाकाश्यप बुद्ध के फूल को देखने लगा। बुद्ध ने एक फूल देखा, महाकाश्यप ने दो फूल देखे। दो फूलों को एक साथ देखा। उन दोनों फूलों का तारतम्य देखा, संगीत देखा, लयबद्धता देखी। एक अपूर्व छंद का उसे अनुभव होने लगा। रुकता भी महाकाश्यप कैसे बिना हंसे!

क्यों हंसा महाकाश्यप? हंसा लोगों पर, जो कि सोच में पड़ गए हैं। मंदिर सामने खड़ा है और वे मंदिर की खोज कर रहे हैं। सूरज उग चुका है, वे आंख बंद किए प्रकाश की चर्चा में लीन हैं। महाकाश्यप हंसा लोगों की मूढ़ता पर। हंसा कहना ठीक नहीं, हंसी निकल गई। कुछ किया नहीं हंसने में। वह रुक न सका। घट गया, फूट पड़ी हंसी देखकर सारी नासमझी। हजारों लोग मौजूद थे, चूके जा रहे हैं, इस मूढ़ता पर हंसा।

और इस बात पर भी हंसा कि बुद्ध ने भी खूब खेल खेला। जो नहीं कहा जा सकता, वह भी कह दिया। जो नहीं बताया जा सकता, उसको भी बता दिया। जिसको जतलाने में कभी अंगुलियां समर्थ नहीं हुईं, उस तरफ भी इशारा कर दिया। उपनिषद उस दिन मात हो गए। जो नहीं कहा जा सकता था, उसे कृत्य बना दिया। वक्तव्य दे दिया उसका संपूर्ण जीवन से।

इसलिए उस दिन के बाद झेन परंपरा में जब भी गुरु प्रश्न पूछता है तो शिष्य को उत्तर नहीं देना होता, कोई कृत्य करना होता है जिससे वक्तव्य मिल जाए। कोई कृत्य, ऐसा कृत्य जिसमें शिष्य संपूर्ण रूप से डूब जाए। महाकाश्यप हंसा, ऐसा नहीं, महाकाश्यप हंसी हो गया। पीछे कोई बचा नहीं जो हंस रहा था। कोई पीछे खड़ा नहीं था जो हंस रहा था। महाकाश्यप एक खिलखिलाहट होकर बिखर गया उस संगत पर। झेन फकीर प्रश्न पूछते हैं... ।

एक झेन फकीर हुआ। बैठा था, शिष्य बैठे थे। एक बर्तन में पानी रखा था। उसने कहा कि सुनो, बिना कुछ कहे बताओ कि यह क्या है? यह बर्तन और यह पानी, बिना कुछ कहे कोई वक्तव्य दो। अर्थात कृत्य से घोषित करो, जैसा महाकाश्यप ने किया था--खिलखिलाकर। और जब कृत्य से महाकाश्यप ने घोषित किया, तो कृत्य से बुद्ध ने उत्तर भी दिया--फूल देकर। आज मैं भी तुम्हें फूल देने को उत्सुक हूं।

शिष्य देखने लगे, हाथ में कोई फूल तो नहीं था। सोचने लगे कि यह बात तो और उलझन की हो गई। कम से कम बुद्ध हाथ में फूल तो लिए थे; इस आदमी के हाथ में कोई फूल नहीं है। वे फूल के संबंध में सोचने लगे। और उन्होंने लाख सोचा कि इस पानी भरे बर्तन के संबंध में क्या कहो, बिना कहे कैसे वक्तव्य दो? और तभी भोजन का समय करीब आ रहा था। रसोइया--जो भिक्षु, जो संन्यासी रसोई का काम करता था--वह भीतर आया। उसने ये उदासी, चिंतन से तने हुए लोग देखे। उसने पूछा, मामला क्या है? गुरु ने कहा, एक सवाल है। इस जल भरे बर्तन के संबंध में वक्तव्य देना है। कोई वक्तव्य जो इसके पूरे के पूरे रहस्य को प्रगट कर दे। शब्द का उपयोग नहीं करना है। और जो यह करेगा, वही फूल मैं देने को तैयार हूं जो बुद्ध ने दिया था।

लेकिन उस रसोइये ने गुरु के हाथ की तरफ देखा ही नहीं कि फूल वहां है या नहीं। गुरु फूल है। अब इसमें फूल क्या देखना! वह उठा, उसने एक लात मार दी उस बर्तन में, पानी लुढ़ककर सब तरफ बह गया। और वह बोला कि अब उठो, हो गई बकवास बहुत, भोजन का समय हो गया। कहते हैं, गुरु ने उसके चरण छू लिए--दे दिया फूल। वक्तव्य उसने प्रगट कर दिया। अस्तित्व को तो ऐसे ही बिखेर कर बताया जाता है। अब और क्या कहने को रहा--उलटा दिया पात्र, जल बिखर गया सब तरफ।

ऐसे ही उस दिन महाकाश्यप ने भी उलटा दिया था अपना पात्र। खिलखिलाहट बिखर गई थी सब तरफ। ऐसी फिर हजारों घटनाएं हैं झेन परंपरा में। एक घटना को दुबारा नहीं दोहरा सकते, याद रखना। क्योंकि दोहराने का तो मतलब होगा, सोच कर की। इसलिए हर घटना अनूठी है और आखिरी है। फिर तुम उसे पुनरुक्त नहीं कर सकते।

अगर मैं आज फूल लेकर आ जाऊं, तो जो हंसेगा, उसको भर नहीं मिलेगा। अगर आज मैं बर्तन में पानी रखकर बैठ जाऊं और तुम से पूछूं, तो जो लात मारकर लुढ़काएगा, उसको भर नहीं मिलेगा। वह तो विचार हो गया अब। अब तो महाकाश्यप की कहानी पता है।

हजारों घटनाएं हैं, लेकिन हर घटना अनूठी है। और उसकी पुनरुक्ति नहीं हो सकती। क्योंकि पुनरुक्ति यानी विचार। कुछ कहो पूरे अस्तित्व से, और कुछ कहो इस ढंग से जैसा कभी न कहा गया हो, तो फिर मन को जगह नहीं बचती। मन तो अनुकरण करता है, दोहराता है, यंत्रवत है। मन के पास कोई मौलिक सूझ नहीं होती।

एक दूसरे झेन फकीर का एक शिष्य बहुत दिन से चिंता में रत है--गुरु ने कोई सवाल दिया है जो हल नहीं होता। जब सब तरह के उपाय कर चुका तो उसने प्रधान शिष्य को पूछा कि तुम तो स्वीकार हो गए हो, तुम तो कुछ कुंजी दो। हम परेशान हुए जा रहे हैं, वर्षों बीत गए। कुछ हल नहीं होता, कोई राह नहीं मिलती। और जब भी जाते हैं, हम उत्तर भी नहीं दे पाते और गुरु कहता है, बस, बकवास बंद। अभी हम बोले भी नहीं! अब यह तो हद्द हो गई। ऐसे तो हम कभी भी जीत न पाएंगे। कम से कम बोलने तो दो। हम कुछ कहें, फिर तुम कहो गलत और सही। हम बोलते ही नहीं और गलत हो जाता है। तो अब तो सही होने का कोई उपाय न रहा। गुरु नाराज है।

शिष्य हंसने लगा। प्रधान शिष्य ने कहा, नाराज नहीं। क्योंकि जब तुम विचार करते हुए जाते हो तो चेहरे का ढंग ही और होता है। जब तुम निर्विचार में जाते हो, तो चेहरे का ढंग ही और होता है। सोचो थोड़ा, जब तुम विचार से भरे होते हो तो सारे चेहरे पर तनाव होता है। आंख में, माथे पर बल होते हैं। जब तुम निर्विचार में होते हो, सब बल खो जाते हैं, सब तनाव खो जाता है। जब तुम निर्विचार में होते हो, तब तुम्हारे चारों तरफ ऐसी शांति झरती है कि अज्ञानी भी पहचान ले, तो गुरु न पहचानेगा! वह तुम्हें दरवाजे के भीतर घुसने देता है, यह भी उसकी करुणा है। उस प्रधान शिष्य ने कहा कि मेरी तुम्हें पता नहीं। दरवाजे के बाहर ही रहता था, वह कहता था, लौट जा। फिजूल की बकवास लेकर मत आ। अभी उसने मुझे देखा भी नहीं था। लेकिन जैसे मेरी छाया मुझसे पहले पहुंच जाती। जैसे मेरा वातावरण, मैं दरवाजे पर होता, और उसे छू लेता। जैसे कोई गंध उसे खबर दे देती।

तो इस नए शिष्य ने पूछा, फिर तुमने कैसे उसकी अनुकंपा को पाया? उसके प्रसाद को पाया? उसने कहा, वह तो मैं कभी न पा सका। जब मैं मर ही गया, तब मिला। उसने कहा, भलेमानुष, पहले क्यों न बताया? यही हम भी करेंगे।

अब कहीं कोई यह कर सकता है? दूसरे दिन वह गया। जैसे ही गुरु ने उसकी तरफ देखा, इसके पहले कि गुरु कहे कि नहीं, बकवास बंद, वह भड़ाम से गिर पड़ा, आंखें बंद कर लीं, हाथ फैला दिए, जैसे मर गया।

गुरु ने कहा, बहुत खूब! बिल्कुल ठीक-ठीक किया। प्रश्न का क्या हुआ? उस शिष्य ने--अब मजबूरी--एक आंख खोली और कहा कि प्रश्न तो अभी हल नहीं हुआ। तो गुरु ने कहा, नासमझ! मुर्दे बोला नहीं करते, और न मुर्दे ऐसे आंख खोलते हैं। उठ, भाग यहां से; और किसी दूसरे से उत्तर मत पूछना। पूछे उत्तरों का क्या मूल्य है?

वह तुम्हारा होना चाहिए। तुम्हारे अंतरतम से आना चाहिए। तुम उसमें मौजूद होने चाहिए। वह तुम्हारा गीत हो, वह तुम्हारा नाच हो। उसमें तुम पूरे लीन हो जाओ। वह जीवन हो कि मौत, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

महाकाश्यप उस दिन हंसा। कहना ठीक नहीं हंसा। हंसी फैल गई देखकर यह सारी दशा। बुद्ध का सामने होना और लोगों का अंधे बने रहना, सूरज का निकल आना और अंधेरे का न मिटना देखकर हंसा। ज्ञान बरसता हो, और लोगों के घड़े चिकने हों, और जल उन पर पड़ता ही न हो, यह देखकर हंसा।

हंसता या न हंसता, फूल उसे मिलना था। हंसी, न हंसी तो सांयोगिक है। बुद्ध ने फूल हर हालत दिया होता। हंसने की वजह से नहीं दिया, ध्यान रखना, नहीं तो फिर भूल हो जाएगी। यही तो भूल है मन की। तब तुम सोचोगे कि हंसने की वजह से दिया, तो अगर अब दुबारा कभी ऐसा मौका हमें मिलेगा तो हम हंस देंगे। वहीं तुम चूक जाओगे। हंसने की वजह से नहीं दिया। हंसी के पीछे जो मौन था--हंसी के पीछे विचार भी हो सकता है, तब व्यर्थ हो गई--हंसी के पीछे जो मौन था, उस खिलखिलाहट के फूलों के पीछे जो परम शांति थी। वह हंसी निर्वाण का फूल थी। न हंसता तो बुद्ध उठकर गए होते। हंसा तो बुद्ध ने उसे बुला भी लिया। न हंसता तो बुद्ध खुद उठकर गए होते, खुद उसकी झोली में उंडेल दिया होता।

लेकिन इस तरह के प्रश्न तुम्हारे मन में उठते क्यों हैं? तुम्हारे जीवन की समस्याएं हल हो गयीं कि तुम महाकाश्यप की चिंता में पड़े हो? तुम्हारा जीवन समाधान को उपलब्ध हो गया कि तुम इस तरह के बौद्धिक प्रश्न उठाते हो? मत गंवाओ समय को इस भांति, अन्यथा कोई महाकाश्यप तुम पर भी हंसेगा, तुम्हारी मूढ़ता पर भी हंसेगा। यहां मैं तुम्हारे सामने मौजूद हूं, कुछ हो सकता है। जब मैं मौजूद नहीं रहूंगा, तब तुम रोओगे। अगर अभी न हंसे, तो तब तुम रोओगे। इस मौजूदगी का उपयोग कर लो। इस मौजूदगी को पी लो। इस मौजूदगी को तुम्हारे रग-रेशे में उतर जाने दो। व्यर्थ के ऊहापोह में मत पड़ो।

मदरसे तक ही थीं बहस आराइयां

पाठशाला तक तर्क, तर्कजाल, प्रश्न और प्रश्नों के विस्तार।

मदरसे तक ही थीं बहस आराइयां

चुप लगी जब बात की तह पा गए

तो जो मैं कहता हूं उसको तुम तर्क मत बनाओ, अन्यथा तुम चूके। तब तुम किसी दिन पछताओगे कि इतने करीब थे और चूक गए। और कभी-कभी ऐसा हुआ है कि सोचने वालों ने गंवा दिया है और न सोचने वालों ने पा लिया है। कभी-कभी क्या, हमेशा ही ऐसा हुआ है। जो मैं कह रहा हूं, वह इसीलिए कह रहा हूं ताकि चुप लग जाए, और तुम बात की तह पा जाओ। तुम बात में से बात निकाल लेते हो। बात की तह नहीं पाते। एक बात से तुम दस दूसरी बातों पर निकल जाते हो। मैं करता हूं इशारा चांद की तरफ, तुम अंगुली पकड़ लेते हो। तुम अंगुली के संबंध में पूछने लगते हो, तुम चांद की बात ही भूल जाते हो। कहीं ऐसा न हो कि किसी दिन तुम्हें कहना पड़े--

थी न आजादे-फना किश्ती-ए-दिले-नाखुदा

मौजे-तूफां से बची तो नज्रे-साहिल हो गई

किसी तरह तूफान से बचकर आ भी गए तो किनारे से टकरा गए।

थी न आजादे-फना किश्ती-ए-दिले-नाखुदा

मौजे-तूफां से बची तो नज्रे-साहिल हो गई

कहीं ऐसा न हो कि यहां मेरे किनारे पर आकर भी डूब जाओ।

कोई एजाजे-सफर था या फरेबे-चश्मे-शौक

सामने आकर निहां आंखों से मंजिल हो गई

कहीं ऐसा न हो कि मंजिल सामने आ गई हो और फिर भी तुम चूक जाओ। उस दिन बुद्ध के सामने बैठे लोग चूक गए।

सामने आकर निहां आंखों से मंजिल हो गई

आ गई थी सामने मंजिल, लेकिन जिसे पहुंचना है अगर वही तैयार न हो, तो मंजिल भी क्या करे? सामने भी आ जाए तो भी तुम चूक जाओगे। क्योंकि सवाल मंजिल का नहीं, तुम्हारा है।

व्यर्थ की बातों में मत पड़ो। और यदि ऐसा होता, तो कैसा होता, यह तो पूछो ही मत। इसकी तुम्हें व्यर्थता नहीं दिखाई पड़ती कि यदि रावण सीता को न चुराता तो रामायण का क्या होता? अब इसका कौन उत्तर दे? इसका कौन उत्तर दे और उत्तर का क्या अर्थ है?

जो हो गया, हो गया। उससे अन्यथा नहीं हो सकता था। अब तुम उसमें से और व्यर्थ की बातें मत निकालो, नहीं तुम सोचते ही रहोगे। प्रत्येक पल सोचने में गंवाया, बड़ा महंगा है। क्योंकि उसी पल में सब कुछ उपलब्ध हो सकता था।

दूसरा प्रश्नः बुद्ध के देह में जीवित रहते उनका भिक्षु-संघ एकता में रहा। लेकिन बुद्ध के देह-विसर्जन के बाद जैसे-जैसे समय बीतता गया, बुद्ध-धर्म अनेक शाखाओं एवं प्रशाखाओं में बंटने लगा। अज्ञानी संप्रदाय बनाते हैं, लेकिन बुद्ध के ज्ञानी शिष्य भी अनेक विभिन्न एवं विपरीत संप्रदायों में बंट गए। कृपया इस घटना पर कुछ प्रकाश डालें।

अज्ञानी संप्रदाय बनाते हैं। ज्ञानी भी संप्रदाय बनाते हैं। लेकिन अज्ञानी का संप्रदाय कारागृह हो जाता है और ज्ञानी का संप्रदाय मुक्ति की एक राह। संप्रदाय का अर्थ होता है, मार्ग। संप्रदाय का अर्थ होता है, जिससे पहुंचा जा सकता है।

ज्ञानी मार्ग से पहुंचते हैं, मार्ग बनाते भी हैं। अज्ञानी मार्ग से जकड़ जाते हैं, पहुंचते नहीं। मार्ग बोझिल हो जाता है। छाती पर पत्थर की तरह बैठ जाता है। ज्ञानी मार्ग का उपयोग कर लेते हैं, अज्ञानी मार्ग से ही बंध जाते हैं। संप्रदाय में कुछ बुराई नहीं है, अगर पहुंचाता हो।

संप्रदाय शब्द बड़ा बहुमूल्य है। जिससे पहुंचा जाता है, वही संप्रदाय है। लेकिन बड़ा गंदा हो गया। लेकिन गंदा हो जाने का कारण संप्रदाय नहीं है। अब कोई नाव को सिर पर रखकर ढोए तो इसमें नाव का क्या कसूर है? क्या तुम नाव के दुश्मन हो जाओगे, कि लोग नाव को सिर पर रखकर ढो रहे हैं। मूढ़ तो ढोएंगे ही। नाव न होती, कुछ और ढोते। मंदिर-मस्जिद न होते लड़ने को तो किसी और बात से लड़ते। कुछ और कारण खोज लेते। जिन्हें जाना नहीं है, वे मार्ग के संबंध में विवाद करने लगते हैं। जिन्हें जाना है, वे मार्ग का उपयोग कर लेते हैं। और जिसने मार्ग का उपयोग कर लिया, वह मार्ग से मुक्त हो जाता है। जिसने नाव का उपयोग कर लिया, वह नाव को सिर पर थोड़े ही ढोता है! नाव पीछे पड़ी रह जाती है, रास्ते पीछे पड़े रह जाते हैं। तुम सदा आगे बढ़ते चले जाते हो।

संप्रदाय में अपने आप कोई भूल-भ्रांति नहीं है। भूल-भ्रांति है तो तुम में है। तुम तो औषधि को भी जहर बना लेते हो। बड़े कलाकार हो! तुम्हारी कुशलता का क्या कहना! जो जानते हैं वे जहर को भी औषधि बना लेते हैं। वक्त पर काम पड़ जाता है जहर भी जीवन को बचाने के। तुम्हारी औषधि भी जीवन की जानलेवा हो जाती है। असली सवाल तुम्हारा है।

बुद्ध के जाने के बाद धर्म शाखा-प्रशाखाओं में बंटा। बंटना ही चाहिए। जब वृक्ष बड़ा होगा तो पींड़ ही पींड़ थोड़े ही रह जाएगा। शाखा-प्रशाखाओं में बंटेगा। पींड़ ही पींड़ बड़ी ठूंठ मालूम पड़ेगी। उस वृक्ष के नीचे छाया किसको मिलेगी जिसमें पींड ही पींड़ हो? उससे तो खजूर का वृक्ष भी बेहतर। कुछ तो छाया थोड़ी-बहुत कहीं पड़ती होगी।

वृक्ष तो वही शानदार है, वही जीवित है, जिसमें हजारों शाखाएं-प्रशाखाएं निकलती हैं। शाखाएं-प्रशाखाएं तो इसी की खबर हैं कि वृक्ष में हजार वृक्ष होने की क्षमता थी, किसी तरह एक में समा लिया है। हर्ज भी कुछ नहीं है। जितनी शाखाएं-प्रशाखाएं हों उतना ही सुंदर। क्योंकि उतने ही पक्षी बसेरा कर सकेंगे। उतने ही पक्षी घोंसले बना सकेंगे। उतने ही यात्री विश्राम पा सकेंगे। उतनी ही बड़ी छाया होगी, उतनी ही गहन छाया होगी। धूप से तपे-मांदों के लिए आसरा होगा, शरण होगी।

जो वृक्ष ठूंठ रह जाए, उसका क्या अर्थ हुआ? उसका अर्थ हुआ, वृक्ष बांझ है। उसमें फैलने की क्षमता नहीं है। जीवन का अर्थ है, फैलने की क्षमता। सभी जीवित चीजें फैलती हैं। सिर्फ मृत्यु सिकुड़ती है। मृत्यु सिकोड़ती है, जीवन फैलाता है। जीवन विस्तार है, एक से दो, दो से अनेक होता चला जाता है। परमात्मा अकेला था, फिर अनेक हुआ, क्योंकि परमात्मा जीवित था। अगर मुर्दा होता, तो अनेक नहीं हो सकता था। संसार को गाली मत देना, अगर तुम्हें मेरी बात समझ में आए तो तुम समझोगे कि संसार परमात्मा की शाखाएं-प्रशाखाएं है। तुम भी उसी की शाखा-प्रशाखा हो। इतना जीवित है कि चुकता ही नहीं, फैलता ही चला जाता है।

वृक्ष भारत में बड़े प्राचीन समय से जीवन का प्रतीक रहा है। बुद्ध के वृक्ष में बड़ी क्षमता थी, बड़ा बल था, बड़ी संभावना थी। अकेली पींड़ से कैसे बुद्ध का वृक्ष चिपटा रहता? जैसे-जैसे बढ़ा, शाखाएं-प्रशाखाएं हुईं। लेकिन ज्ञानी की दृष्टि में उन शाखाओं-प्रशाखाओं में कोई विरोध न था। वे सभी एक ही वृक्ष से जुड़ी थीं और एक ही जड़ पर जीवित थीं। उन सभी का जीवन एक ही स्रोत से आता था। बुद्ध स्रोत थे। ज्ञानी ने इसमें कुछ विरोध न देखा। इसमें इतना ही देखा कि बुद्ध में बड़ी संभावना है।

यह जरा हैरानी की बात है, सारी मनुष्य-जाति में बुद्ध ने जितनी संभावनाओं को जन्म दिया, किसी दूसरे आदमी ने नहीं दिया।

महावीर के वृक्ष में केवल दो शाखाएं लगीं--दिगंबर, श्वेतांबर। बस। और उनमें भी कोई बहुत फासला नहीं है। क्षुद्र बातों का फासला है। कि कोई महावीर काशृंगार करके पूजता है, कोई महावीर को नग्न पूजता है।शृंगार के भीतर भी महावीर नग्न हैं, और नग्न में भी उनका बड़ाशृंगार है। इसमें कुछ बड़ा फासला नहीं है। उनकी नग्नता हीशृंगार है, अब और क्या सजाना है? उनको और सजाना तो ऐसे ही है जैसे कोई सांप पर पैर चिपकाए। वह सांप अकेला बिना पैर के ही खूब चलता था। अब तुम और पैर चिपकाकर उसे खराब मत करो। यह तो उन पर औरशृंगार करना ऐसे ही है जैसे कोई मोर को और रंगों से पोत दे। मोर वैसे ही काफी रंगीन था, अब तुम कृपा करके रंग खराब मत करो।

महावीर की नग्नता में ही खूबशृंगार है। उन जैसी सुंदर नग्नता कभी प्रगट हुई? पर फिर तुम्हारी मौज है। तुम्हारा मन नहीं मानता--इसलिए नहीं कि महावीर में कुछ कमी है--तुम्हारा मन बिना किए कुछ नहीं मानता।

तुम कुछ करना चाहते हो। करो भी क्या? महावीर जैसे व्यक्ति के सामने एकदम असमर्थ हो जाते हो। सुंदर कपड़े पहनाते हो, सुंदर आभूषण लगाते हो, यह तुम्हारी राहत है। इससे महावीर का कुछ लेना-देना नहीं। तुम्हारे सब वस्त्रों के पीछे भी वे अपनी नग्नता में खड़े हैं, नग्न ही हैं। ऐसे छोटे-छोटे फासले हैं।

दिगंबर कहते हैं कि उनकी कोई शादी नहीं हुई। श्वेतांबर कहते हैं, शादी हुई। क्या फर्क पड़ता है? दिगंबर कहते हैं, उनका कोई बच्चा नहीं हुआ--जब शादी ही नहीं हुई तो बच्चा कैसे हो? श्वेतांबर कहते हैं, उनकी एक लड़की थी। पर क्या फर्क पड़ता है? महावीर में इससे क्या फर्क पड़ता है? शादी हुई कि न हुई? ये तो फिजूल की विस्तार की बातें हैं। महावीर के होने का इससे क्या लेना-देना है? शादी हुई हो तो ठीक, न हुई हो तो ठीक। जिसको जैसी मौज हो वैसी कहानी बना ले। लेकिन कोई बहुत बड़ा विस्तार नहीं हुआ।

जीसस की भी दो शाखाएं फूटकर रह गयीं। प्रोटेस्टेंट और केथोलिक। कोई बड़ा विस्तार नहीं हुआ।

बुद्ध अनूठे हैं, अद्वितीय हैं। सैकड़ों शाखाएं हुईं। और प्रत्येक शाखा इतनी विराट थी कि उसमें से भी प्रशाखाएं हुईं। कहते हैं, जितने दर्शन के मार्ग अकेले बुद्ध ने खोले उतने मनुष्य-जाति में किसी व्यक्ति ने नहीं खोले। बुद्ध अकेले समस्त प्रकार के दर्शनों का स्रोत बन गए। ऐसी कोई दार्शनिक परंपरा नहीं है जगत में जिसके समतुल परंपरा बुद्ध-धर्म में न हो।

अगर तुम बुद्ध-धर्म का पूरा इतिहास समझ लो, तो बाकी सब धर्मों का इतिहास छोड़ भी दो तो कुछ हर्जा न होगा। क्योंकि सारे जगत में जो भी कहीं हुआ है, जो विचार कहीं भी जन्मा है, वह विचार बुद्ध में भी जन्मा है। बुद्ध अकेले बड़े विराट वृक्ष हैं।

यह तो सौंदर्य की बात है। यह तो अहोभाव और उत्सव की बात है। इसमें कुछ चिंता का कारण नहीं है। यह तो इतना ही बताता है कि बुद्ध में बड़ी संभावना थी। ज्ञानी ने तो उस संभावना का उपयोग किया। उसमें कोई झगड़ा न था। बिल्कुल विपरीत जाने वाली शाखाएं भी--एक पूरब जा रही है, एक पश्चिम जा रही है--फिर भी एक ही तने से जुड़ी होती हैं, विरोध कहां है? और उन दोनों का जीवन-स्रोत एक ही जगह से आता है। एक बुद्ध ही फैलते चले गए सब में। इससे कुछ अड़चन न थी।

लेकिन अज्ञानी अड़चन खड़ी करता है। अज्ञानी की अड़चन ऐसी है कि वह यह भूल ही जाता है कि सभी विरोध अलग-अलग दिशाओं में जाती शाखाएं हैं। एक ही स्रोत से जन्मी हैं।

मैंने सुना है, एक गुरु के दो शिष्य थे। गर्मी की दोपहर थी, गुरु विश्राम कर रहा था, और दोनों उसकी सेवा कर रहे थे। गुरु ने करवट बदली--तो दोनों शिष्यों ने आधा-आधा गुरु को बांट रखा था सेवा के लिए, बायां पैर एक ने ले रखा था, दायां पैर एक ने ले रखा था--गुरु ने करवट बदली तो बायां पैर दाएं पैर पर पड़ गया। स्वभावतः झंझट खड़ी हो गई।

गुरु तो एक है। शिष्य दो थे। तो उन्होंने हिंदुस्तान-पाकिस्तान बांटा हुआ था। तो जब दाएं पैर पर बायां पैर पड़ा, तो जिसका दायां पैर था उसने कहा, हटा ले अपने बाएं पैर को। मेरे पैर पर पैर! सीमा होती है सहने की। बहुत हो चुका, हटा ले। तो उस दूसरे ने कहा, देखूं किसकी हिम्मत है कि मेरे पैर को और कोई हटा दे! सिर कट जाएंगे, मगर मेरा पैर जहां रख गया रख गया। यह कोई साधारण पैर नहीं, अंगद का पैर है। भारी झगड़ा हो गया, दोनों लट्ठ लेकर आ गए।

गुरु यह उपद्रव सुनकर उसकी नींद खुल गई, उसने देखी यह दशा। उसने जब लट्ठ चलने के ही करीब आ गए--लट्ठ चलने वाले थे गुरु पर! क्योंकि जिसका दायां पैर था वह बाएं पैर को तोड़ डालने को तत्पर हो गया

था। और जिसका बायां पैर था वह दाएं पैर को तोड़ डालने को तत्पर हो गया था। गुरु ने कहा, जरा रुको, तुम मुझे मार ही डालोगे। ये दोनों पैर मेरे हैं। तुमने विभाजन कैसे किया?

अज्ञानी बांट लेता है और भूल ही जाता है। भूल ही जाता है कि जो उसने बांटा है वे एक ही व्यक्ति के पैर हैं, या एक ही वृक्ष की शाखाएं हैं। अज्ञानी ने उपद्रव खड़ा किया। अज्ञानी लड़े। एक-दूसरे का विरोध किया। एक-दूसरे का खंडन किया। एक-दूसरे को नष्ट करने की चेष्टा की। जब संप्रदाय अज्ञानी के हाथ में पड़ता है तब खतरा शुरू होता है।

ज्ञानी संप्रदाय को बनाता है, क्योंकि धर्म की शाखाएं-प्रशाखाएं पैदा होती हैं। जितना जीवित धर्म, उतनी शाखाएं-प्रशाखाएं। दुनिया से संप्रदाय थोड़े ही मिटाने हैं, अज्ञानी मिटाने हैं। जिस दिन संप्रदाय मिट जाएंगे, दुनिया बड़ी बेरौनक हो जाएगी। उस दिन गुरु बिना पैर के होगा। उसको फिर, जैसे भिखमंगों को ठेले पर रखकर चलाना पड़ता है, ऐसे चलाना पड़ेगा। फिर वृक्ष बिना शाखाओं के होगा। न पक्षी बसेरा करेंगे, न राहगीर छाया लेंगे। और जिस वृक्ष में पत्ते न लगते हों, शाखाएं न लगती हों, उसका इतना ही अर्थ है कि जड़ें सूख गयीं। अब वहां जीवन नहीं। जीवन छोड़ चुका उसे, उड़ गया।

तुम पूछते हो, "बुद्ध के देह में जीवित रहते उनका भिक्षु-संघ एकता में रहा।"

नहीं, ज्ञानियों के लिए तो वह अब भी एकता में है। और तुमसे मैं कहता हूं अज्ञानी के लिए वह तब भी एकता में नहीं था जब बुद्ध जीवित थे। तब भी अज्ञानी अपनी तैयारियां कर रहे थे। तभी फिरके बंटने शुरू हो गए थे। बुद्ध के जीते जी अज्ञानियों ने अपने हिसाब बांट लिए थे, अलग-अलग कर लिए थे। बुद्ध के मरने से थोड़े ही अचानक अज्ञान पैदा होता है। अज्ञानी तो पहले भी अज्ञानी था, वह कोई अचानक थोड़े ही अज्ञानी हो गया। और जो अज्ञानी है, बुद्ध के जीवित रहने से थोड़े ही कुछ फर्क पड़ता है? अज्ञान तो तुम्हें छोड़ना पड़ेगा, बुद्ध क्या कर सकते हैं?

बुद्ध ने कहा है, मार्ग दिखा सकता हूं, चलना तो तुम्हें पड़ेगा। समझा सकता हूं, समझना तो तुम्हें पड़ेगा। अगर तुम न समझने की ही जिद्द किए बैठे हो, अगर समझने के लिए तुम में जरा भी तैयारी नहीं है--तैयारी नहीं दिखाई है--तो बुद्ध लाख सिर पीटते रहें, कोई परिणाम नहीं हो सकता।

तीसरा प्रश्नः क्या जीवन में सभी कुछ नदी-नाव संयोग है? बुद्ध भी? बुद्धत्व भी?

नहीं--बुद्धत्व को छोड़कर सभी कुछ नदी-नाव संयोग है। क्योंकि बुद्धत्व तुम्हारा स्वभाव है, संयोग नहीं। ऐसा नहीं है कि तुम्हें बुद्ध होना है। तुम बुद्ध हो। बस इतना ही है कि तुम्हें पहचानना है। ऐसा नहीं है कि तुम्हें बुद्धत्व अर्जित करना है। तुमने कभी गंवाया ही नहीं। प्रत्यभिज्ञा करनी है। पहचान करनी है। जो मिला ही है, जागकर देखना है।

बुद्धत्व संयोग नहीं है। बुद्धत्व किन्हीं परिस्थितियों पर निर्भर नहीं है। न तुम्हारी साधना पर निर्भर है, याद रखना। यह मत सोचना कि तुम बहुत ध्यान करोगे इसलिए बुद्ध हो जाओगे। बहुत ध्यान, बहुत तपश्चर्या से शायद तुम्हें जागने में आसानी होगी बुद्धत्व के प्रति, लेकिन बुद्ध होने में नहीं। बुद्ध तो तुम थे। गहरी तंद्रा में थे और खर्राटे ले रहे थे, तब भी तुम बुद्ध ही थे। भटक रहे थे योनियों में--अनंत योनियों में कीड़े-मकोड़ों की तरह--जी रहे थे कामवासना में, हजार क्रोध और लोभ में, तब भी तुम बुद्ध ही थे। ये सब सपने थे जो तुमने देखे।

लेकिन सपनों के पीछे तुम्हारा मूलस्रोत सदा ही शुद्ध था। वह कभी अशुद्ध हुआ नहीं। अशुद्ध होना उसकी प्रकृति नहीं।

और सब जीवन में नदी-नाव संयोग है। किसी स्त्री के तुम प्रेम में पड़ गए, और तुमने शादी कर ली, वह नदी-नाव संयोग है। धन कमा लिया किसी ने और कोई न कमा पाया, वह नदी-नाव संयोग है। किसी ने यश कमा लिया और कोई बदनाम हो गया, वह नदी-नाव संयोग है। वह हजार परिस्थितियों पर निर्भर है। वह तुम्हारा स्वभाव नहीं। वह बाहर पर निर्भर है, भीतर पर नहीं।

सिर्फ एक चीज नदी-नाव संयोग नहीं है, वह है तुम्हारा होना। शुद्ध होना। बुद्धत्व भर संसार के बाहर है, शेष सब संसार है। तो जिस दिन तुम जागते हो, उस दिन तुम अचानक संसार के बाहर हो जाते हो, अतिक्रमण हो जाता है।

ऐसा समझो कि तुम एक सपना देख रहे हो। सपने में कोई देख रहा है गरीब है, कोई देख रहा है अमीर है। कोई देखता है साधु, कोई देखता है असाधु। कोई देखता है हजार पाप कर रहा हूं, कोई देखता है हजार पुण्य कर रहा हूं। यह सब नदी-नाव संयोग है। यह सब सपना है। लेकिन वह जो सपना देख रहा है, वह जो द्रष्टा है, वह नदी-नाव संयोग नहीं है। चाहे सपना तुम साधु का देखो, चाहे असाधु का, सपने में भेद है, देखने वाले में कोई भेद नहीं है। वह देखने वाला वही है। चाहे साधु, चाहे असाधु; चाहे चोर, चाहे अचोर; पाप करो, पुण्य करो; वह जो देखने वाला है भीतर वह एक है। उस देखने वाले को ही जान लेना बुद्धत्व है। स्वयं को पहचान लेना बुद्धत्व है। शेष सब पराया है। शेष सब संयोग से बनता मिटता है। इसलिए शेष की फिकर नासमझ करते हैं। जो संयोग पर निर्भर है उसकी भी क्या फिकर करनी?

थोड़ा समझो। तुम एक गरीब घर में पैदा हुए। तुम्हें ठीक से शिक्षा नहीं मिल सकी, तो कुछ द्वार बंद हो गए संयोग के। तुम एक जंगल में पैदा हुए, एक आदिवासी समाज में पैदा हुए। अब वहां तुम उस आदिवासी समाज में शेक्सपियर न बन सकोगे, न कालिदास बन सकोगे। संयोग की बात है। तुम पूरब में पैदा हुए तो एक संयोग, पश्चिम में पैदा हुए तो दूसरा संयोग। इन संयोगों पर बहुत सी बातें निर्भर हैं--सभी बातें निर्भर हैं--सिर्फ एक को छोड़कर। एक भर अपवाद है। और इसीलिए धर्म उसकी खोज है, जो संयोग के बाहर है। धर्म उसकी खोज है, जो परिस्थिति पर निर्भर नहीं है। धर्म उसकी खोज है, जो किसी चीज पर निर्भर नहीं है। जो परम स्वातंष्य का सूत्र है तुम्हारे भीतर, उसकी खोज है।

शेष सब तुम खोजते हो, वह सब संयोग की बात है। और छोटे-छोटे संयोग बड़े महत्वपूर्ण हो जाते हैं। किसी को बचपन में ही चेचक निकल गई और चेहरा कुरूप हो गया। अब इसकी पूरी जिंदगी इस चेचक पर निर्भर होगी। क्योंकि शादी करने में इस व्यक्ति को अड़चन आएगी। इस व्यक्ति को जिंदगी में चलने में हजार तरह की हीनताएं घेरेंगी। यह सब संयोग की ही बात है।

लेकिन, चेहरा सुंदर हो कि कुरूप, काला हो कि गोरा, वह जो भीतर द्रष्टा है, वह एक है। जिसने उसे खोजना शुरू कर दिया, उसने सत्य की तरफ कदम रखने शुरू कर दिए।

तो इस बात को स्मरण रखो कि जो भी संयोग मालूम पड़े उस पर बहुत समय मत गंवाना, बहुत शक्ति मत लगाना। बहुत अपने को उस पर निर्भर मत रखना। वह है तो ठीक, नहीं है तो ठीक। चिंतन करना उसका, मनन करना उसका, ध्यान करना उसका, जो संयोगातीत है। उसका ही नाम बुद्धत्व है।

जिंदगी एक आंसुओं का जाम था

पी गए कुछ और कुछ छलका गए

जिंदगी तो आंसुओं का एक प्याला है। जो तुम पी रहे हो, वे तो आंसू ही हैं। कभी-कभार शायद जीवन में सुख की थोड़ी सी झलक भी मिलती है; लेकिन वह भी संयोग-निर्भर है। इसलिए उसके भी तुम मालिक नहीं। कब जिंदगी तुम पर मुस्कुरा देगी, उसके तुम मालिक नहीं। इसको ही तो पुराने ज्ञाताओं ने भाग्य कहा था, कि वह सब भाग्य की बात है। भाग्य का इतना ही अर्थ है कि वह संयोग की बात है, उसकी चिंता में बहुत मत पड़ो। जो भाग्य है, वह हजार कारणों पर निर्भर है। लेकिन जो तुम हो, वह किसी कारण पर निर्भर नहीं है।

मैं एक यहूदी विचारक फ्रेंकल का जीवन पढ़ता था। वह हिटलर के कारागृह में कैद था। उसने लिखा है कि हिटलर के कारागृह से और खतरनाक कारागृह दुनिया में कभी रहे नहीं। दुख, पीड़ा, सब तरह का सताया जाना, सब तरह का अपमान, हर छोटी-छोटी बात पर जूतों से ठुकराया जाना, लेकिन वहां भी उसने लिखा है कि मुझे धीरे-धीरे एक बात समझ में आ गई कि मेरी स्वतंत्रता अक्षुण्ण है।

जब मैं पढ़ रहा था उसका जीवन तो मैं भी चौंका, कि इसने अपनी स्वतंत्रता वहां कैसे पाई होगी? हिटलर ने सब इंतजाम कर दिए परतंत्र करने के, दीन करने के, दुखी करने के; एक रोटी का छोटा सा टुकड़ा रोज मिलता, वह एक दफे भोजन के लिए भी काफी नहीं था, तो लोग उसे छिपा-छिपा कर रखते। फ्रेंकल बड़ा मनोवैज्ञानिक, प्रतिष्ठित विचारक। लेकिन उसने भी लिखा है कि बड़े डाक्टर मेरे साथ थे, जिन्होंने कभी सोचा भी न होगा कि किसी की दूसरे की रोटी का टुकड़ा चुरा लेंगे; बड़े धनपति मेरे साथ थे, जो अपनी रोटी के टुकड़े को एक-एक टुकड़ा करके खाते--एक टुकड़ा सुबह खा लिया जरा सा, फिर दोपहर में खा लिया। क्योंकि इतनी बार भूख लगेगी, थोड़ा-थोड़ा करना ज्यादा बेहतर बजाय एक बार खा लेने के। फिर चौबीस घंटे भूखा रहना पड़ता है। तो छोटा-छोटा मन को समझाते। लोग अपनी रोटी को छिपाकर रखते, बार-बार देख लेते कि कोई दूसरे ने निकाल तो नहीं ली, क्योंकि सौ कैदी एक जगह बंद। रात लोग एक-दूसरे के बिस्तर में से टटोलकर रोटी निकाल लेते। ऐसा दीन हिटलर ने कर दिया। लेकिन, उसने लिखा है, फिर भी मुझे एक बात समझ में आ गई कि मेरी स्वतंत्रता अक्षुण्ण है।

कैसे? तो उसने लिखा है कि सब परतंत्र हो गया है, लेकिन इस परतंत्रता की तरफ मैं क्या दृष्टि लूं, उसके लिए मैं मालिक हूं। क्या दृष्टि लूं, कैसे इसे देखूं, स्वीकार करूं, अस्वीकार करूं, लड़ूं, न लड़ूं--द्रष्टा स्वतंत्र है।

और उसने लिखा है कि जिनको भी यह स्वतंत्रता का अनुभव हुआ, उन्होंने पाया कि ऐसी स्वतंत्रता की प्रतीति बाहर कभी भी न हुई थी। क्योंकि जहां इतनी परतंत्रता थी--इतनी काली दीवाल थी--वहां स्वतंत्रता की छोटी सी सफेद लकीर बड़ी उभरकर दिखाई पड़ने लगी।

तो उसने लिखा, वहां भी दो तरह के लोग थे कारागृह में। स्वतंत्र लोग भी थे वहां, जो स्वतंत्र ही रहे। वहां असली पता चल गया कि कौन स्वतंत्र है! उनको हिटलर झुका न सका, उनको तोड़ न सका। उनको भूखा मार डाला, उनको कोड़े लगाए, लेकिन उनको झुकाया न जा सका। उनको मारा जा सका, लेकिन झुकाया न जा सका। उनकी स्वतंत्रता अक्षुण्ण थी।

कौन तुम्हें कारागृह में डाल सकता है? लेकिन, अगर तुम्हारे भीतर द्रष्टा का बोध ही न हो, तो तुम अपने घर में भी कारागृह में हो जाते हो।

खुदा गवाह है दोनों हैं दुश्मने-परवाज

गमे-कफस हो कि राहत हो आशियाने की

कारागृह का दुख हो, वह तो बांधता ही है--कि राहत हो आशियाने की--घर की सुख-सुविधा भी बांध लेती है। जिसको बंधना है, वह कहीं भी बंध जाता है। उसके लिए कारागृह जरूरी नहीं।

तुम अपने घर को ही सोचो। तुमने कब का उसे कारागृह बना लिया। तुम स्वतंत्र हो अपने घर में? अगर तुम अपने घर में ही स्वतंत्र नहीं हो, अगर वहां भी तुम्हारी मालकियत नहीं है, अगर वहां भी तुम्हारा द्रष्टा मुक्त नहीं हुआ है, अगर तुम कहते हो मेरा घर, तो तुम गुलाम हो। अगर तुम कहते हो इस घर में मैं रहता हूं, और यह घर मुझमें नहीं, तो तुम मालिक हो।

खुदा गवाह है दोनों हैं दुश्मने-परवाज

आकाश में उड़ने की क्षमता दोनों छीन लेते हैं।

गमे-कफस हो कि राहत हो आशियाने की

कारागृह तो छीन ही लेता है आकाश में उड़ने की क्षमता, घर की सुख-सुविधा भी छीन लेती है। सुरक्षा भी छीन लेती है।

तो असली सवाल न तो घर का है और न कारागृह का है। असली सवाल तुम्हारा है। तुम अगर कारागृह में भी द्रष्टा बने रहो, तो तुम मुक्त हो। और तुम घर में भी अगर द्रष्टा न रह जाओ, भोक्ता हो जाओ, तो बंध गए।

द्रष्टा हो जाना बुद्ध हो जाना है। बुद्धत्व कुछ और नहीं मांगता, इतना ही कि तुम जागो, और उसे देखो जो सब को देखने वाला है। विषय पर मत अटके रहो। दृश्य पर मत अटके रहो। द्रष्टा में ठहर जाओ। अकंप हो जाए तुम्हारे द्रष्टा का भाव, साक्षी का भाव, बुद्धत्व उपलब्ध हो गया। और ऐसा बुद्धत्व सभी जन्म के साथ लेकर आए हैं।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, बुद्धत्व जन्मसिद्ध अधिकार है। जब चाहो तब तुम उसे उठा लो, वह तुम्हारे भीतर सोया पड़ा है। जब चाहो तब तुम उघाड़ लो, वह हीरा तुम लेकर ही आए हो; उसे कहीं खरीदना नहीं, कहीं खोजना नहीं।

चौथा प्रश्नः होशपूर्ण व्यक्ति भूल नहीं करता तो कृपया मेरे नाम में अंग्रेजी और हिंदी में इस अंतर का क्या रहस्य है? हिंदीः स्वामी श्यामदेव सरस्वती, और अंग्रेजीः स्वामी श्यामदेव भारती।

तुमसे बात करना करीब-करीब ऐसे है जैसे दीवाल से बात करना। तुमसे बात करना करीब-करीब ऐसे है जैसे बहरे आदमी से बात करना। तुम जो समझना चाहते हो वही समझते हो। तुम्हें लाख कुछ और दिखाने के उपाय किए जाएं, तुम उनसे चूकते चले जाते हो। और बड़े मजे की बात है कि तुम जिन सिद्धांतों से मुक्त हो सकते थे, जो सिद्धांत तुम्हारे जीवन को नए आकाश से जोड़ देते, वे ही सिद्धांत तुम अपनी जंजीरों में ढाल लेते हो।

जैसे, यह बात बिल्कुल सच है कि बुद्धपुरुष भूल नहीं करते। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि जिन चीजों को तुम भूल समझते हो वैसी भूल बुद्धपुरुष नहीं कर सकते। बुद्धपुरुष कोई मुर्दा थोड़े ही है। सिर्फ मुर्दा बिल्कुल भूल नहीं करते। तो तुम्हारे हिसाब में तो सिर्फ मुर्दे ही बुद्धपुरुष हो सकते हैं। इसीलिए तो जीवित गुरु को पूजना बहुत कठिन है। मरे हुए गुरु को पूजना आसान होता है। क्योंकि मरा हुआ गुरु फिर कोई भूल नहीं कर सकता है।

बुद्धपुरुष का तुमने क्या अर्थ ले लिया है? जैसे कि पीछे मैंने कहा कि बुद्ध एक मार्ग से गुजरते थे। एक मक्खी उनके कंधे पर आकर बैठ गई। वे बात कर रहे थे आनंद से, उन्होंने उसे उड़ा दिया। मक्खी तो उड़ गई, फिर वे रुक गए। और उन्होंने फिर से अपना हाथ उठाया और बड़े आहिस्ता से मक्खी को उड़ाने को गए। आनंद ने पूछा, अब आप क्या करते हैं, मक्खी तो जा चुकी। बुद्ध ने कहा, अब मैं ऐसे उड़ाता हूं जैसे उड़ाना चाहिए था।

तुझसे बात में लगा था, बिना होश के मक्खी उड़ा दी। चोट लग जाती कहीं, मक्खी पर हाथ जोर से पड़ जाता कहीं--पड़ा नहीं संयोग--तो हिंसा हो जाती। मैंने जानकर नहीं की होती, फिर भी हो तो जाती। तत्क्षण दूसरे दिन प्रश्न आ गया कि बुद्धपुरुषों से तो कोई भूल होती नहीं, और बुद्धपुरुष ने कैसे मक्खी उड़ा दी आनंद से बातचीत करते हुए?

तुम पागल हो। बुद्धपुरुष से भूल नहीं होती, इसी का सबूत है उनका दुबारा मक्खी को उड़ाना। अगर तुम जैसे बुद्धू होते, तो चुप रह जाते। अगर वे भी इस सिद्धांत को मानते होते कि बुद्धपुरुष से भूल नहीं होती, कैसे उड़ाऊं। आनंद क्या कहेगा, कि आप बुद्ध होकर और भूल कर लिए?

बुद्धपुरुष से भूल नहीं होती, लेकिन अगर हो जाए तो बुद्धपुरुष तत्क्षण स्वीकार कर लेता है। बिना किसी के बताए भी। भूल नहीं होती इससे भी बड़ी बात यह है कि वह भूल को स्वीकार कर लेता है। तुमसे भूल भी होती है और भूल को स्वीकार करने में कष्ट भी होता है, अड़चन भी होती है। तुम भूल को छिपाते हो, तुम ढांकते हो। तुम चेष्टा करते हो कि किसी को पता न चले कि हो गई।

अब यह मक्खी उड़ाने की बात तो दुनिया में कभी किसी को पता भी न चलती। कि चलती? कौन बैठा था वहां खुर्दबीन लेकर? आनंद को भी पता न था, वे अगर दुबारा हाथ न ले जाते तो आनंद को भी पता न चलता। पर यह सवाल नहीं है।

बुद्ध ने इतना ही कहा कि अगर चैतन्य एक तरफ उलझा हो, जैसे आनंद से बात कर रहे थे तो सारा ध्यान उस तरफ था--बुद्धपुरुष जो भी करते हैं पूरे ध्यान से करते हैं--तो जब वे बात कर रहे थे तो सारा ध्यान उस तरफ था। वे तुम जैसे कटे-बंटे नहीं हैं कि बाएं देख रही है आधी खोपड़ी और आधी खोपड़ी दाएं देख रही है। वे पूरे ही आनंद की तरफ मुड़ गए होंगे।

तुम्हें भूल दिखाई पड़ती है, मुझे उनके ध्यान की एकाग्रता दिखाई पड़ती है। वे इतने तल्लीन होकर आनंद से बात करते थे कि जैसे सारा संसार मिट गया था। सारा संसार मिट गया था, मक्खी की तो बात क्या! ऐसी घड़ी में शरीर ने यंत्रवत मक्खी उड़ा दी। बुद्ध ने उड़ाई मक्खी भूल से, ऐसा कहना भी गलत है। क्योंकि बुद्ध तो मौजूद ही न थे। बुद्ध तो मौजूद थे आनंद से चर्चा में। शरीर ने उड़ा दी।

शरीर बहुत से काम यंत्रवत करता है। रात तुम सोए भी रहते हो, मच्छर आ जाता है, हाथ उड़ा देता है। उसके लिए जागने की भी जरूरत नहीं होती। तुम बैठे हो, कोई एक कंकड़ फेंक दे तुम्हारी आंख की तरफ, तो तुम्हें आंख बंद थोड़े ही करनी पड़ती है। आंख अपने से बंद हो जाती है। वह स्वचालित है, आटोमैटिक है। और अच्छा है कि स्वचालित है। नहीं तो कंकड़ पड़ जाता और तुम आंख बंद करने की सोचते ही रहते, करें बंद कि न करें। इसलिए प्रकृति ने तुम पर नहीं छोड़ा है। तुम्हारे लिए नहीं छोड़ा है कि तुम सोचो, फिर बंद करो। उसमें तो खतरा हो जाएगा। आंख जैसी नाजुक चीज तुम्हारे ऊपर नहीं छोड़ी जा सकती। प्रकृति ने इंतजाम किया है, जैसे ही कोई चीज करीब आएगी, आंख अपने से बंद हो जाएगी। तुम थोड़े ही आंख झपकाते हो, आंख झपकती है।

तुमने कभी ख्याल किया कि बहुत से काम शरीर चुपचाप किए चला जाता है। तुमने भोजन किया। शरीर पचाता है, तुम थोड़े ही पचाते हो। तुम्हें तो फिर ख्याल भी नहीं रखना पड़ता कि शरीर पचा रहा है। अपने आप पचाए चला जाता है।

उस घड़ी बुद्ध ने जो पहली दफा मक्खी उड़ाई, वह बुद्ध ने उड़ाई यह कहना ही गलत है। कहने की बात है, इसलिए उस तरह कही गई। हुआ ऐसा कि बुद्ध तो पूरे के पूरे आनंद से चर्चा में मौजूद थे, मक्खी आ गई,

शरीर ने उड़ा दी। बुद्ध ने शरीर को सुधारा। जब दुबारा उन्होंने मक्खी उड़ाई तो उन्होंने शरीर को एक पाठ दिया कि ऐसे उड़ानी थी--मैं घर पर नहीं था तो भी गलती नहीं होनी चाहिए। मैं मौजूद नहीं था, तो भी गलती नहीं होनी चाहिए। अगर मैं न भी रहूं तो भी तुझे ऐसे ही मक्खी उड़ानी चाहिए जैसे बुद्धपुरुषों को शोभा देती है। यह शरीर को थोड़ा सा संशोधन किया।

लेकिन तत्क्षण दूसरे दिन सवाल आ गया कि बुद्धपुरुषों से भूल हो गई! तुम इतने उत्सुक हो भूल दूसरे की देखने में कि बुद्धपुरुषों में भी देखने का रस तुम्हारा छूटता नहीं। किसी ने एक दिन पूछा कि कभी-कभी मैं बोलने में किसी शब्द की भूल कर जाता हूं। बुद्धपुरुषों से भूल नहीं हो सकती। तो जाहिर है, या तो मैं बुद्धपुरुष नहीं हूं, या फिर बुद्धपुरुषों से भूल होती है। इसलिए मैं कहता हूं, तुम्हारे सामने बोलना करीब-करीब भैंस के सामने बीन बजाने जैसा है।

जब मैं तुमसे बोल रहा हूं तब मैं तुम्हारे साथ इतनी गहनता से हूं कि मैं मस्तिष्क पर ध्यान ही नहीं दे सकता। तो बोलने का काम और शब्द बनाने का काम तो मस्तिष्क का यंत्र कर रहा है--जैसे बुद्ध के हाथ ने मक्खी उड़ा दी थी, ऐसा मेरा मस्तिष्क तुमसे बोले चला जाता है, मैं तो तुम्हारे साथ हूं। यंत्र कई दफे भूलें कर जाता है। यंत्र की भूलें मेरी भूलें नहीं हैं। और जिसने मुझे पहचाना, वह ऐसे सवाल न उठाएगा। ऐसे सवाल तुम्हारे मन में उठ जाते हैं, क्योंकि तुम आ गए हो भला मेरे पास लेकिन झुकने की इच्छा नहीं है। कोई भी बहाना मिल जाए, तो तुम अपना झुकना वापस ले लो--कि अरे! इस आदमी से एक शब्द की भूल हो गई! कहना कुछ था, कह कुछ और दिया। फिर पीछे सुधारना पड़ा। तुम इस तलाश में हो कि किसी भी तरह तुम्हारा समर्पण बच जाए।

सचाई यह है कि मैं एक बहुत कठिन काम कर रहा हूं। तुम्हारे साथ हो सकता हूं पूरा, बोलने की वजह से एक दूसरा काम भी मुझे साथ में करना पड़ रहा है। अच्छा तो यही होता कि मैं चुप हो जाता। तुम्हें भी भूल न मिलती, मेरी भी झंझट छूट जाती। लेकिन तुम शब्दों को भी नहीं समझ पा रहे हो, तुम मौन को भी न समझ पाते।

मेहरबाबा चुप हो गए। तो ऐसे लोग थे जो समझते थे कि बोलने को कुछ नहीं आता इसलिए चुप हो गए। तुम वहां भी भूल खोज लोगे। बुद्ध ने बहुत से प्रश्नों के जवाब न दिए, तो सुनने वालों ने समझा कि इनको कुछ आता नहीं है। जब आता ही नहीं तो जवाब कैसे देंगे? बुद्ध ने इसलिए जवाब नहीं दिए कि जवाब उन बातों के दिए ही नहीं जा सकते। उन बातों का जवाब केवल वही दे सकता है जो जानता न हो। जो जानता है, वह चुप रह जाएगा।

जब मैं तुमसे बोल रहा हूं तो मैं एक अति कठिन काम कर रहा हूं। पहला, कि तुम्हारी और मेरी उपस्थिति संपूर्ण रूप से एक हो जाए। तो बोल नहीं सकता। या फिर मैं बोलूं तो तुमसे मेरी उपस्थिति का कोई मिलन न हो पाए। तो फिर बोल सकता हूं, लेकिन वे शब्द फिर कोरे होंगे। तब शब्द की कोई भूल न होगी। पंडित से कभी शब्द की भूल नहीं होती। बुद्धों से होती है। पंडित शब्द में कुशल होता है, क्योंकि यंत्र को ही निखारता रहता है।

शब्द तो कामचलाऊ हैं। जो मुझे कहना है, वह इन कामचलाऊ शब्दों से तुम समझ लेना। तुम यह बैठे मत सोच लेना कि व्याकरण की कोई भूल हो गई। तो बुद्धपुरुषों से कैसे भूल हो सकती है? व्याकरण मुझे आती ही नहीं। इतना चला ले रहा हूं वह भी चमत्कार है! मौन आता है, भाषा नहीं आती। किसी तरह चला ले रहा हूं।

अब इन मित्र ने पूछा है कि "होशपूर्ण व्यक्ति भूल नहीं करता, तो कृपया मेरे नाम में अंग्रेजी में तो लिखा है--स्वामी श्यामदेव भारती, और हिंदी में लिखा है--स्वामी श्यामदेव सरस्वती।"

जरूर मैं तुम्हें देखने में लग गया होऊंगा जब ये नाम लिखे। और संभावना इसकी है श्यामदेव भारती! श्यामदेव सरस्वती! कि तुम दो आदमी हो, एक नहीं। स्प्लिट, टूटे हुए। दर्पण में दो चेहरे बन गए होंगे। इस तरह भी तुम देख सकते थे। लेकिन उस तरह देखोगे तो तुम्हारी जिंदगी तुम्हें बदलनी पड़े! तुमने तत्क्षण देखा कि अरे! बुद्धपुरुष से भूल हो गई। कहां फंस गए? कोई और बुद्धपुरुष खोजें, जो श्यामदेव सरस्वती लिखे तो श्यामदेव सरस्वती ही लिखे।

झेन फकीर हुआ लिंची। वह अपने शिष्यों को नाम दे देता और भूल जाता। किसी को कोई नाम दे देता और जब वह दूसरे दिन उसको बुलाता तो वह किसी और नाम से बुलाता। लोग कहते, यह भी क्या बात हुई? हमने तो सुना है कि बुद्धपुरुष कभी इस तरह का विस्मरण नहीं करते।

लिंची कहता, लेकिन जिसको मैंने नाम दिया था कल, वह अब है कहां? तुम कुछ और ही होकर आ गए हो। तुम्हीं आते जो कल थे, तो पहचान भी लेता। तुम्हीं बदलकर आ गए तो अब मैं क्या करूं?

दूसरा फकीर हुआ बोकोजू। वह रोज सुबह उठकर कहता, बोकोजू! और फिर खुद कहता, यस सर! जी हां, यहीं हूं। उसके शिष्य पूछते कि यह क्या मामला है? वह कहता, रात सोने में भूल जाते हैं कि कौन सोया था! सुबह अगर याद न कर लो, ऐसा दो-चार-दस दिन निकल जाएं, अपना नाम ही भूल जाए! क्योंकि मैं कोई नाम तो नहीं हूं।

मन की इस वृत्ति को थोड़ा बदलो। अगर मेरी कोई भूल होगी, तो उसको मैं भोगूंगा, तुम क्यों परेशान हो? मेरे पाप, मेरी भूलें मुझे भटकाएंगे। तुम अपनी भूलों को सुधार लो। तुम अपने होश को सम्हाल लो। और इस तरह की व्यर्थ की बातें मत पूछो।

अंतिम प्रश्नः पतंजलि और सारे बुद्धपुरुषों ने कहा है, समाधि। परंतु कृष्णमूर्ति कहते हैं, समझ। समाधि से तो लगता है समझ फलित हो सकती है, परंतु समझ से समाधि कैसे फलित हो सकती है? क्या केवल समझ से बुद्धत्व की स्थिति प्राप्त की जा सकती है? ओशो, इसे ठीक से समझाएं।

शब्दों का ही भेद है समझ और समाधि में। जिसे कृष्णमूर्ति समझ कहते हैं, उसी को पतंजलि समाधि कहते हैं। तुम्हारी अड़चन मैं समझता हूं कहां है। क्योंकि तुम सोचते हो समझदार तो तुम हो। इसलिए क्या अकेली समझ से समाधि फलित हो सकती है? क्योंकि अगर ऐसा होता, तब तो समाधि फलित हो गई होती, समझदार तुम हो।

बुरा न मानना, समझदार भी तुम नहीं हो, समाधि भी तुम्हें अभी फलित नहीं हुई। समझ तो समाधि बन ही जाती है। समझ और समाधि एक ही घटना के नाम हैं।

कृष्णमूर्ति को पुराने शब्दों का उपयोग करने में थोड़ी अड़चन है। अड़चन यही है कि पुराने शब्द पुराने अर्थों से बहुत बोझिल हो गए हैं। इसलिए कृष्णमूर्ति नए शब्दों का उपयोग करते हैं। लेकिन शब्दों का तुम चाहे कुछ भी, कितना ही नया उपयोग करो, तुम गुलाब के फूल को गुलाब कहो या चमेली कहना शुरू कर दो, इससे गुलाब का फूल न बदल जाएगा। तुम्हारे चमेली कहने से तुम गुलाब के फूल को न बदल दोगे। तुम नाम बदलते

चले जाओ, गुलाब का फूल गुलाब ही रहेगा। आदमी ने परमात्मा की कितनी प्रतिमाएं बनायीं। प्रतिमाएं अलग-अलग हैं, परमात्मा एक है।

कृष्णमूर्ति किसे समझ कहते हैं? अगर उनकी तुम परिभाषा समझोगे, तो तुम पाओगे वह परिभाषा वही है जिसको पतंजलि ने समाधि कहा है। क्या है कृष्णमूर्ति की परिभाषा समझ की? वे कहते हैं, समझ का अर्थ है होश, परिपूर्ण जागृति। वे कहते हैं, समझ का अर्थ है विचारों के ऊहापोह का शांत हो जाना। निर्मल दृष्टि का आविर्भाव। ऐसे देखना कि देखो तो जरूर, लेकिन चिंतन का धुआं तुम्हारी आंखों पर न हो। धुएं से रहित जब तुम्हारी चेतना की ज्योति जलती है, तब समझ।

पतंजलि भी यही कहता है--निर्विचार, निर्विकल्प। न कोई सोच-विचार, न कोई कल्प-विकल्प मन में, वही स्थिति समाधि। समाधि का अर्थ होता है समाधान। जहां सब चिंतन समाप्त हो गया, सब प्रश्न गिर गए, उस समाधान की अवस्था में तुम एक दर्पण बन जाते हो। उस दर्पण में जो है--"जो है" कृष्णमूर्ति का शब्द है परमात्मा के लिए। कृष्णमूर्ति कहते हैं--दैट व्हिच इज, जो है। पतंजलि कहेगा-- सत्य। मीरा कहेगी--कृष्ण। बुद्ध कहेंगे--निर्वाण। ये उनके अपने-अपने शब्द हैं। जो है, वह तुम्हें उसी क्षण दिखाई पड़ेगा जब तुम्हारी सब धारणाएं गिर जाएंगी। जब तक तुम धारणा से देखोगे, तब तक तुम वही देख लोगे जो तुम्हारी धारणा दिखा देगी। जैसे किसी ने रंगीन चश्मा लगाकर संसार देखा, तो उसी रंग का दिखाई पड़ने लगता है। हर धारणा का रंग है। समझ निर्धारणा है। उसका कोई रंग नहीं। समझ का अर्थ है, वही दिखाई पड़ जाए जो है। जैसा है, वैसा ही दिखाई पड़े।

तो इन शब्दों के बहुत जाल में तुम मत पड़ना। तुम्हें जो रुच जाए, जो भा जाए। समझ भा जाए, ठीक। मगर मेरा ख्याल है, समझ से तुम्हें अड़चन इसीलिए होती है कि तुम सोचते हो समझदार तो हम हैं। समाधि को पाना है। शायद तुम यह भी सोचते हो कि चूंकि हम समझदार हैं इसीलिए तो समाधि पाने निकले। नासमझ कहीं समाधि पाने की चेष्टा करते हैं! लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, नासमझ वही है जिसने अपने को समझदार समझ लिया है। सभी नासमझ अपने को समझदार समझते हैं, तुम्हीं थोड़े ही।

समझदार वही है जिसने अपनी नासमझी पहचान ली है। और जिसने अपनी नासमझी पहचान ली है, वह धीरे-धीरे--दो उपाय हैं उसके--या तो वह शुद्ध समझदारी के ही सूत्र को बड़ा करता चला जाए। प्रत्येक कृत्य जागकर करने लगे, होश से करने लगे--उठे तो होशपूर्वक, बैठे तो होशपूर्वक, चले तो होशपूर्वक, जो कुछ भी करे उसके पीछे होश साध ले। और दूसरा उपाय पुराना उपाय है, कि अगर इतना न हो सके, तो कम से कम घड़ीभर, दो घड़ी चौबीस घंटे में से निकाल ले और उन दो घड़ियों को समाधि के क्षणों में बिताए, ध्यान में बिताए।

घड़ीभर अगर तुमने ध्यान में बिताया, तो धीरे-धीरे तुम पाओगे, उस ध्यान का प्रभाव चौबीस घड़ियों पर फैलने लगा। क्योंकि यह असंभव है कि तुम एक घंटे के लिए स्वस्थ हो जाओ और तेईस घंटे बीमार रहो। एक घंटे को भी जो स्वस्थ हो गया, उसके स्वास्थ्य की लहरें चौबीस घंटों पर फैल जाएंगी। तो पुराने मनीषियों ने कहा है, चौबीस घंटे तुम आज शायद निकाल भी न पाओ--तुमसे आशा भी रखनी उतनी उचित नहीं है--तुम घड़ीभर निकाल लो। ऐसा नहीं कि उन्हें पता नहीं कि घड़ीभर से क्या होगा? लेकिन शुरुआत होगी। और जब हाथ पकड़ में आ जाए, तो फिर धीरे-धीरे पूरे सत्य को ही पकड़ा जा सकता है।

कृष्णमूर्ति कहते हैं, अलग से ध्यान करने की कोई जरूरत नहीं। ठीक ही कहते हैं। जिन्होंने अलग से करने को कहा है वे भी जानते हैं कि अलग से करने की कोई जरूरत नहीं। लेकिन अभी तुम चौबीस घंटे कर सकोगे, इतनी अपेक्षा वे नहीं करते।

कृष्णमूर्ति ने तुम पर ज्यादा भरोसा कर लिया। पतंजलि उतना भरोसा तुम पर नहीं करते। और इसलिए पतंजलि ने तो तुम में से कुछ को समाधि तक पहुंचा दिया, कृष्णमूर्ति न के बराबर किसी को पहुंचा पाए हों। तुम पर जरा ज्यादा भरोसा कर लिया। तुम घुटने से सरक-सरककर चलते थे। कृष्णमूर्ति ने मान लिया कि तुम दौड़कर चल सकते हो।

कृष्णमूर्ति ने जो बात कही है, अपने हिसाब से कह दी, तुम्हारी चिंता नहीं की। पतंजलि ने जो बात कही है उसमें तुम्हारी चिंता है। और एक-एक कदम तुम्हें उठाने की बात है। पतंजलि ने सीढ़ियां रखी हैं, कृष्णमूर्ति ने छलांग। तुम सीढ़ियां चढ़ने तक की हिम्मत नहीं जुटा पाते, तुम छलांग क्या खाक लगाओगे!

और अक्सर ऐसा होता है कि जो सीढ़ियों पर चढ़ने की हिम्मत नहीं जुटा पाते वे कृष्णमूर्ति में उत्सुक हो जाते हैं। क्योंकि यहां तो सीढ़ियां चढ़नी ही नहीं, छलांग लगानी है। और वे कभी यह सोचते ही नहीं कि हम सीढ़ियां चढ़ने तक का साहस नहीं कर पा रहे, हम छलांग कैसे लगाएंगे? लेकिन, छलांग लगानी है, सीढ़ियां चढ़ने से क्या होगा, इस भांति बहाना मिल जाता है। सीढ़ियां चढ़ने से बच जाते हैं और छलांग तो लगानी किसको है?

जितना ज्यादा मैंने तुम्हारे भीतर झांककर देखा उतना ही पाया कि तुम अपने को धोखा देने में बहुत कुशल हो। तुम्हारी सारी समझदारी वही है। कृष्णमूर्ति ने तुम पर जरूरत से ज्यादा आस्था कर ली। तुम इस योग्य नहीं। इसलिए कृष्णमूर्ति जीवनभर चिल्लाते रहे और किसी को कोई सहायता नहीं पहुंची। क्योंकि वे वहां से मानकर चलते हैं जहां तुम नहीं हो। और जो लोग उनके आसपास इकट्ठे हुए, उनमें अधिक लोग ऐसे हैं जो कुछ भी नहीं करना चाहते, उनको बहाना मिल गया। उन्होंने कहा, करने से कहीं कुछ होगा? यह तो होश की बात है, करने से क्या होगा? करने से भी बच गए, होश तो साधना किसको है?

मेरे पास रोज ऐसी घटनाएं आती हैं। अगर मैं किसी को कहता हूं कि तुम शांत-ध्यान करो, तो वह कुछ दिनों बाद आकर कहता है कि ऐसा शांत बैठने से कुछ नहीं होता। और शांत बैठने से होगा भी क्या? ऐसा आंख बंद करने से कहीं कुछ ध्यान हुआ है? अगर मैं उनको कहता हूं कि छोड़ो, सक्रिय-ध्यान करो। कुछ दिन बाद वे आकर कहते हैं कि ऐसे नाचने-कूदने-उछलने से क्या होगा? अरे, ध्यान तो शांत होना चाहिए! वह आदमी--वही आदमी--भूल ही जाता है। जब सक्रिय का कहो, तब वह शांत की सोचता है। क्योंकि तब शांत की आड़ में सक्रिय से बच जाता है। जब शांत की कहो, तब वह सक्रिय की सोचता है। सक्रिय की आड़ में शांत से बच जाता है। तुम बचने ही चले हो? फिर तुम्हारी मर्जी। बदलना है या बचना है?

कृष्णमूर्ति के शब्द बहुमूल्य हैं, लेकिन बेईमानों के हाथ में पड़ गए। और बेईमानों को बड़ी राहत मिल गई। न पूजा करनी, न प्रार्थना करनी, न ध्यान करना, सिर्फ समझ। और समझ, समझ तो है ही तुम्हारे पास। तब उनकी तकलीफ यह होती है कि समझ तो हमारे पास है ही, पूजा करनी नहीं, ध्यान करना ही नहीं, प्रार्थना करनी नहीं, समाधि नहीं आ रही है?

समझ भी तुम्हारे पास नहीं है।

मैं तुमसे कहता हूं, कृष्णमूर्ति की समझ पतंजलि की समाधि से ज्यादा कठिन है। क्योंकि पतंजलि ने टुकड़े-टुकड़े करके सीढ़ियां बना दी हैं। लंबे रास्ते को छोटे-छोटे खंडों में तोड़ दिया है।

बुद्ध एक जंगल से गुजरते थे, राह भटक गए थे। अब तुम कहोगे कि बुद्धपुरुष और राह भटक जाते हैं! बुद्धपुरुष अगर राह भटक ही न सकते हों, तो मुर्दा। राह भटक गए, जहां पहुंचना था न पहुंच पाए, देर होने लगी। तो आनंद ने राहगीर से पूछा कि गांव कितनी दूर है? उस राहगीर ने कहा, बस दो कोस। चल पड़े, दो कोस पूरे हो गए, लेकिन गांव का कोई पता नहीं। फिर किसी राहगीर को पूछा। उसने कहा, बस दो कोस। आनंद ने कहा, ये लोग कैसे हैं? इनका कोस कितना बड़ा? दो कोस हम पार हो गए। पहला आदमी धोखा दे गया मालूम होता है। या उसे पता नहीं था, जवाब देने के मजे में जवाब दे गया। क्योंकि गुरु होने का जब मौका मिले तो कोई छोड़ता नहीं। तुम्हें पता भी न हो कि कितनी दूर है, कह दिया; अब कम से कम कहने से पता तो चला कि पता है।

फिर बुद्ध मुस्कुराते रहे। दो कोस फिर पूरे हो गए, अब भी गांव का कोई पता नहीं। आनंद ने कहा, ये इस गांव के आदमी सभी झूठे मालूम होते हैं। फिर किसी को पूछा। उसने कहा कि बस दो कोस। तब तो आनंद गुस्से में आ गया। उसने कहा, हद्द हो गई, जो देखो वही दो कोस कहता है! दो कोस का मतलब कितना होता है?

बुद्ध ने कहा, नाराज न होओ। इस गांव के लोग बड़े करुणावान हैं। चार कोस तो चला दिया उन्होंने। अगर पहला आदमी कहता दस कोस, आठ कोस, शायद हम थककर ही बैठ जाते कि अब कहां जाना! अब नहीं चलना हो सकता। दो कोस के भरोसे पर चल लिए, दो कोस पार हो गया। फिर दो कोस के भरोसे पर चल लिए, वह भी पार हो गया। अब इसकी मान लो। ऐसा लगता है कि अब दो ही कोस है। छह कोस रहा होगा शुरू में।

जब वे पहुंच गए दो कोस के बाद तो आनंद ने बुद्ध से क्षमा मांगी कि मुझे क्षमा कर दें। मैं तो समझा कहां के झूठे, बेईमान, दुष्ट लोग हैं कि कम से कम रास्ता तक सही नहीं बता सकते। लेकिन बुद्ध ने कहा, करुणावान हैं।

पतंजलि ज्यादा करुणावान हैं। कृष्णमूर्ति कठोर हैं। कृष्णमूर्ति उतना ही बता देते हैं जितना है। वे कहते हैं, हजार कोस। तुम बैठ गए। तुमने कहा, अब देखेंगे। पतंजलि कहते हैं, बस दो कोस है। जरा चल लो, पहुंच जाओगे। पतंजलि को भी पता है हजार कोस है। लेकिन तुम्हारी हिम्मत हजार कोस चलने की एक साथ हो नहीं सकती। तुमसे उतना ही कहना उचित है जितना तुम चल सको। पतंजलि मंजिल को देखकर नहीं कहते, तुमको देखकर कहते हैं कि तुम्हारे पैरों की हिम्मत कितनी, साहस कितना, सामर्थ्य कितनी? दो कोस। देख लेते हैं कि दो कोस यह आदमी चल सकता है। अगर दो कोस चल सकता है तो ढाई कोस बता दो। दो कोस के सहारे आधा कोस और भी चल जाएगा। फिर बता देंगे ढाई कोस। जल्दी क्या है? और धीरे-धीरे पहुंचा देंगे।

पतंजलि आहिस्ता-आहिस्ता क्रमबद्ध तोड़ते हैं। इसलिए पतंजलि का पूरा योगशास्त्र बड़ी क्रमिक सीढ़ियां हैं। एक-एक कदम, एक-एक कदम पतंजलि हजारों को ले गए। कृष्णमूर्ति नहीं ले जा सके।

और कुछ ऐसा नहीं है कि कृष्णमूर्ति ने यह बात पहली दफे कही है। कृष्णमूर्ति जैसे चिंतन के लोग पहले भी हुए हैं। उन्होंने भी इतनी ही बात कही है, यही बात कही है, वे भी किसी को नहीं पहुंचा सके।

कृष्णमूर्ति की ज्यादा इच्छा यह है कि तुमसे सच कहा जाए। सत्य की बड़ी प्रामाणिकता है। वे कहते हैं, हजार कोस है तो हजार ही कोस कहना है। एक कोस भी कम करके हम क्यों कहें, झूठ क्यों बोलें? कृष्णमूर्ति कहते हैं, कहीं झूठ बोलने से किसी को सत्य तक पहुंचाया जा सकता है?

मैं तुमसे कहता हूं, हां! पहुंचाया जा सकता है। पहुंचाया गया है। पहुंचाया जाता रहेगा। और तुम अनुग्रह मानना उनका जिन्होंने तुम्हारे कारण झूठ तक बोलने की व्यवस्था की है। जो तुम्हारी वजह से झूठ तक बोलने को राजी हो गए।

सत्य को कह देना बहुत कठिन नहीं है। अगर तुम्हारी चिंता न की जाए, तो सत्य को कह देने में क्या कठिनाई है? जैसा है वैसा कह दिया, बात खतम। अगर तुम्हारी चिंता की जाए, तो वैसा कहना होगा जहां से तुम्हें खींचना है। तुम एक गहरे गर्त में पड़े हो। तुम्हारे अंधकार में रोशनी पहुंचती ही नहीं। तुमसे रोशनी की बात भी क्या करनी! तुम्हें तो धीरे-धीरे, शनैः-शनैः अंधेरे के बाहर लाना है। तुमसे कुछ कहना जरूरी है जिसका तुमसे आज तालमेल बैठ जाए। कल की कल देख लेंगे।

पर ये दो दृष्टिकोण हैं। जिसको जो जम जाए। जिसको जो रम जाए। एक बात भर ख्याल रखना, न तो पतंजलि की समाधि का तुम्हें अभी पता है, न कृष्णमूर्ति की समझ का। वे दोनों एक ही चीज के दो नाम हैं। और तुम यह जान लेना कि तुम नासमझ हो और समाधिशून्य हो। इसे जानकर ही अगर तुम चलोगे तो जिसको बुद्ध ने कहा है शिष्य, तुम शिष्य हो गए।

और जीवन को वे ही जीत लेते हैं जो सीखने में समर्थ हैं। और धर्म का फूलों से भरा पथ उन्हीं को उपलब्ध हो जाता है जिनके जीवन में शिष्यत्व की संभावना, शिष्यत्व का स्रोत खुल गया।

आज इतना ही।

सत्रहवां प्रवचन

प्रार्थना स्वयं मंजिल

न परेसं विलोमानि न परेसं कताकतं।
अत्तनो" व अवेक्खेय्य कतानि अकतानि च।। 44।।

यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवंतं अगंधकं।
एवं सुभाषिता वाचा अफला होति अकुब्बतो।। 45।।

यथापि रुचिरं पुप्फं वण्णवंतं सगंधकं।
एवं सुभाषिता वाचा सफला होति कुब्बतो।। 46।।

यथापि पुप्फरासिम्हा कयिरा मालागुणे बहु।
एवं जातेन मच्चेन कत्तब्बं कुसलं बहुं।। 47।।

न पुप्फगंधो पटिवातमेति न चंदनं तगरं मल्लिका वा।
सतंच गंधो पटिवातमेति सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवाति।। 48।।

दिल है कदमों पर किसी के सर झुका हो या न हो
बंदगी तो अपनी फितरत है खुदा हो या न हो

बुद्ध ने जगत को एक धर्म दिया, मनुष्य को एक दिशा दी, जहां प्रार्थना परमात्मा से बड़ी है; जहां मनुष्य का हृदय--पूजा-अर्चना से भरा--परमात्मा से बड़ा है।

असली सवाल इसका नहीं है कि परमात्मा हो। असली सवाल इसका है कि मनुष्य का हृदय प्रार्थना से भरा हो। प्रार्थना में ही मिल जाएगा वह जिसकी तलाश है। और प्रार्थना मनुष्य का स्वभाव कैसे हो जाए!

परमात्मा हुआ और फिर तुमने प्रार्थना की, तो प्रार्थना की ही नहीं। रिश्वत हो गई। परमात्मा हुआ और तुम झुके, तो तुम झुके ही नहीं। कोई झुकाने वाला हुआ तब झुके, तो तुम नहीं झुके। झुकाने वाले की सामर्थ्य रही होगी, शक्ति रही होगी। लेकिन कोई परमात्मा न हो और तुम झुके, तो झुकना तुम्हारा स्वभाव हो गया।

बुद्ध ने धर्म को परमात्मा से मुक्त कर दिया। और धर्म से परमात्मा का संबंध न रह जाए तो धर्म अपने ऊंचे से ऊंचे शिखर को पाता है। इसलिए नहीं कि परमात्मा नहीं है, बल्कि इसलिए कि परमात्मा के बिना झुकना आ जाए तो झुकना आ गया।

इसे थोड़ा समझने की फिक्र करो।

तुम जाते हो और झुकते हो। झुकने के पहले पूछते हो, परमात्मा है? अगर है तो झुकोगे। परमात्मा के सामने झुकते हो तो इसीलिए कि कुछ लाभ, कुछ लोभ, कुछ भय, कुछ भविष्य की आकांक्षा--कोई महत्वाकांक्षा काम कर रही है। परमात्मा कुछ दे सकता है इसलिए झुकते हो। लेकिन झुकना तुम्हारी फितरत नहीं, तुम्हारा

स्वभाव नहीं। बेमन से झुकते हो। अगर परमात्मा कुछ न दे सकता हो, तो तुम झुकोगे? अगर झुकने में और परमात्मा तुमसे छीन लेता हो, तो तुम झुकोगे? झुकने में हानि हो जाती हो, तो तुम झुकोगे? झुकना स्वार्थ है। स्वार्थ से जो झुका, वह कैसा झुका? वह तो सौदा हुआ, व्यवसाय हुआ।

ऐसे तो तुम संसार में भी झुकते हो। जिनके हाथ में ताकत है उनके चरणों में झुकते हो। जिनके पास धन है, पद है, उनके चरणों में झुकते हो। तो तुम्हारा परमात्मा शक्ति का ही विस्तार हुआ, धन और पद का ही विस्तार हुआ। इसीलिए तो लोगों ने परमात्मा को ईश्वर का नाम दिया है। ईश्वर यानी ऐश्वर्य। ऐश्वर्य के सामने झुकते हो। ईश्वर को परमपद कहा है। उससे ऊपर कोई पद नहीं। पद के सामने झुकते हो। तो यह राजनीति हुई, धर्म न हुआ। और इसके पीछे लोभ होगा, भय होगा। प्रार्थना कहां?

दिल है कदमों पर किसी के सर झुका हो या न हो

और ध्यान रखना, जो किसी मतलब से झुकेगा, उसका सिर झुकेगा दिल नहीं, क्योंकि दिल हिसाब जानता नहीं। उसकी खोपड़ी झुकेगी, हृदय नहीं, क्योंकि हृदय तो बिना हिसाब झुकता है। हृदय तो कभी उनके सामने झुक जाता है जिनके पास न कोई शक्ति थी, न कोई पद था, न कोई ऐश्वर्य था। हृदय तो कभी भिखारियों के सामने भी झुक जाता है। सिर नहीं झुकता भिखारियों के सामने। वह सदा सम्राटों के सामने झुकता है। हृदय तो कभी फूलों के सामने झुक जाता है। कोई शक्ति नहीं, कोई सामर्थ्य नहीं। क्षणभर हैं, फिर विदा हो जाएंगे। हृदय तो कमजोर के सामने और नाजुक के सामने भी झुक जाता है। सिर नहीं झुकता।

सिर है मनुष्य का अहंकार। हृदय यानी मनुष्य का प्रेम।

दिल है कदमों पर किसी के सर झुका हो या न हो

दिल किसी के कदमों पर हो, काफी है। सर न झुका, चल जाएगा। झुक गया, ठीक। दिल के पीछे चला, ठीक। दिल की छाया बना, ठीक। दिल का साथ रहा, ठीक। न झुका, चल जाएगा। क्योंकि सिर के झुकने से कुछ भी संबंध नहीं है। तुम झुकने चाहिए। तुम्हारा वास हृदय में है--जहां तुम्हारा प्रेम है वहां। सिर झुकता है भय से। हृदय झुकता है प्रेम से। प्रेम और भय का मिलन कहीं भी नहीं होता।

इसलिए अगर तुम भगवान के सामने झुके हो कि भय था, डरे थे, तो सिर ही झुकेगा। और अगर तुम इसलिए झुके हो कि प्रेम का पूर आया, बाढ़ आई--क्या करोगे इस बाढ़ का? कहीं तो इसे बहाना होगा। कहीं तो उलीचना होगा। कूल-किनारे तोड़कर तुम्हारी इबादत बहने लगी। तुम्हारी प्रार्थना की बाढ़ आ गई--तब तुम्हारा हृदय झुकता है।

दिल है कदमों पर किसी के सर झुका हो या न हो

बंदगी तो अपनी फितरत है खुदा हो या न हो

और फिर कौन फिक्र करता है कि परमात्मा है या नहीं। बंदगी अपनी फितरत है। फिर तो स्वभाव है प्रार्थना। बहुत कठिन है यह बात समझनी। प्रेम स्वभाव होना चाहिए। प्रेमपात्र की बात ही मत पूछो। तुम कहते हो, जब प्रेमपात्र होगा तब हम प्रेम करेंगे। अगर तुम्हारे भीतर प्रेम ही नहीं तो प्रेमपात्र के होने पर भी तुम कैसे प्रेम करोगे? जो तुम्हारे भीतर नहीं है, वह प्रेमपात्र की मौजूदगी पैदा न कर पाएगी। और जो तुम्हारे भीतर है, प्रेमपात्र न भी हो तो भी तुम उसे गंवाओगे कहां, खोओगे कहां?

इसे ऐसा समझो। जो कहता है, परमात्मा हो तो हम प्रार्थना करेंगे, वह आस्तिक नहीं, नास्तिक है। जो कहता है, प्रेम है, हम तो प्रेम करेंगे, वह आस्तिक है। वह जहां उसकी नजर पड़ेगी वहां हजार परमात्मा पैदा हो जाएंगे। प्रेम से भरी हुई आंख जहां पड़ेगी वहीं मंदिर निर्मित हो जाएंगे। जहां प्रेम से भरा हुआ हृदय धड़केगा,

वहीं एक और नया काबा बन जाएगा, एक नई काशी पैदा होगी। क्योंकि जहां प्रेम है, वहां परमात्मा प्रगट हो जाता है।

प्रेम भरी आंख कण-कण में परमात्मा को देख लेती है। और तुम कहते हो, पहले परमात्मा हो तब हम प्रेम करेंगे। तो तुम्हारा प्रेम खुशामद होगी। तुम्हारा प्रेम प्रेम न होगा, सिर का झुकना होगा--हृदय का बहना नहीं।

असली सवाल प्रेमपात्र का नहीं है, असली सवाल प्रेमपूर्ण हृदय का है। बुद्ध ने इस बात पर बड़ा अदभुत जोर दिया। इसलिए बुद्ध ने परमात्मा की बात नहीं की। और जितने लोगों को परमात्मा का दर्शन कराया, उतना किसी दूसरे व्यक्ति ने कभी नहीं कराया। ईश्वर को चर्चा के बाहर छोड़ दिया और लाखों लोगों को ईश्वरत्व दिया। भगवान की बात ही न की और संसार में भगवत्ता की बाढ़ ला दी। इसलिए बुद्ध जैसा अदभुत पुरुष मनुष्य के इतिहास में कभी हुआ नहीं। बात ही न उठाई परमात्मा की और न मालूम कितने हृदयों को झुका दिया।

और ध्यान रखना, बुद्ध के साथ सिर को झुकने का तो सवाल ही न रहा। न कोई भय का कारण है, न कोई परमात्मा है, न डरने की कोई वजह है। न परमात्मा से पाने का कोई लोभ है। मौज से झुकना है, आनंद से झुकना है। अपने ही अहोभाव से झुकना है, अनुग्रह से झुकना है।

जब वृक्ष लद जाता है फलों से तो झुक जाता है। इसलिए नहीं कि फलों को तोड़ने वाले पास आ रहे हैं। अपने भीतरी कारण से झुक जाता है। फल को खाने वाले पास आ रहे हैं इसलिए नहीं झुकता। अपने भीतर के ही अपूर्व बोझ से झुक जाता है। भक्त भगवान के कारण नहीं झुकता। अपने भीतर हृदय के बोझ के कारण झुक जाता है। फल पक गए, शाखाएं झुकने लगीं।

बंदगी तो अपनी फितरत है खुदा हो या न हो

बुद्ध का जोर प्रार्थना पर है, परमात्मा पर नहीं। और परमात्मा को काट देने से, बीच में न लेने से, बुद्ध का धर्म बहुत वैज्ञानिक हो गया। तब शुद्ध आंतरिक क्रांति की बात रह गई। ये सूत्र आंतरिक क्रांति के सूत्र हैं। समझने की कोशिश करो।

"दूसरों के दोष पर ध्यान न दे, दूसरों के कृत्य-अकृत्य को नहीं देखे, केवल अपने कृत्य-अकृत्य का अवलोकन करे।"

जिसकी नजर परमात्मा पर है उसकी नजर दूसरे पर है। जिसने परमात्मा को बाहर देखा, वह शैतान को भी बाहर देखेगा। इसे थोड़ा समझना। थोड़ा बारीक है। पकड़ोगे तो बहुत काम आ जाएगा सूत्र। अगर तुमने परमात्मा को बाहर देखा, तो शैतान को कहां देखोगे? उसे भी तुम बाहर देखोगे। तुम्हारे बाहर देखने का ढंग हर चीज को बाहर देखेगा। तब तुम्हारी नजर दूसरों के आचरण में अटकी रहेगी।

इसलिए तथाकथित धार्मिक आदमी सदा दूसरों के कृत्य-अकृत्य का विचार करते रहते हैं। दूसरे की आलोचना में लीन रहते हैं। कौन ने बुरा किया, किसने भला किया। कौन मंदिर गया, कौन नहीं गया। दूसरा ही उनके चिंतन में प्रभावी रहता है। इसलिए धार्मिक जिनको तुम कहते हो, उन्हें अपने को छोड़कर सारे जगत की फिक्र बनी रहती है--कौन पाप कर रहा है, कौन पुण्य कर रहा है। कौन नर्क जाएगा, कौन स्वर्ग जाएगा।

बुद्ध कहते हैं, तुम सिर्फ अपनी ही चिंता करना। तुम्हारे ऊपर तुम्हारे अतिरिक्त और किसी का दायित्व नहीं है। अगर तुम उत्तरदायी हो, तो सिर्फ अपने लिए। अगर अस्तित्व तुमसे पूछेगा, तो सिर्फ तुम्हारे लिए। तुम्हें जो जीवन का अवसर मिला है, उस अवसर में तुमने क्या कमाया, क्या गंवाया? तुम्हें जो जीवन के क्षण मिले, उन्हें तुमने खाली ही फेंक दिया या जीवन के अमरस से भर लिया? तुम्हारे जो कदम पड़े जीवन की राह पर, वे

मंजिल की तरफ पड़े या मंजिल से दूर गए? तुमसे और कुछ भी नहीं पूछा जा सकता, तुम किसी और के लिए जिम्मेवार भी नहीं हो। अपनी ही जिम्मेवारी पर्याप्त है।

"दूसरों के दोष पर ध्यान न दे।"

और ध्यान रखना, जो दूसरों के दोष पर ध्यान देता है वह अपने दोषों के प्रति अंधा हो जाता है। ध्यान तुम या तो अपने दोषों की तरफ दे सकते हो, या दूसरों के दोषों की तरफ दे सकते हो, दोनों एक साथ न चलेगा। क्योंकि जिसकी नजर दूसरों के दोष देखने लगती है, वह अपनी ही नजर की ओट में पड़ जाता है। जब तुम दूसरे पर ध्यान देते हो, तो तुम अपने को भूल जाते हो। तुम छाया में पड़ जाते हो।

और एक समझ लेने की बात है, कि जब तुम दूसरों के दोष देखोगे तो दूसरों के दोष को बड़ा करके देखने की मन की आकांक्षा होती है। इससे ज्यादा रस और कुछ भी नहीं मिलता कि दूसरे तुमसे ज्यादा पापी हैं, तुमसे ज्यादा बुरे हैं, तुमसे ज्यादा अंधकारपूर्ण हैं। इससे अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है कि मैं बिल्कुल ठीक हूं, दूसरे गलत हैं। बिना ठीक हुए अगर तुम ठीक होने का मजा लेना चाहते हो, तो दूसरों के दोष गिनना। और जब तुम दूसरों के दोष गिनोगे तो तुम स्वभावतः उन्हें बड़ा करके गिनोगे। तुम एक यंत्र बन जाते हो, जिससे हर चीज दूसरे की बड़ी होकर दिखाई पड़ने लगती है।

और जो दूसरे के दोष बड़े करके देखता है, वह अपने दोष या तो छोटे करके देखता है, या देखता ही नहीं। अगर तुमसे कोई भूल होती है, तो तुम कहते हो मजबूरी थी। वही भूल दूसरे से होती है तो तुम कहते हो पाप। अगर तुम भूखे थे और तुमने चोरी कर ली, तो तुम कहते हो, मैं करता क्या, भूख बड़ी थी! लेकिन दूसरा अगर भूख में चोरी कर लेता है, तो चोरी है। तो भूख का तुम्हें स्मरण भी नहीं आता।

जो तुम करते हो, उसके लिए तुम तर्क खोज लेते हो। जो दूसरा करता है, उसके लिए तुम कभी कोई तर्क नहीं खोजते। तो धीरे-धीरे दूसरे के दोष तो बड़े होकर दिखाई पड़ने लगते हैं, और तुम्हारे दोष उनकी तुलना में छोटे होने लगते हैं। एक ऐसी घड़ी आती है दुर्भाग्य की जब दूसरे के दोष तो आकाश छूने लगते हैं--गगनचुंबी हो जाते हैं--तुम्हारे दोष तिरोहित हो जाते हैं। तुम बिना अच्छे हुए अच्छे होने का मजा लेने लगते हो। यही तो तथाकथित धार्मिक की दुर्भाग्य की अवस्था है।

जिसने दूसरों के पाप देखे, वह अपने पुण्य गिनता है। चोरी तुम हजार रुपए की करो तो तुम भुला देते हो। दान तुम एक पैसे का दो तो तुम याद रखते हो। एक पैसे का दान भी बहुत बड़ा मालूम पड़ता है। हजार रुपए की चोरी भी छोटी मालूम पड़ती है। शायद हजार रुपए की चोरी करके, तुम एक पैसे का दान देकर उसका निपटारा कर लेना चाहते हो।

थोड़ा सोचो, धार्मिक लोगों ने कैसी-कैसी तरकीबें निकाली हैं। पाप करते हैं, गंगा में स्नान कर आते हैं। अब गंगा में स्नान करने का और पाप के मिटने से क्या संबंध हो सकता है! दूर का भी कोई संबंध नहीं हो सकता। गंगा का कसूर क्या है, पाप तुमने किया! और ऐसे अगर गंगा धो-धोकर सबके पाप लेती रही, तो गंगा के लिए तो नर्क में भी जगह न मिलेगी। इतने पाप इकट्ठे हो गए होंगे! और अगर इतना ही आसान हो--पाप तुम करो, गंगा में डुबकी लगा आओ और पाप हल हो जाएं--तब तो पाप करने में बुराई ही कहां रही? सिर्फ गंगा तक आने-जाने का श्रम है। तो जो गंगा के किनारे ही रह रहे हैं, उनका तो फिर कहना ही क्या!

तुमने तीर्थ बना लिए। तुमने छोटे-छोटे पुण्य की तरकीबें बना लीं, ताकि बड़े-बड़े पापों को तुम झुठला दो, भुला दो। छोटा-मोटा अच्छा काम कर लेते हो, अस्पताल को दान दे देते हो--दान उसी चोरी में से देते हो

जिसका प्रायश्चित्त कर रहे हो--लाख की चोरी करते हो, दस रुपया दान देते हो। लेकिन लाख की चोरी को दस रुपए के दान में ढांक लेना चाहते हो! तुम किसे धोखा दे रहे हो?

या, इतना भी नहीं करता कोई। रोज सुबह बैठकर पांच-दस मिनट माला जप लेता है। माला के गुरिए सरका लेता है, सोचता है हल हो गया। या राम-राम जप लेता है। या रामनाम छपी चदरिया ओढ़ लेता है। सोचता है मामला हल हो गया। जैसे राम पर कुछ एहसान हो गया। अब राम समझें! चदरिया ओढ़ी थी। कहने को अपने पास बात हो गई। मंदिर गए थे, हिसाब रख लिया है।

जीवन अंधेरे से भरा रहे और प्रकाश की ज्योति भी नहीं जलती! सिर्फ अंधेरी दीवालों पर तुम प्रकाश शब्द लिख देते हो, या दीए के चित्र टांग देते हो। प्यास लगी हो तो पानी शब्द से नहीं बुझती। अंधेरा हो तो दीए शब्द से नहीं मिटता।

मंजरे-तस्वीर दर्दे-दिल मिटा सकता नहीं

आईना पानी तो रखता है पिला सकता नहीं

तुम अगर सिर्फ तस्वीर का अवलोकन करते रहो--

मंजरे-तस्वीर दर्दे-दिल मिटा सकता नहीं

तो तुम्हारे दिल की पीड़ा न मिटेगी तस्वीरों के देखने से। प्रेमी की तस्वीर लिए बैठे रहो, इससे कहीं कोई प्रेमी मिला है?

आईना पानी तो रखता है पिला सकता नहीं

आईने में कैसी पानी की झलक है, पर उससे तुम्हारी प्यास न बुझेगी। शास्त्र शब्द दे सकते हैं, सत्य नहीं। अंधेरे की दीवालों पर बनाई गई दीए की तस्वीरें धोखा दे सकती हैं, रोशनी नहीं।

और जो व्यक्ति दूसरों के दोष पर ध्यान देता है, वह अपने दोष पर तो ध्यान देता नहीं, जो छोटे-मोटे... जिनको तुम पुण्य कहते हो, जिनको पुण्य कहना फिजूल ही है। जिनको पुण्य केवल नासमझ कह सकते हैं, जो तुम्हारे पाप के ही सजावटों से ज्यादा नहीं है, पाप का हीशृंगार है जो, पाप के ही माथे पर लगी बिंदी है, पाप के ही हाथों में पड़ी चूड़ी है, पाप के ही पैरों में बंधे घूंघर हैं, उन्हें तुम पुण्य कहते हो। उनका हिसाब रखते हो!

बुद्ध ने कहा, छोड़ो यह बात। दूसरों के दोष पर ध्यान न दो। उससे तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं है। तुम्हारा प्रयोजन केवल तुमसे है। दूसरों के कृत्य-अकृत्य मत देखो। केवल अपने कृत्य-अकृत्य का अवलोकन करो। सिर्फ अपना ही आब्जर्वेशन, अवलोकन।

यह शब्द समझ लेने जैसा है--अवलोकन। अवलोकन बुद्ध की प्रक्रिया है जीवन के अंधकार से मुक्त होने के लिए। बुद्ध यह नहीं कहते हैं कि तुम अपने पाप को देखो और दुखी होओ, पश्चात्ताप करो कि मैं पापी हूं। और न बुद्ध कहते हैं, तुम अपने पुण्य को देखो और बड़े फूले न समाओ और उछलकर चलो कि मैं बड़ा पुण्यात्मा हूं। बुद्ध कहते हैं, तुम अवलोकन करो।

अवलोकन का अर्थ होता है, तटस्थ दर्शन। बिना किसी निर्णय के। न यह कहना कि ठीक; न यह कहना कि बुरा, न भला; न पाप, न पुण्य। तुम कोई निर्णय मत लेना। तुम कोई मूल्यांकन मत करना। तुम सिर्फ देखना। जैसे कोई आदमी रास्ते के किनारे खड़ा हो जाए, भीड़ चलती है, देखता है। अच्छे लोग निकलते हैं, बुरे लोग निकलते हैं, उसे कुछ प्रयोजन नहीं। साधु निकलते हैं, असाधु निकलते हैं, प्रयोजन नहीं। या जैसे कोई लेट गया है घास पर क्षण भर, आकाश में चलते बादलों को देखता है। उनके रूप-रंग अलग-अलग। काले बादल हैं, शुभ्र बादल हैं, कोई हिसाब नहीं रखता, चुपचाप देखता रहता है।

अवलोकन का अर्थ है, एक वैज्ञानिक दृष्टि। तटस्थ-भाव। मात्र देखने पर ध्यान रखो। जोर देखने पर है। जो तुम देख रहे हो उसके निर्णय करने पर नहीं कि वह ठीक है या गलत। तुम न्यायाधीश मत बनो। तुम तराजू लेकर तौलने मत लगो। तुम मात्र द्रष्टा रहो। जिसको उपनिषद साक्षी कहते हैं, उसी को बुद्ध अवलोकन कहते हैं। बस देखो। जैसे अपना कुछ लेना-देना नहीं। एक तटस्थ-भाव। एक फासले पर खड़े हुए चुपचाप। और एक अदभुत क्रांति घटती है। जितने तुम तटस्थ होते जाते हो, उतना ही तुम्हें पता चलता है कि तुम अपने कृत्यों से अलग हो। पाप से भी अलग, पुण्य से भी अलग। और यह जो अलगपन है इसी का नाम मुक्ति है, मोक्ष है।

जो पाप के साथ अपने को एक समझता है, वह भ्रांति में है। जो पुण्य के साथ अपने को एक समझता है, वह भी भ्रांति में है। उसने कृत्य के साथ अपने को एक समझ लिया। उसने अपने को कर्ता समझ लिया।

अवलोकन करने वाला इस नतीजे पर आता है कि मैं केवल द्रष्टा हूं, कर्ता नहीं। फिर पाप और पुण्य दोनों ही मिट जाते हैं। जैसे स्वप्न में किए हों कभी। जैसे किसी उपन्यास में पढ़े हों कभी। जैसे कभी अफवाह सुनी हो। स्वयं से उनका कोई संबंध नहीं रह जाता। यही शुद्ध बुद्धत्व है। कभी-कभी तुम्हें भी अचानक क्षणभर को इसकी झलक मिल जाएगी; और क्षणभर को भी बिजली कौंध जाए तो जिंदगी फिर वही नहीं होती जो पहले थी। अवलोकन करो।

तुम जमाने की राह से आए

वरना सीधा था रास्ता दिल का

दूसरों के संबंध में सोचते-विचारते, बाजार में भटकते, संसार की लंबी परिक्रमा करते अपने तक आए।

तुम जमाने की राह से आए

वरना सीधा था रास्ता दिल का

अन्यथा जरा गर्दन झुकाने की बात थी। अवलोकन से तुम सीधे स्वयं में पहुंच जाओगे। हां, दूसरे के कृत्य-अकृत्य का विचार करते रहे, तो बड़ी परिक्रमा है, अनंत परिक्रमा है। अनंत जन्मों तक भी तुम यह विचार चुकता न कर पाओगे। कितने हैं दूसरे? किस-किस का हिसाब करोगे? किस-किस के लिए रोओगे, हंसोगे? किसकी प्रशंसा, किसकी निंदा करोगे? अगर ऐसे तुम चल पड़े... ।

मैंने सुना है कि एक आदमी भागा जा रहा था। राह के पास बैठे आदमी से उसने पूछा कि भाई, दिल्ली कितनी दूर है? उस आदमी ने कहा, जिस तरफ तुम जा रहे हो, बहुत दूर। क्योंकि दिल्ली तुम आठ मील पीछे छोड़ आए हो। अगर इसी रास्ते से जाने की जिद्द हो, तो सारी पृथ्वी की परिक्रमा करके जब आओगे--अगर बच गए--तो दिल्ली पहुंच जाओगे। अगर लौटने की तैयारी हो तो ज्यादा दूर नहीं है।

तुम जमाने की राह से आए

वरना सीधा था रास्ता दिल का

दिल्ली बिल्कुल पीछे है। आठ मील का फासला भी नहीं है। अवलोकन की बात है। निरीक्षण की बात है। जागृति की बात है, अप्रमाद की बात है। जरा होश साधना।

पहली बात, दूसरों का विचार मत करो। अपना ही विचार करने योग्य काफी है। आंख बंद करो, अपने ही कृत्यों को देखो। और अपने कृत्यों के भी निर्णायक मत बनो, अन्यथा अवलोकन समाप्त हो गया। तुम आसक्त हो गए। तुमने कहा यह ठीक है, तो प्रीति बनी। तुमने कहा यह ठीक नहीं, तो अप्रीति बनी। किसी कृत्य से घृणा हुई, किसी कृत्य से प्रेम हुआ। आसक्ति-अनासक्ति, राग-द्वेष पैदा हुआ, तो कृत्य तो दूर रहे राग-द्वेष के भावजाल में तुम खो गए। बस कृत्य को देखते रहो।

अगर घड़ीभर भी तुम रोज कृत्य का अवलोकन करते रहो, तो तुम्हें ऐसा ही अनुभव होगा जैसा आत्मा ने स्नान कर लिया। दिनभर उसकी ताजगी रहेगी। और दिनभर रह-रहकर लहरें आती रहेंगी आनंद की। रह-रहकर, रह-रहकर झोंके आ जाएंगे। पुलक आ जाएगी। एक मस्ती छा जाएगी! तुम झूम-झूम उठोगे, किसी भीतरी रस से। और यह जो भीतरी रस है, यह बुद्धि का नहीं है, हृदय का है।

जब तुम सोचते हो और निर्णय करते हो, बुद्धि सक्रिय हो जाती है। जब तुम मात्र देखते हो, तब हृदय का फूल खिलता है। जैसे ही तुमने निर्णय लेना शुरू किया, बुद्धि बीच में आई। क्योंकि निर्णय विचार का काम है। जैसे ही तुमने तौला, तराजू आया। तराजू बुद्धि का प्रतीक है। तुमने नहीं तौला, बस देखते रहे, तो बुद्धि को बीच में आने की कोई जरूरत ही न रही। मात्र देखने की अवस्था में, साक्षीभाव में, बुद्धि हट जाती है। और जीवन के जो गहरे रहस्य हैं उन्हें हृदय जानता है।

अक्ल को क्यों बताएं इश्क का राज

गैर को राजदां नहीं करते

और हृदय ने कोई राज प्रेम का, परमात्मा का बुद्धि को कभी बताया नहीं।

अक्ल को क्यों बताएं इश्क का राज

गैर को राजदां नहीं करते

पराए को कहीं कोई भेद की बातें बताता है? बुद्धि पराई है, उधार है। हृदय तुम्हारा है।

इसे थोड़ा समझो। जब तुम पैदा हुए, तो हृदय लेकर पैदा होते हो। बुद्धि समाज देता है, संस्कार देते हैं, शिक्षा देती है; घर, परिवार, सभ्यता देती है। तो हिंदू के पास एक तरह की बुद्धि होती है। मुसलमान के पास दूसरे तरह की बुद्धि होती है। जैन के पास तीसरे तरह की बुद्धि होती है। क्योंकि तीनों के संस्कार अलग, शास्त्र अलग, सिद्धांत अलग। लेकिन तीनों के पास दिल एक ही होता है। दिल परमात्मा का है। बुद्धियां समाजों की हैं।

रूस में कोई पैदा होता है, तो उसके पास कम्यूनिस्ट-बुद्धि होगी। ईसाई घर में कोई पैदा होता है, तो उसके पास ईसाई-बुद्धि होगी। बुद्धि तो धूल है बाहर से इकट्ठी की हुई। जैसे हृदय के दर्पण पर धूल जम जाए। दर्पण तो तुम लेकर आते हो, धूल तुम्हें मिलती है।

इस धूल को झाड़ देना जरूरी है। समस्त धर्म की गहनतम प्रक्रिया धूल को झाड़ने की प्रक्रिया है, कि दर्पण फिर स्वच्छ हो जाए, तुम फिर से बालक हो जाओ, तुम फिर हृदय में जीने लगो। तुम फिर वहां से देखने लगो जहां से तुमने पहली बार देखा था, जब तुमने आंख खोली थी। तब बीच में कोई बुद्धि न खड़ी थी। तब तुमने सिर्फ देखा था। वह था अवलोकन।

"जैसे कोई सुंदर फूल वर्णयुक्त होकर भी निर्गंध होता है, वैसे ही आचरण न करने वाले के लिए सुभाषित वाणी निष्फल होती है।"

दूसरा सूत्र। जैसे कोई सुंदर फूल रंग-बिरंगा है बहुत, वर्णयुक्त है, लेकिन फिर भी गंधशून्य। ऐसा ही पांडित्य है। रंग बहुत हैं उसमें, सुगंध बिल्कुल नहीं। जीवन में सुगंध तो आती है आचरण से। तुम जो जानते हो उससे जीवन में सुगंध नहीं आती। वह तो मौसमी फूल है। दूर से लुभावना लग सकता है। पास आने पर तुम उसे कागजी पाओगे। आदमी भला धोखे में आ जाए, मधुमक्खियां धोखे में नहीं आतीं। तितलियां धोखे में नहीं आतीं। भौंरे धोखे में नहीं आते। भौंरे धोखे में नहीं आते, तुम परमात्मा को कैसे धोखा दे सकोगे? तितलियां धोखे में नहीं आतीं, मधुमक्खियां धोखे में नहीं आतीं, तुम परमात्मा को कैसे धोखा दे सकोगे?

सम्राट सोलोमन के जीवन में कथा है। एक रानी उसके प्रेम में थी और वह उसकी परीक्षा करना चाहती थी कि सच में वह इतना बुद्धिमान है जितना लोग कहते हैं? अगर है, तो ही उससे विवाह करना है। तो वह आई। उसने कई परीक्षाएं लीं। वे परीक्षाएं बड़ी महत्वपूर्ण हैं।

उसमें एक परीक्षा यह भी थी--वह आई एक दिन, राज दरबार में दूर खड़ी हो गई। हाथ में वह दो गुलदस्ते, फूलों के गुलदस्ते लाई थी। और उसने सोलोमन से कहा दूर से कि इनमें कौन से असली फूल हैं, बता दो। बड़ा मुश्किल था। फासला काफी था। वह उस छोर पर खड़ी थी राज दरबार के। फूल बिल्कुल एक जैसे लग रहे थे।

सोलोमन ने अपने दरबारियों को कहा कि सारी खिड़कियां और द्वार खोल दो। खिड़कियां और द्वार खोल दिए गए। न तो दरबारी समझे और न वह रानी समझी कि द्वार-दरवाजे खोलने से क्या संबंध है। रानी ने सोचा कि शायद रोशनी कम है, इसलिए रोशनी की फिकर कर रहा है, कोई हर्जा नहीं। लेकिन सोलोमन कुछ और फिकर कर रहा था। जल्दी ही उसने बता दिया कि कौन से असली फूल हैं, कौन से नकली। क्योंकि एक मधुमक्खी भीतर आ गई बगीचे से और वह जो असली फूल थे उन पर जाकर बैठ गई। न दरबारियों को पता चला, न उस रानी को पता चला।

वह कहने लगी, कैसे आपने पहचाना? सोलोमन ने कहा, तुम मुझे धोखा दे सकती हो, लेकिन एक मधुमक्खी को नहीं।

मधुमक्खी को धोखा देना मुश्किल है, परमात्मा को कैसे दोगे?

बुद्ध कहते हैं, "जैसे कोई सुंदर फूल वर्णयुक्त होकर भी निर्गंध होता है, वैसे ही आचरण न करने वाले के लिए सुभाषित वाणी निष्फल होती है।"

तुम्हें जीवन के सत्यों का पता सोचने से न लगेगा। उन सत्यों को जीने से लगेगा। जीओगे तो ही पता चलेगा। जो ठीक लगे उसे देर मत करना। उसे कल के लिए स्थगित मत करना। जो ठीक लगे उसमें आज ही डुबकी लगाना। अगर तुम्हें अवलोकन की बात ठीक लग जाए, तो सोचते मत रहना कि कल करेंगे। ऐसे तुम्हारे जीवन में कभी सुगंध न आएगी। ऐसे यह हो सकता है कि अवलोकन के संबंध में तुम बातें करने में कुशल हो जाओ, और ध्यान के संबंध में तुम शास्त्रकार बन जाओ, लेकिन तुम्हारे जीवन में सुगंध न आएगी।

प्रार्थना के संबंध में जान लेना प्रार्थना को जानना नहीं है। प्रार्थना को तो वही जानता है जो करता है। प्रार्थना को तो वही जानता है जो डूबता है। प्रार्थना को तो वही जानता है जो प्रार्थना में मिट जाता है, जब प्रार्थना तुम्हारा अस्तित्व बनती है।

आचरण का अर्थ है, तुम्हारा ज्ञान तुम्हारा अस्तित्व हो। तुम जो जानते हो, वह सिर्फ ऊपर से चिपकी हुई बात न रह जाए। उसकी जड़ें तुम्हारे जीवन में फैलें। तुम्हारे भीतर से वह बात उठे। वह तुम्हारी अपनी हो। ऊपर से इकट्ठा ज्ञान ऐसा है जैसे तुमने भोजन तो बहुत कर लिया हो, लेकिन पचा न सके। उससे तुम बीमार पड़ोगे। उससे शरीर रुग्ण होगा। पचा हुआ भोजन जीवन देता है, ऊर्जा देता है। अनपचा भोजन जीवन को नष्ट करने लगता है। भूखे भी बच सकते हैं लोग ज्यादा देर तक, ज्यादा भोजन से जल्दी मर जाते हैं। बोझ हो जाता है पूरी व्यवस्था पर। और ज्ञान का तो भारी बोझ है।

तुम्हारा चैतन्य अगर दब गया है तो तुम्हारे ज्ञान के बोझ से। तुम जानते ज्यादा हो, जीए कम हो। एक असंतुलन हो गया है। बुद्ध कहते हैं, थोड़ा जानो, लेकिन उसे जीने में बदलते जाओ। थोड़ा भोजन करो, लेकिन ठीक से चबाओ, ठीक से पचाओ। रक्त, मांस-मज्जा बन जाए।

होश के बंदे समझेंगे क्या गफलत है क्या होशियारी

अक्ल के बदले जिस दिन दिल की ज्योति जलाकर देखेंगे

अक्ल के बदले जिस दिन दिल की ज्योति जलाकर देखेंगे

होश के बंदे समझेंगे क्या गफलत है क्या होशियारी

केवल वे ही समझ पाएंगे जो बुद्धि से गहरे उतरकर हृदय का दीया जलाएंगे। हृदय के दीए से अर्थ है, जो जानते हैं उसे जीवन बना लेंगे। जो समझा है, वह समझ ही न होगी समाधि बन जाएगी। जो सुना है, वह सुना ही नहीं पी लिया है।

"जैसे कोई सुंदर फूल वर्णयुक्त होकर भी निर्गंध होता है, वैसे ही आचरण न करने वाले के लिए सुभाषित वाणी निष्फल होती है।"

थोड़ा जानो, जीओ ज्यादा, और तुम पहुंच जाओगे। ज्यादा तुमने जाना और जीया कुछ भी नहीं, तो तुम न पहुंच पाओगे। तब तुम दूसरों की गायों का ही हिसाब रखते रहोगे, तुम्हारी अपनी कोई गाय नहीं। तुम गायों के रखवाले ही रह जाओगे, मालिक न हो पाओगे।

पंडित मत बनना। पापी भी पहुंच जाते हैं, पंडित नहीं पहुंचते। क्योंकि पापी भी आज नहीं कल जग जाएगा। दुख जगाता है। पंडित एक सुख का सपना देख रहा है कि जानता है। बिना जाने।

शास्त्र से बचना। शास्त्र जंजीर हो सकता है। सुभाषित, सुंदर वचन जहर हो सकते हैं। जिस चीज को भी तुम जीवन में रूपांतरित न कर लोगे वही जहर हो जाएगी। तुम्हारी जीवन की व्यवस्था में जो भी चीज पड़ी रह जाएगी बिना रूपांतरित हुए, बिना लहू-मांस-मज्जा बने, वही तुम्हारे जीवन में जहर का काम करने लगेगी। पंडित का अस्तित्व विषाक्त हो जाता है।

"जैसे कोई सुंदर फूल वर्णयुक्त होने के साथ-साथ सुगंधित होता है, वैसे ही आचरण करने वाले के लिए सुभाषित वाणी सफल होती है।"

तो ध्यान इस पर हो कि मेरा आचरण क्या है? मेरा होने का ढंग क्या है? मेरे जीवन की शैली क्या है? परमात्मा को मानो या न मानो, अगर तुम्हारा आचरण ऐसा है--घर लौटने वाले का, संसार की तरफ जाने वाले का नहीं। प्रत्याहार करने वाले का, अपनी चेतना के केंद्र की तरफ आने वाले का। अगर तुम्हारा आचरण ऐसा है--व्यर्थ का कूड़ा-करकट इकट्ठा करने वाले का नहीं, सिर्फ हीरे ही चुनने वाले का। अगर तुम्हारा आचरण हंस जैसा है कि मोती चुन लेता है, कि दूध और पानी में दूध पी लेता है, पानी छोड़ देता है।

हमने ज्ञानियों को परमहंस कहा है। तुमने कभी समझा, क्यों? दो कारणों से। एक तो हंस सार को असार से अलग कर लेता है। और दूसरा, हंस सभी दिशाओं में गतिवान है। वह जल में तैर सकता है, जमीन पर चल सकता है, आकाश में उड़ सकता है। उसके स्वातंष्य पर कहीं कोई सीमा नहीं है। जमीन हो तो चल लेता है। सागर हो तो तैर लेता है। आकाश हो तो उड़ लेता है। तीनों आयामों में, तीनों डायमेंशन्स में उसके लिए कहीं कोई रुकावट नहीं है। जिस दिन तुम सार और असार को पहचानने लगोगे, उस दिन तुम्हारा स्वातंष्य भी इतना ही अपरिसीम हो जाएगा जैसा हंस का। इसलिए हमने ज्ञानियों को परमहंस कहा है।

न जानने से ही बंधे हो। जमीन पर ही ठीक से रहना नहीं आता, पानी पर चलने की तो बात अलग! आकाश में उड़ना तो बहुत दूर! शरीर में ही ठीक से रहना नहीं आता, मन की तो बात अलग, आत्मा की तो बात बहुत दूर!

शरीर यानी जमीन। मन यानी जल। आत्मा यानी आकाश। इसलिए मन जल की तरह तरंगायित। शरीर थिर है पृथ्वी की तरह। सत्तर साल तक डटा रहता है। गिर जाता है उसी पृथ्वी में जिससे बनता है। मन बिल्कुल पानी की तरह है। पारे की तरह कहो। छितर-छितर जाता है। आत्मा आकाश की तरह निर्मल है। कितने ही बादल घिरे, कोई बादल धुएं की एक रेखा भी पीछे नहीं छोड़ गया। कितनी ही पृथ्वियां बनीं और खो गयीं। कितने ही चांद-तारे निर्मित हुए और विलीन हो गए। आकाश कूटस्थ है, अपनी जगह, हिलता-डुलता नहीं।

शरीर में ही रहना तुमसे नहीं हो पाता, मन की तो बात अलग। मन में जाते ही चिंता पकड़ती है। विचारों का ऊहापोह पकड़ता है। आत्मा तो फिर बहुत दूर है। क्योंकि आत्मा यानी निर्विचार ध्यान, आत्मा यानी समाधि--आकाश, मुक्त, असीम।

परमहंस कहा है ज्ञानियों को। लेकिन ज्ञान को आचरण में बदलने की कीमिया, बदलने का रहस्य समझ लेना चाहिए। तुम समझ भी लेते हो कभी कोई बात, स्फटिक-मणि की भांति साफ दिखाई पड़ती है कि समझ में आ गई, अगर तुम उसी क्षण उसका उपयोग करने लगो तो और निखरती जाए। तुम कहते हो, कल उपयोग कर लेंगे, परसों उपयोग कर लेंगे, अभी समझ में आ गई संभालकर रख लें।

एक मित्र यहां सुनने आते थे। डाक्टर हैं, पढ़े-लिखे हैं। मैंने उनको देखा कि जब भी वे सुनते, तो बैठकर बस नोट ले रहे हैं। फिर मुझे मिलने आए तो मैंने पूछा कि आप क्या कर रहे हो? वे कहते हैं कि आप इतनी अदभुत बातें कह रहे हैं कि नोट कर लेना जरूरी है, पीछे काम पड़ेगी। जब मैं समझा रहा हूं तब वे समझ नहीं रहे हैं। वे कल पर टाल रहे हैं, समझ तक को कल पर टाल रहे हैं। करने की तो बात अलग! वे नोट ले रहे हैं अभी। फिर पीछे कभी जब जरूरत होगी, काम पड़ जाएगी। तुम अभी मौजूद थे, मैं अभी मौजूद था, अभी ही उतर जाने देते हृदय में। लेकिन वे सोचते हैं कि वे बड़ा कीमती काम कर रहे हैं। वे धोखा दे रहे हैं। खुद को धोखा दे रहे हैं। यह बचाव है समझने से, समझना नहीं है।

सामने एक घटना घट सकती थी, अभी और यहीं। मैं तुम्हारी आंख में झांकने को राजी था। तुम आंख बचा लिए--नोट करने लगे। मैंने हाथ फैलाया था तुम्हें उठा लूं बाहर तुम्हारे गड्ढे से। तुम्हारा हाथ तुमने व्यस्त कर लिया, तुम नोट लेने लगे। मैंने तुम्हें पुकारा, तुमने पुकार न सुनी। तुमने अपनी किताब में कुछ शब्द अंकित कर लिए और तुम बड़े प्रसन्न हुए। तुम अभी जीवित सत्य को न समझ पाए, कल के लिए टाल दिया। करोगे कब?

टालना मनुष्य के मन की सबसे बड़ी बीमारी है। जो समझ में आ जाए उसे उसी क्षण करना। क्योंकि करने से स्वाद आएगा। स्वाद आते से करने की और भावना जगेगी। और करने से और स्वाद आएगा। अचानक एक दिन तुम पाओगे, जिसे तुमने ज्ञान की तरह सोचा था, वह ज्ञान नहीं रहा आचरण बन गया।

"जैसे कोई सुंदर फूल वर्णयुक्त होने के साथ-साथ सुगंधित होता है, वैसे ही आचरण करने वाले के लिए सुभाषित वाणी सफल होती है।"

और ध्यान रखना, जो भी जाना जा सकता है वह जीकर ही जाना जा सकता है। नाहक की बहस में मत पड़ना। क्योंकि बहस भी अक्सर बचने का ही उपाय है। और व्यर्थ के तर्कजाल में मत उलझना। क्योंकि तुम्हें बहुत मिल जाएंगे कहने वाले कि इसमें क्या रखा है? लेकिन गौर से देख लेना कि जो कह रहा है, उसने कुछ अनुभव लिया है?

मेरी दीवानगी पर होश वाले बहस फरमाएं
मगर पहले उन्हें दीवाना बनने की जरूरत है

मेरी दीवानगी पर होश वाले बहस फरमाएं--कोई हर्जा नहीं, तर्क करें। लेकिन, पहले उन्हें दीवाना बनने की जरूरत है, उनके पास भी कुछ स्वाद हो तभी। तुम उसी की बात सुनना जिसके पास कुछ स्वाद हो। अन्यथा इस जगत में आलोचक बहुत हैं, निंदक बहुत हैं। किसी भी चीज को गलत कह देना जितना आसान है, उतनी आसान और कोई बात नहीं। ईश्वर को कह देना "नहीं है", कितना आसान है! "है" कहना बहुत कठिन। क्योंकि जो है कहे, उसे सिद्ध करना पड़े। जो नहीं कहे, उसे तो सिद्ध करने का सवाल ही न रहा। जब है ही नहीं तो सिद्ध क्या करना है!

प्रेम को इनकार कर देना कितना आसान है। लेकिन प्रेम को हां करना कितना कठिन है? क्योंकि प्रेम का अर्थ होगा फिर एक आग से गुजरना। नहीं बहुत आसान है। इसलिए कायर हमेशा नहीं कह-कहकर जिंदगी चला लेते हैं। हालांकि वे दिखते बड़े बहादुर हैं। कोई आदमी कहता है, ईश्वर नहीं है। लगता है बड़ी हिम्मत का आदमी है। अपनी इतनी हिम्मत नहीं है। पर मैं तुमसे कहता हूं, कायर नहीं कहकर काम चला लेते हैं। क्योंकि जिस चीज को नहीं कह दिया उसे न सिद्ध करने की जरूरत, न जीवन में उतारने की जरूरत, न दांव लगाने की जरूरत, न मार्ग चलने की जरूरत। जिसने हां कहा, वही बहादुर है, वही साहसी है।

लेकिन हां भी नपुंसक हो सकती है, अगर तुमने सिर्फ बहाने के लिए हां कह दी हो। अगर किसी ने कहा, ईश्वर है। तुमने कहा, होगा भाई, जरूर होगा। सिर्फ झंझट छुटाने को कि इतनी भी किसको फुरसत है कि बकवास करे? इतना भी किसके पास समय है कि विवाद करे? अब कौन झंझट करे कि है या नहीं। कि बिल्कुल ठीक, जरूर होगा। अगर तुमने हां भी सिर्फ बचाव के लिए कही तो तुम्हारी हां नहीं ही है। उस हां में हां नहीं, नहीं ही है।

मेरी दीवानगी पर होश वाले बहस फरमाएं

मगर पहले उन्हें दीवाना बनने की जरूरत है

उसी के पास पूछना जिसके जीवन में कोई सुगंध हो और सुवास हो, और जिसके जीवन में कोई स्वाद हो। जिसके ओंठों से, जिसकी श्वासों से शराब की थोड़ी गंध आती हो, उसी से शराब की बात पूछना। जिसके आसपास थोड़ी मस्ती की हवा हो, जिसकी आंखों में खुमार हो, उसी से पूछना। हर किसी से मत पूछने बैठ जाना। और हर किसी की बात मत सुन लेना, नहीं तो जिंदगी को ऐसे ही गंवा दोगे। नासमझ बहुत हैं, कायर बहुत हैं। आलोचक बहुत हैं। उनका कोई अंत नहीं है, क्योंकि ये सब बचाव की तरकीबें हैं। जिंदगी को जानने वाले बहुत कम हैं। और तुम भी कहीं इसी भीड़ में न खो जाना। खो ही जाओगे। अगर जीवन में कोई सूत्र तुम्हारे पास आएं और तुमने उनका जल्दी उपयोग न कर लिया, वे जंग खा जाते हैं।

सत्य बड़ी नाजुक चीज है। वह बीज की तरह है। तुम उसे हृदय में ले जाओ तत्क्षण, तो वह अंकुरित हो जाता है। बीज को रखे रहो तिजोड़ियों में सम्हालकर, वह सड़ जाएगा। सारे सत्य तुम्हारे शास्त्रों की तिजोड़ियों में सड़ गए हैं। ऐसा नहीं है कि सत्यों की कोई कमी है। सत्य बहुत हैं। शास्त्र भरे पड़े हैं, लेकिन किसी काम के नहीं रहे। तुम्हारे जीवन के शास्त्र में जब तक कोई सत्य उतरकर खून, मांस, मज्जा न बन जाए, पच न जाए, तुम्हारे रग-रेशे में न दौड़ने लगे, तब तक किसी काम का नहीं है। इसे स्मरण रखना।

"जैसे फूलों से मालाएं बनती हैं, वैसे ही जन्म लेकर प्राणी को बहुत पुण्य करने चाहिए।"

जीवन दो ढंग का हो सकता है। बुद्ध ने बड़ा ठीक प्रतीक चुना है। एक तो जीवन ऐसा होता है जिसको तुम ज्यादा से ज्यादा फूलों का ढेर कह सकते हो। और एक जीवन ऐसा होता है जिसे तुम फूलों की माला कह सकते हो। माला और ढेर में बड़ा फर्क है। माला में एक संयोजन है, एक तारतम्य है, एक संगीत है, एक

लयबद्धता है। माला में एकजुटता है। एकशृंखला है, एक सिलसिला है। फूलों का एक ढेर है, उसमें कोईशृंखला नहीं है। उसमें कोई संगीत नहीं है। उसमें दो फूल जुड़े नहीं हैं किसी अनुस्यूत धागे से। सब फूल अलग-अलग हैं। बिखरे पड़े हैं।

तो या तो जीवन ऐसा हो सकता है कि जीवन के सब क्षण बिखरे पड़े हैं, एक क्षण से दूसरे क्षण के भीतर दौड़ती हुई कोई जीवनधारा नहीं है, कोई धागा नहीं जो सबको जोड़ता हो। अधिक लोगों का जीवन क्षणों का ढेर है। जन्म से लेकर मृत्यु तक तुम्हें भी उतने ही क्षण मिलते हैं जितने बुद्ध को। लेकिन बुद्ध का जीवन एक माला है। हर क्षण पिरोया हुआ है। हर क्षण अपने पीछे क्षण से जुड़ा है, आगे क्षण से जुड़ा है। जन्म और मृत्यु एकशृंखला में बंधे हैं। एक अनुस्यूत संगीत है।

इसे थोड़ा समझो। तुम ऐसे हो जैसे वर्णमाला के अक्षर। बुद्ध ऐसे हैं जैसे उन्हीं अक्षरों से बना एक गीत। गीत में और वर्णमाला के अक्षरों में कोई फर्क नहीं है। वही अक्षर हैं। वर्णमाला में जितना है उतना ही सभी गीतों में है।

मार्क ट्वेन के जीवन में एक घटना है। उसके मित्र ने उसे निमंत्रित किया। मित्र एक बहुत बड़ा उपदेष्टा था। मार्क ट्वेन कभी उसे सुनने नहीं गया था। कुछ ईर्ष्या रही होगी मन में मार्क ट्वेन के। मार्क ट्वेन खुद बड़ा साहित्यकार था। लेकिन उपदेष्टा की बड़ी ख्याति थी।

मित्र ने कई दफा निमंत्रित किया तो एक बार गया। सामने की ही कुर्सी पर बैठा था। उस दिन मित्र ने जो श्रेष्ठतम उसके जीवन में भाव में था, कहा। क्योंकि मार्क ट्वेन सुनने आया था। लेकिन मार्क ट्वेन के चेहरे पर कोई भावदशा नहीं बदली। वह ऐसे ही बैठा रहा अकड़ा जैसे कुछ भी नहीं हो रहा है। जैसे क्या कचरा बकवास कर रहे हो!

मित्र भी चकित हुआ। जब दोनों लौटने लगे गाड़ी में वापस, रास्ते में उसने हिम्मत जुटाई और पूछा, तुम्हें मेरी बातें कैसी लगीं? मार्क ट्वेन ने कहा, बातें! सब उधार। मेरे पास एक किताब है जिसमें सब लिखा है। तुमने उसी को पढ़कर बोला है। उस आदमी ने कहा, चकित कर रहे हो। कोई एकाध वाक्य, कोई एकाध टुकड़ा कहीं लिखा हो सकता है, लेकिन जो मैंने बोला है, वह मैंने किसी किताब से लिया नहीं। मार्क ट्वेन ने कहा, शर्त लगाते हो! सौ-सौ डालर की शर्त लग गई। उपदेष्टा सोचता था निश्चित ही शर्त मैं जीत जाऊंगा। यह पागल किस बात की शर्त लगा रहा है। जो मैं बोला हूं, यह पूरा का पूरा एक किताब में हो ही नहीं सकता। संयोग नहीं हो सकता ऐसा।

लेकिन उसे पता नहीं था। मार्क ट्वेन ने दूसरे दिन एक डिक्शनरी भेज दी और लिखा, इसमें सब है जो भी तुम बोले हो। एक-एक शब्द जो तुम बोले हो सब इसमें है। शब्दशः।

पर डिक्शनरी और शेक्सपियर में कुछ फर्क है। शब्दकोश में और कालिदास में कुछ फर्क है। शब्दकोश और उपनिषद में कुछ फर्क है। क्या फर्क है? वही फर्क तुममें और बुद्ध में है। तुम केवल शब्दकोश हो। फूल की भीड़, एक ढेर। अनुस्यूत नहीं हो। जुड़े नहीं हो। तारतम्य नहीं है। सब फूल अलग-अलग पड़े हैं, माला नहीं बन पाए हैं।

माला उसी का जीवन बनता है जो अपने जीवन को एक साधना देता है, एक अनुशासन देता है। जो अपने जीवन को होशपूर्वक एक लयबद्धता देता है। तब जीवन न केवल गद्य बन जाता है, अगर धीरे-धीरे तुम जीवन को निखारते ही जाओ, तो गद्य पद्य हो जाता है। जीवन तुम्हारा गाने लगता है, गुनगुनाने लगता है। तुम्हारे भीतर से अहर्निश संगीत की एक धारा छूटने लगती है। तुम बजने लगते हो।

जब तक तुम बजो न, तब तक तुम परमात्मा के चरणों के योग्य न हो सकोगे। और ध्यान रखना, व्यर्थ की शिकायतें-शिकवे मत करना।

उनसे शिकवा फजूल है सीमाब

काबिले-इल्तिफात तू ही नहीं

परमात्मा से क्या शिकायत करनी कि आनंद नहीं है जीवन में!

काबिले-इल्तिफात तू ही नहीं

परमात्मा की कृपा के योग्य तू ही नहीं। इसलिए किसी और से शिकवा मत करना।

तुम जैसे अभी हो ऐसे ही तुम परमात्मा पर चढ़ने योग्य नहीं हो। तुम माला बनो। तुम जीवन को एक दिशा दो। तुम ऐसे ही सब दिशाओं में मत भागते फिरो पागलों की तरह। तुम एक भीड़ मत रहो। तुम्हारे भीतर एकस्वरता है। और बुद्ध इसी को पुण्य कहते हैं। तुम चकित होओगे। बुद्ध कहते हैं, जिसके जीवन में एकस्वरता है, वही पुण्यधर्मा है। पापी एक भीड़ है, पुण्यधर्मा एक माला है। पापी असंगत है। कहता कुछ है, करता कुछ है। सोचता कुछ है, होता कुछ है। पापी के भीतर एकस्वरता नहीं है। बोलता कुछ है, आंखें कुछ और कहती हैं, हाथ कुछ और करते हैं।

पापी एक साथ बहुत है। पुण्यात्मा एक है। योगस्थ है। जुड़ा है, इंटीग्रेटेड है। वह जो भी करता है वह सब संयोजित है। वह सभी एक दिशा में गतिमान है। उसके पैर भी उसी तरफ जा रहे हैं जिस तरफ उसकी आंखें जा रही हैं, उसके हाथ भी उसी तरफ जा रहे हैं जिस तरफ उसका हृदय जा रहा है। उसकी श्वासें भी उसी तरफ जा रही हैं, जिस तरफ उसकी धड़कनें जा रही हैं। वह इकट्ठा है। उसके जीवन में एक दिशा है, एक गति है, विक्षिप्तता नहीं है।

"जैसे फूलों से मालाएं बनती हैं, वैसे ही जन्म लेकर प्राणी को पुण्य अर्जन करना चाहिए।"

ताकि तुम्हारा जीवन एक माला बन जाए।

"फूलों की सुगंध वायु की विपरीत दिशाओं में नहीं जाती।"

बड़ी मीठी बात बुद्ध कहते हैं। खूब हृदय भरकर सुनना।

"फूलों की सुगंध वायु की विपरीत दिशाओं में नहीं जाती। न चंदन की, न तगर की, न चमेली की, न बेला की।"

अगर हवा पूरब की तरफ बह रही हो, तो चंदन, कोई उपाय नहीं चंदन के पास कि अपनी सुगंध को पश्चिम की तरफ भेज दे। हवा के विपरीत नहीं जाती।

"न तगर की, न चमेली की, न चंदन की, न बेला की। लेकिन सज्जनों की सुगंध विपरीत दिशा में भी जाती है।"

सत्पुरुष सभी दिशाओं में सुगंध बहाता है। एक ही सुगंध है इस जगत में जो विपरीत दिशा में भी चली जाती है। वह है सत्पुरुष की। वह है संत-पुरुष की। वह है जाग्रत पुरुष की सुगंध।

मनुष्य भी एक फूल है। और जो कली ही रह गए, खिल न पाए, उनके दुख का अंत नहीं। कलियों से पूछो, जो खिलने में असमर्थ हो गयीं; जिनमें गंध भरी थी और लुटा न पायीं; ऐसे ही जैसे किसी स्त्री को गर्भ रह गया, और फिर बच्चे का जन्म न हो, तो उसका संताप समझो। गर्भ बड़ा होता जाए और बेटे का जन्म न हो, तो उस स्त्री की पीड़ा समझो। ऐसा ही प्रत्येक मनुष्य पीड़ा में है, क्योंकि तुम्हारे भीतर जो बड़ा हो रहा है, वह जन्म नहीं पा रहा है। तुम एक गर्भ लेकर चल रहे हो। गर्भ बड़ा होता जाता है, लेकिन तुम्हारे जन्म की दिशा खो गई

है। तुम भूल ही गए हो। तुम एक कली हो, उसके भीतर गंध इकट्ठी होती जा रही है। बोझिल हो गई है, कली अपने ही बोझ से दबी जा रही है।

मेरे देखे तुम्हारी पीड़ा यह नहीं है कि तुम्हारे जीवन में दुख है। तुम्हारी असली पीड़ा यही है कि जो सुख हो सकता था वह नहीं हो पा रहा है। यह दुख की मौजूदगी नहीं है जो तुम्हें पीड़ित कर रही है, यह उस सुख की मौजूदगी का अभाव है जो हो सकता था और नहीं हो पा रहा है। तुम्हारी गरीबी तुम्हें पीड़ा नहीं दे रही है। लेकिन तुम्हारे भीतर जो अमीरी का झरना फूट सकता था, फूटने को तत्पर खड़ा है, उस पर चट्टान पड़ी है, वह झरना फूट नहीं पा रहा है। यह विकास की छटपटाहट है आदमी का संताप। यह आदमी की पीड़ा जन्म लेने की छटपटाहट है।

सारा अस्तित्व खिलने में भरोसा रखता है। जब भी कोई चीज खिल जाती है, तो निर्भार हो जाती है। आदमी भी एक फूल है। और बुद्ध कहते हैं, बड़ा अनूठा फूल है। और बुद्ध जानकर रहते हैं। उनका फूल खिला तब उन्होंने एक अनूठी बात जानी कि विपरीत दिशाओं में भी, जहां हवा नहीं भी जा रही हो, वहां भी संत की गंध चली जाती है। संत की गंध कोई सीमाएं नहीं मानती।

"फूलों की सुगंध वायु की विपरीत दिशाओं में नहीं जाती। न चंदन की, न तगर की, न चमेली की, न बेला की। लेकिन सज्जनों की सुगंध विपरीत दिशा में भी जाती है।"

सज्जन की सुगंध एकमात्र सुगंध है, जो संसार के नियम नहीं मानती। जो संसार के साधारण नियमों के पार है, जो अतिक्रमण कर जाती है।

सीख ले फूलों से गाफिल मुद्दआ-ए-जिंदगी

खुद महकना ही नहीं गुलशन को महकाना भी है

इतना ही काफी नहीं है कि खुद महको।

खुद महकना ही नहीं गुलशन को महकाना भी है

इसलिए बुद्ध ने कहा है, समाधि, फिर प्रज्ञा। समाधि, फिर करुणा। बुद्ध ने कहा है, वह ध्यान ध्यान ही नहीं, जो करुणा तक न पहुंचा दे।

खुद महकना ही नहीं गुलशन को महकाना भी है

उसी समाधि को बुद्ध ने परिपूर्ण समाधि कहा है जो लुट जाए सभी दिशाओं में। सभी दिशाओं में बह जाए।

लेकिन यही समझ लेने की बात है। यह बड़ी विरोधाभासी बात है। तुम साधारण अवस्था में सभी दिशाओं में दौड़ते हो और कहीं नहीं पहुंच पाते। बुद्धत्व की तरफ चलने वाला व्यक्ति एक दिशा में चलता है और जिस दिन पहुंचता है उस दिन सभी दिशाओं में बहने में समर्थ हो जाता है।

तुम सभी दिशाओं में बहने की कोशिश करते हो। थोड़ा धन भी कमा लें, थोड़ा धर्म भी कमा लें। थोड़ी प्रतिष्ठा भी बना लें, थोड़ी समाधि भी कमा लें। थोड़ा दुकान भी बचा लें, थोड़ा मंदिर भी। तुम सभी दिशाओं में हाथ फैलाते हो। और आखिर में पाते हो भिखारी के भिखारी ही विदा हो गए। जैसे आए थे खाली हाथ वैसे खाली हाथ गए। बहुत पकड़ना चाहा, कुछ पकड़ में न आया।

तुम्हारी हालत करीब-करीब वैसी है जैसे तुमने एक बहुत प्रसिद्ध गधे की सुनी हो, कि एक मजाकिया आदमी ने एक गधे के पास दोनों तरफ घास के दो ढेर लगा दिए बराबर दूरी पर। और गधा बीच में खड़ा था।

उसे भूख तो लगी, तो वह बाएं तरफ जाना चाहा, तब मन ने कहा कि दाएं। उस तरफ भी घास थी। दाएं तरफ जाना चाहा तो मन ने कहा बाएं।

कहते हैं गधा भूखा बीच में खड़ा-खड़ा मर गया, क्योंकि न वह बाएं जा सका, न दाएं। जब दाएं जाना चाहा तब मन ने कहा बायां। जब बाएं जाना चाहा तब मन ने कहा दायां।

तुम्हारा मन यही कर रहा है। जब तुम मंदिर की तरफ जाना चाहते हो, तब मन कहता है दुकान। जब तुम दुकान पर बैठे हो, मन को भजन याद आता है, मंदिर। ऐसे ही मर जाओगे। और दोनों तरफ तृप्ति के साधन मौजूद थे। कहीं भी गए होते।

मैं तुमसे कहता हूं, अगर तुम दुकान पर ही पूरी तरह से चले जाओ तो वहीं ध्यान हो जाएगा। आधे-आधे मंदिर जाने की बजाय दुकान पर पूरे चले जाना बेहतर है। क्योंकि पूरे चला जाना ध्यान है। ग्राहक से बात करते वक्त भीतर राम-राम गुनगुनाना गलत है। ग्राहक को ही पूरा राम मान लेना उचित है।

आधे-आधे कुछ सार न होगा। आधा यहां, आधा वहां, तुम दो नाव पर सवार हो, तुम बड़ी मुश्किल में पड़े हो। तुम सब दिशाओं में पहुंचना चाहते हो और कहीं नहीं पहुंच पाते। बुद्धपुरुष एक दिशा में जाते हैं। और जिस दिन मंजिल पर पहुंचते हैं, सब दिशाओं में उनकी गंध फैल जाती है। तुम सब पाने की कोशिश में सब गंवा देते हो। बुद्धपुरुष एक को पा लेते हैं और सब पा लेते हैं।

महावीर ने कहा है, जिसने एक को पा लिया, उसने सब पा लिया। जिसने एक को जान लिया, उसने सब जान लिया।

जीसस ने कहा है, सीक यी फर्स्ट दि किंगडम आफ गाड ऐंड आल एल्स शैल बी एडेड अनटू यू। अकेले तुम परमात्मा की खोज कर लो। प्रभु का राज्य खोज लो; शेष सब अपने से आ जाएगा, तुम उसकी फिकर ही मत करो। एक को जिसने गंवाया, वह सब गंवा देता है। और एक को जिसने पाया वह सब पा लेता है।

लेकिन तुम्हारा सब अधूरा-अधूरा है। अधूरे-अधूरे के कारण तुम खंड-खंड हो गए हो। तुम्हारे भीतर बड़े टुकड़े हो गए हैं। एक टुकड़ा कहीं जा रहा है, दूसरा टुकड़ा कहीं जा रहा है। तुम एक टूटी हुई नाव हो, जिसके तख्ते अलग-अलग बह रहे हैं। तुम कैसे पहुंच पाओगे? तुम कहां पहुंच पाओगे? तुम हो ही नहीं। तुम इतने खंड-खंड हो गए हो कि तुम हो, यह कहना भी उचित नहीं है। होने के लिए जरूरी है कि तुम्हारी दिशा बने, एक अनुशासन हो, एकशृंखला हो। तुम फूलों को पिरोना सीखो, फूलों की माला बनाना सीखो।

जीवन में सत्य का आविष्कार करना है, प्रेम का आविष्कार करना है। जीवन में तुम कौन हो इसका आविष्कार करना है। इसे ऐसी ही नहीं गंवा देना है। तो तुम्हारे जीवन में धीरे-धीरे अनुशासन आना शुरू हो जाए। अगर तुम्हारे पास कुछ भी--थोड़ी सी भी--दृष्टि हो, दिशा हो कहां पहुंचना है, तो एक तारतम्य आ जाए। उस तारतम्य के साथ ही साथ तुम्हारे भीतर एकता का जन्म होगा। इस एकता के माध्यम से ही किसी दिन तुम माला बन सकते हो। और जिस दिन तुम माला बन जाते हो, उस दिन परमात्मा के गले में चढ़ाने नहीं जाना होता। परमात्मा का गला खुद तुम्हारी माला में आ जाता है। आ ही जाएगा। तुम काबिल हो गए।

काबले-इल्तिफात तू ही नहीं

तभी तक अड़चन थी।

उनसे शिकवा फजूल है सीमाब

शिकायत बेकार है। इतना ही जानना कि अभी हम तैयार नहीं हुए।

अब यह फूलों की गठरी को तुम किसी के गले में डालना चाहोगे तो माला कैसे बनेगी? गिर जाएंगे फूल नीचे, धूल में पड़ जाएंगे। यह माला किसी के गले में डालनी हो तो माला होनी चाहिए। फूलों के ढेर को माला मत समझ लेना।

थोड़ा देखो, माला और ढेर में क्या फर्क है? ढेर में संगठन नहीं है, अर्थात आत्मा नहीं है। माला में एक संगठन है, एक व्यक्तित्व है, एक आत्मा है। धागा दिखाई नहीं पड़ता। एक फूल से दूसरे फूल में चुपचाप अदृश्य में पिरोया हुआ है।

जीवन के लक्ष्य भी दिखाई नहीं पड़ते। एक क्षण से दूसरे क्षण में अदृश्य पिरोए होते हैं। बुद्ध उठते हैं, बैठते हैं, चलते हैं, तो हर घड़ी के भीतर ध्यान का धागा पिरोया हुआ है। जो भी करते हैं, एक बात ध्यान रखते ही हैं कि उस करने में से ध्यान का धागा न छूटे। वह धागा बना रहे।

फूल से भी ज्यादा मूल्य धागे का है, लक्ष्य का है, दिशा का है। और जिस दिन यह घड़ी घट जाती है कि तुम संगठित हो जाते हो, तुम एक हो जाते हो, उसी दिन--उसी दिन परमात्मा की कृपा तुम पर बरस उठती है। उसे कुछ कहने की जरूरत नहीं है।

इसलिए बुद्ध उस संबंध में चुप रहे हैं। जो कहा जा सकता था, उन्होंने कहा। जो नहीं कहा जा सकता था, उन्होंने नहीं कहा। उन्होंने सारा जोर इस पर दिया है कि तुम्हारा व्यक्तित्व कैसे एक हो जाए। तुम्हारा ज्ञान कैसे आचरण बन जाए। तुम्हारे बिखरे फूल कैसे माला बन जाएं। इससे ज्यादा उन्होंने बात नहीं की, क्योंकि इसके बाद बात करनी ठीक ही नहीं है। इसके बाद जो होना है वह होता ही है। वह हो ही जाता है। उसमें कभी कोई अड़चन नहीं पड़ती।

इसलिए परमात्मा को तुम भूल जाओ तो अड़चन नहीं है। अपने को मत भूल जाना। अपने को भूला, तो सब गया, सब डूबा। खुद की याद रखी और उसी याददाश्त को रोज-रोज सम्हालते गए, रोज-रोज हर तरह से वह याददाश्त सघन होती चली जाए, जैसे जल गिरता है पहाड़ से--और चट्टान मजबूत है, जल बिल्कुल नाजुक है--लेकिन रोज गिरता ही चला जाता है। एक दिन चट्टान तो रेत होकर बह जाती है, जल की धार अपनी जगह बनी रहती है।

कठोर से कठोर भी टूट जाता है सातत्य के सामने। इसलिए घबड़ाना मत, अगर आज तुम्हें अपनी दशा चट्टान जैसी लगे। तुम कहो कि कैसे यह अहंकार बहेगा? यह चट्टान बड़ी मजबूत है। कैसे यह दिल झुकेगा? यह झुकना जानता नहीं। तुम इसकी फिकर मत करना, तुम सिर्फ सातत्य रखना ध्यान का, अवलोकन का, साक्षी का। शेष सब अपने से हो जाता है।

बुद्ध ने मनुष्य के व्यक्तित्व का विज्ञान दिया। उन्होंने मनोविज्ञान दिया। मेटाफिजिक्स, परलोक के शास्त्र की बात नहीं की। बुद्ध बड़े यथार्थवादी हैं। वे कहते हैं जो करना जरूरी है, वही। और ज्यादा व्यर्थ की विस्तार की बातों में तुम्हें भटकाने की जरूरत नहीं है। ऐसे ही तुम काफी भटके हुए हो।

थोड़े से तुम्हें सूत्र दिए हैं। अगर तुम उन्हें कर लो, तो उन सूत्रों में बड़ी आग है। वे अंधकार को जला डालेंगे। वे व्यर्थ को राख कर देंगे। और उन सूत्रों की आग से तुम्हारे भीतर का स्वर्ण निखरकर बाहर आ जाएगा। बुद्ध ने बहुत थोड़ी सी बातें कहीं। उन्हीं-उन्हीं को दोहराकर कहा है। क्योंकि बुद्ध को कोई रस दर्शनशास्त्र में नहीं है। बुद्ध को रस है मनुष्य की आंतरिक-क्रांति में, रूपांतरण में। बुद्ध को जिन लोगों ने गौर से अध्ययन किया है, उन सबको हैरानी होती है कि बुद्ध एक ही बात को कितनी बार दोहराए चले जाते हैं। वह हैरानी इसीलिए

होती है कि बुद्ध व्यर्थ की बात को कभी बीच में नहीं लाते। बस सार्थक को ही दोहराते हैं, ताकि सतत चोट पड़ती रहे।

और तुम ऐसे हो, तुम्हारी नींद ऐसी है, तुम्हारी तंद्रा ऐसी है कि बहुत बार दोहराने पर भी तुम सुन लो, वह भी आश्चर्य है। बुद्ध से कोई पूछता था तो वे तीन बार दोहराकर जवाब देते थे। उसी वक्त तीन दफा दोहराकर जवाब देते थे। क्यों तीन बार? क्योंकि... बुद्ध से कोई पूछने लगा कि क्यों तीन बार? क्या आप सोचते हैं हम बहरे हैं? बुद्ध ने कहा, नहीं। अगर तुम बहरे होते तो इतनी अड़चन न थी। तुम बहरे नहीं हो और फिर भी सुनते नहीं हो। तुम सोए नहीं हो, यही तो अड़चन है। सोए होते तो जगाना आसान हो जाता है। तुम बनकर लेटे हो। तुम सोने का ढोंग कर रहे हो। उठना भी नहीं चाहते, जाग भी गए हो। तुम सुनते हुए मालूम पड़ते हो और सुनते भी नहीं, इसलिए तीन बार दोहराता हूं।

यह जो बुद्ध का दोहराना है, धम्मपद में--इस पूरी चर्चा में--बहुत बार आएगा। अलग-अलग द्वारों से वे फिर वहीं लौट आते हैं--कैसे तुम्हारा रूपांतरण हो? बुद्ध की सारी आकांक्षा, अभीप्सा मनुष्य-केंद्रित है। महावीर मोक्ष-केंद्रित हैं। वे मोक्ष की चर्चा करते हैं। जीसस ईश्वर-केंद्रित हैं, वे ईश्वर की चर्चा करते हैं। बुद्ध मनुष्य-केंद्रित हैं। जैसे मनुष्य से ऊपर कोई सत्य नहीं है बुद्ध के लिए।

साबार ऊपर मानुस सत्य, ताहार ऊपर नाहीं।

सबके ऊपर मनुष्य का सत्य है और उसके ऊपर कोई सत्य नहीं है। क्योंकि जिसने मनुष्य के सत्य को समझ लिया, उसे कुंजी मिल गई। सारे सत्यों के द्वार उसके लिए फिर खुले हैं।

बुद्ध को भोजन बनाओ, पीओ, पचाओ, तो धीरे-धीरे तुम पाओगे तुम्हारे भीतर बुद्ध का अवतरण होने लगा। धीरे-धीरे तुम पाओगे तुम्हारे भीतर बुद्ध की प्रतिमा उभरने लगी। हर चट्टान छिपाए है बुद्ध की प्रतिमा अपने में। जरा छेनी की जरूरत है, हथौड़ी की जरूरत है। व्यर्थ को छांटकर अलग कर देना है।

किसी ने माइकल एंजलो से पूछा--क्योंकि एक चर्च के बाहर एक पत्थर बहुत दिन से पड़ा था, उसे अस्वीकार कर दिया गया था, चर्च के बनाने वालों ने उपयोग में नहीं लिया था, वह बड़ा अनगढ़ था, माइकल एंजलो ने उस पर मेहनत की और उससे एक अपूर्व क्राइस्ट की प्रतिमा निर्मित की--किसी ने पूछा कि यह पत्थर तो बिल्कुल व्यर्थ था, इसे तो फेंक दिया गया था, इसे तो राह का रोड़ा समझा जाता था, तुमने इसे रूपांतरित कर दिया! तुम अनूठे कलाकार हो!

माइकल एंजलो ने कहा, नहीं, तुम गलती कर रहे हो। जो मैंने पत्थर से प्रगट किया है, वह पत्थर में छिपा ही था, सिर्फ मैंने पहचाना। और जो व्यर्थ टुकड़े पत्थर के आसपास थे उनको छांटकर अलग कर दिया। यह प्रतिमा तो मौजूद ही थी। मैंने बनाई नहीं। मैंने सिर्फ सुनी आवाज। मैं गुजरता था यहां से, यह पत्थर चिल्लाया और इसने कहा कि कब तक मैं ऐसे ही पड़ा रहूं? कोई पहचान ही नहीं रहा है। तुम मुझे उठा लो, जगा दो। बस, मैंने छेनी उठाकर इस पर मेहनत की। जो सोया था उसे जगाया।

बुद्धत्व को कहीं पाने नहीं जाना है। हरेक के भीतर आज जो चट्टान की तरह मालूम हो रहा है--अनगढ़, बस जरा से छेनी-हथौड़े की जरूरत है। सब के भीतर से पुकार रहा है कि कब तक पड़ा रहूंगा? उघाड़ो मुझे!

इसलिए बुद्ध कहते हैं, जो तुम सुनो, जो सुभाषित तुम्हारे कानों में पड़ जाएं, उन्हें तुम स्मृति में संगृहीत मत करते जाना। उन्हें उतारना आचरण में। उन्हें जीवन की शैली बनाना। धीरे-धीरे तुम्हारे चारों तरफ उनकी हवा तुम्हें घेरे रहे, उनके मौसम में तुम जीना। जल्दी ही तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर का बुद्धत्व उभरना शुरू हो गया। फूल माला बन गए।

और तब एक ऐसी घटना घटती है, जो संसार के नियमों के पार है। फूलों की सुगंध वायु की विपरीत दिशा में नहीं जाती, न चंदन की, न तगर की, न चमेली की, न बेला की। लेकिन जिनके भीतर का बुद्धपुरुष जाग गया, बुद्ध चैतन्य जाग गया, उनकी सुगंध विपरीत दिशा में भी जाती है। सभी दिशाओं में उनकी सुगंध फैल जाती है।

और जब तक तुम ऐसे अपने को लुटा न सकोगे, तब तक तुम पीड़ित रहोगे। एक ही नर्क है--अपने को प्रगट न कर पाना। और एक ही स्वर्ग है--अपनी अभिव्यक्ति खोज लेना।

जो गीत तुम्हारे भीतर अनगाया पड़ा है, उसे गाओ। जो वीणा तुम्हारे भीतर सोई पड़ी है, छेड़ो उसके तारों को। जो नाच तुम्हारे भीतर तैयार हो रहा है, उसे तुम बोझ की तरह मत ढोओ। उसे प्रगट हो जाने दो।

प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर बुद्धत्व को लेकर चल रहा है। जब तक वह फूल न खिले, तब तक बेचैनी रहेगी, अशांति रहेगी, पीड़ा रहेगी, संताप रहेगा। वह फूल खिल जाए, निर्वाण है, सच्चिदानंद है, मोक्ष है।

आज इतना ही।

अठारहवां प्रवचन

प्रार्थनाः प्रेम की पराकाष्ठा

पहला प्रश्नः बुद्ध बातें करते हैं होश की, जागने की, और आप बीच-बीच में मस्ती, नशा, शराब और लीनता की बातें भी उठाया करते हैं। बुद्ध पर बोलते समय विपरीत की चर्चा क्यों आवश्यक है? कृपया समझाएं।

दृष्टि न हो, तो विपरीत दिखाई पड़ता है। दृष्टि हो, तो जरा भी विपरीत दिखाई न पड़ेगा। जिसको बुद्ध होश कहते हैं, उसी को सूफियों ने बेहोशी कहा। जिसको बुद्ध अप्रमाद कहते हैं, उसी को भक्तों ने शराब कहा। बुद्ध के वचनों में और उमर खैयाम में इंचभर का फासला नहीं। बुद्ध ने जिसे मंदिर कहा है, उसी को उमर खैयाम ने मधुशाला कहा। बुद्ध तो समझे ही नहीं गए, उमर खैयाम भी समझा नहीं गया। उमर खैयाम को लोगों ने समझा कि शराब की प्रशंसा कर रहा है।

कुछ अपनी करामात दिखा ऐ साकी

जो खोल दे आंख वो पिला ऐ साकी

होशियार को दीवाना बनाया भी तो क्या

दीवाने को होशियार बना ऐ साकी

तुम बेहोश हो। शराब तो तुमने पी ही रखी है। संसार की शराब। किसी ने धन की शराब पी रखी है और धन में बेहोश है। किसी ने पद की शराब पी रखी है और पद में बेहोश है। किसी ने यश की शराब पी रखी है। जिनको न पद, यश, धन की शराब मिली, वे सस्ती शराब मयखानों में पी रहे हैं। वे हारे हुए शराबी हैं।

और बड़ा मजा तो यह है कि बड़े शराबी छोटे शराबियों के खिलाफ हैं। जो दिल्ली में पदों पर बैठे हैं, वे छोटे-छोटे मयखानों में लोगों को शराब नहीं पीने देते। उन्होंने खुद भी शराब पी रखी है। लेकिन उनकी शराब सूक्ष्म है। उनका नशा बोतलों में बंद नहीं मिलता। उनका नशा बारीक है। उनके नशे को देखने के लिए बड़ी गहरी आंख चाहिए। उनका नशा स्थूल नहीं है।

राह पर तुमने शराबी को डगमगाते देखा, राजनेता को डगमगाते नहीं देखा? राह में तुमने शराबी को गिर जाते देखा, धनी के पैर तुमने डगमगाते नहीं देखे? शराबी को ऊलजलूल बकते देखा, पदधारियों को ऊलजलूल बकते नहीं देखा? तो फिर तुमने कुछ देखा नहीं। संसार में आंख बंद करके जी रहे हो।

बहुत तरह की शराबें हैं। संसार शराब है। उमर खैयाम, सूफी या भक्त जिस शराब की बात कर रहे हैं, वह ऐसी शराब है जो संसार के नशे को तोड़ दे। जो तुम्हें जगा दे।

परमात्मा की शराब का लक्षण है जागरण। इसलिए बुद्ध और उमर खैयाम की बातों में फर्क नहीं है। जानकर ही बुद्ध के साथ इन मस्तानों की भी बात कर रहा हूं। क्योंकि अगर तुम्हें फर्क दिखाई पड़ता रहा, तो न तो तुम बुद्ध को समझ सकोगे और न इन दीवानों को। जब इन दोनों में तुम्हें कोई फर्क न दिखाई पड़ेगा, तभी तुम समझोगे।

परमात्मा का भी एक नशा है। लेकिन नशा ऐसा है कि और सब नशे तोड़ देता है। नशा ऐसा है कि तुम्हारी नींद ही तोड़ देता है। नशा ऐसा है कि जागरण की एक अहर्निश धारा बहने लगती है। फिर भी उसे

नशा क्यों कहें? तुम पूछोगे। जब होश आता है, तो नशा क्यों कहें? नशा इसलिए है कि होश तो आता है, मस्ती नहीं जाती। होश तो आता है, मस्ती बढ़ जाती है। और ऐसा होश भी क्या जो मस्ती भी छीन ले! फिर तो मरुस्थल का हो जाएगा होश। फिर तो रूखा-सूखा होगा। फिर तो हरियाली न होगी, फूल न खिलेंगे, और पक्षी गीत न गाएंगे, और झरने न बहेंगे, और आकाश के तारों में सौंदर्य न होगा।

या तो तुम उमर खैयाम को समझ लेते हो कि यह किसी साधारण शराब की प्रशंसा कर रहा है, और या तुम समझ लेते हो कि बुद्ध मस्ती के खिलाफ हैं। दोनों नासमझियां हैं। बुद्ध मस्ती के खिलाफ नहीं हैं। बुद्ध से ज्यादा मस्त आदमी तुम कहां पाओगे? तुम कहोगे, यह जरा अड़चन की बात है। बुद्ध को किसी ने कभी नाचते नहीं देखा। मीरा नाचती है, चैतन्य नाचते हैं। बुद्ध को कब किसने नाचते देखा? पर मैं तुमसे कहता हूं, ऐसे भी नाच हैं जो दिखाई नहीं पड़ते। और मैं तुमसे यह भी कहता हूं कि नाच की एक ऐसी आखिरी स्थिति भी है, जहां सब थिर हो जाता है। ऐसा भी नाच है, जहां कंपन नहीं होता।

किसी और उदाहरण से समझें जो तुम्हारी समझ में आ जाए। क्योंकि यह बात तो बेबूझ हो जाएगी, पहेली बन जाएगी। कोई मर जाता है प्रियजन, तो तुमने आंखों से आंसू बहाते लोग देखे हैं। कभी तुमने उस दुख की घड़ी को भी देखा है जब आंसू भी नहीं बहते। ऐसे भी दुख हैं। दुख की आत्यंतिक ऐसी भी गहराई है कि आंख से आंसू भी नहीं बहते, मुंह से आह भी नहीं निकलती। दुख इतना गहन हो जाता है कि आंसू बहाना भी दुख की बेइज्जती मालूम होगी। दुख इतना गहन हो जाता है कि रोना भी व्यर्थ मालूम होगा।

रोते भी वे हैं, जिनके दुख में अभी थोड़ी सुख की सुविधा है। जिनका दुख पूरा नहीं है। रोते भी वे हैं, जिनके दुख ने अभी आखिरी तक नहीं छू लिया है। हृदय के आखिरी कोर तक को नहीं भिगो दिया है। चिल्लाते भी वे हैं, जिनका दुख स्थूल है। तुमने कभी ऐसी घड़ी जरूर देखी होगी, कि दुख महान हुआ, दुख इतना बड़ा था कि तुम सम्हाल न पाए, आंखें भी सम्हाल न पायीं, आंसू भी सम्हाल न पाए, सब सन्नाटा हो गया। आघात इतना गहरा था कि कंपन ही न हुआ।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, अगर ऐसी घड़ी हो तो किसी भी तरह उस व्यक्ति को रुलाने की चेष्टा करनी चाहिए, अन्यथा वह मर भी जा सकता है। किसी भांति उसे हिलाओ, रुलाओ, उसकी आंखों में किसी भांति आंसू ले आओ, ताकि आघात हल्का हो जाए, ताकि आघात बह जाए, ताकि दुख आंसुओं से निकल जाए और भीतर राहत आ जाए।

तुम दुख के कारण रोते हो, या दुख से छुटकारा पाने के कारण रोते हो? तुम दुख के कारण रोते हो, या दुख से राहत पाने के लिए रोते हो? दुख जब सघन होता है, तो आवाज भी नहीं उठती। दिल जब सच में ही टूट जाता है, तो आवाज भी नहीं उठती।

ठीक इससे विपरीत अब तुम समझ सकोगे। मीरा नाचती है। अभी नाच सकती है, इसलिए। अभी नाच इतना गहरा नहीं गया है। अभी लीनता और समाधि की दशा इतनी गहरी नहीं गई है जहां नाच भी खो जाए। ऐसे भी नाच हैं जहां नाच भी खो जाता है। ऐसे भी दुख हैं जहां आंसू भी नहीं होते।

बुद्ध भी नाच रहे हैं, लेकिन बड़ा सूक्ष्म है यह नृत्य। यह इतना सूक्ष्म है कि स्थूल आंखें न पकड़ पाएंगी। इसे तो केवल वे ही देख पाएंगे जिन्होंने ऐसा नाच जीया हो, जाना हो।

मैं तुमसे कहता हूं, बुद्ध नाच रहे हैं। अन्यथा हो ही नहीं सकता। मैं तुमसे कहता हूं, बुद्ध ने पी ली वह शराब, जिसकी मैं बात कर रहा हूं। आनंद इतना सघन है, अवाक हो गए हैं! ठगे रह गए हैं! मीरा तो नाच भी सकी, थोड़ी राहत मिली होगी। आनंद भी जब सघन हो जाए, तो कुछ करो तो राहत मिल जाती है। बुद्ध पी

गए। पूरा आनंद पी गए। अगर कोई मुझसे पूछे, तो बुद्ध का नशा मीरा से भी ज्यादा है। मीरा को तो कम से कम नाचने की खबर रही। बुद्ध को उतनी खबर भी न रही।

ध्यान रखना, जब मैं मीरा, या बुद्ध, या किन्हीं और की बात करता हूं, तो ये बातें तुलनात्मक नहीं हैं, कंपेरेटिव नहीं हैं। मैं किसी को छोटा-बड़ा नहीं कह रहा हूं। मैं तो सिर्फ तुम्हें समझाने के लिए बात ले रहा हूं। तुम्हें बुद्ध समझ में आ जाएं, तो तुम्हें उमर खैयाम भी समझ में आ जाएगा।

फिट्जराल्ड ने, जिसने उमर खैयाम का अंग्रेजी में अनुवाद किया, उमर खैयाम को बरबाद कर दिया। क्योंकि सारी दुनिया ने फिट्जराल्ड के बहाने ही, उसी के मार्ग से, उसी के निमित्त से उमर खैयाम को जाना। और सारी दुनिया ने यही समझा कि यह शराब की चर्चा है, यह मयखाने की चर्चा है। यह मयखाने की चर्चा नहीं है, शराब की चर्चा नहीं है, यह मंदिर की बात है।

कुछ अपनी करामात दिखा ऐ साकी

जो खोल दे आंख वो पिला ऐ साकी

होशियार को दीवाना बनाया भी तो क्या

दीवाने को होशियार बना ऐ साकी

बुद्ध ने ऐसी ही शराब ढाली, जिसमें दीवाने होशियार बन जाते हैं। वही उनका अप्रमाद योग है। वही उनकी जागरण की कला है। लेकिन मैं इसको फिर-फिर शराब कहता हूं। क्योंकि मैं चाहता हूं, तुम यह न भूल जाओ कि यह रूखी-सूखी जीवन स्थिति नहीं है, बड़ी हरी-भरी है। यह रेगिस्तान नहीं है, मरूद्यान है। यहां फूल खिलते हैं, पक्षी चहचहाते हैं। यहां चांद-तारे घूमते हैं। यहां गीतों का जन्म होता है। यहां रोएं-रोएं में, जर्रे-जर्रे में अज्ञात की प्रतिध्वनि सुनी जाती है। यहां मंदिर की घंटियों का नाद है और मंदिर में जलती धूप की सुगंध है। बुद्ध नीरस नहीं बैठे हैं। हीरा सम्हालकर बैठे हैं।

कबीर ने कहा है, हीरा पायो गांठ गठियायो।

तुम ऊपर ही ऊपर मत देखते रहना, गांठ ही दिखाई पड़ती है। भीतर हीरे को गठियाकर बैठे हैं। हिलते भी नहीं, इतना बड़ा हीरा है। कंपित भी नहीं होते, इतना बड़ा हीरा है। इतनी बड़ी संपदा मिली है कि धन्यवाद देना भी ओछा पड़ जाएगा। छोटा पड़ेगा। अहोभाव भी प्रगट क्या करें! अहोभाव प्रगट करने वाला भी खो गया है। कौन धन्यवाद दे, कौन अनुग्रह की बात करे, कौन उत्सव मनाए!

मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि ऐसे उत्सव भी हैं जब उत्सव भी ओछा पड़ जाता है। इसलिए जानकर ही बात कर रहा हूं। जब कभी उमर खैयाम की तुमसे बात करूंगा, तो बुद्ध की भी बात करूंगा। क्योंकि न तो उमर खैयाम समझा जा सकता है बुद्ध के बिना, न बुद्ध समझे जा सकते हैं उमर खैयाम के बिना।

मेरी सारी चेष्टा यही है कि जिनको तुमने विपरीत समझा है, उनको तुम इतने गौर से देख लो कि उनकी विपरीतता खो जाए। और अलग-अलग रंगों और रूपों में तुम्हें एक ही सौंदर्य की झलक मिल जाए। मीरा के नाच में अगर तुम्हें बुद्ध बैठे मिल जाएं और बुद्ध की ध्यानस्थ प्रतिमा में अगर तुम्हें मीरा का नाच मिल जाए, तो हाथ लग गई कुंजी। मंदिर का द्वार तुम भी खोलने में समर्थ हो जाओगे। जिन्होंने इससे अन्यथा देखा, उन्होंने देखा नहीं। उन अंधों की बातों में मत पड़ना।

दूसरा प्रश्नः

कुछ दिल ने कहा? कुछ भी नहीं

कुछ दिल ने सुना? कुछ भी नहीं
ऐसे भी बातें होती हैं? ऐसे ही बातें होती हैं!

एक तो मनुष्य की बुद्धि में चलते हुए विचारों का जाल है। वहां सब साफ-सुथरा है। वहां चीजें कोटियों में बंटी हैं, क्योंकि वहां तर्क का साम्राज्य है। और एक फिर हृदय में उठती हुई लहरें हैं। वहां कुछ भी साफ-सुथरा नहीं है। वहां तर्क का साम्राज्य नहीं है। वहां प्रेम का विस्तार है। वहां हर लहर दूसरी लहर से जुड़ी है। वहां कुछ भी अलग-थलग नहीं है, सब संयुक्त है। वहां शून्य भी बोलता है, और बोलना भी सन्नाटे जैसा है। वहां नृत्य भी आवाज नहीं करता, और वहां सन्नाटा भी नाचता है।

तर्क की जितनी कोटियां हैं, जैसे-जैसे तुम हृदय के करीब आते हो, टूटती चली जाती हैं। तर्क के जितने हिसाब हैं, जैसे-जैसे तुम हृदय के करीब आते चले जाते हो, वे हिसाब व्यर्थ होने लगते हैं। जितनी धारणाएं हैं विचार की, वे धारणाएं बस जब तक तुम मस्तिष्क में जीते हो, खोपड़ी ही तुम्हारा जब तक घर है, तब तक अर्थपूर्ण हैं। जैसे ही थोड़े गहरे गए, जैसे ही थोड़ी डुबकी ली, जैसे ही थोड़े अपने में लीन हुए, जैसे ही हृदय के पास सरकने लगे, वैसे ही सब रहस्य हो जाता है। जो जानते थे, पता चलता है वह भी कभी जाना नहीं। जो सोचते थे कभी नहीं जाना, एहसास होता है जानने लगे। ज्ञात छूटता है, अज्ञात में गति होती है। किनारे से नाव मुक्त होती है और उस सागर में प्रवेश होता है, जिसका फिर कोई किनारा नहीं। इस किनारे से नाव मुक्त होती है, उस तरफ जहां फिर कोई दूसरा किनारा नहीं है, तटहीन सागर है हृदय का, वहां बड़ी पहेली बन जाती है।

"कुछ दिल ने कहा? कुछ भी नहीं
कुछ दिल ने सुना? कुछ भी नहीं
ऐसे भी बातें होती हैं? ऐसे ही बातें होती हैं!"

दिल को सुनने की कला सीखनी पड़ेगी। अगर पुरानी आदतों से ही सुना, जिस ढंग से मन को सुना था, बुद्धि को सुना था, अगर उसी ढंग से सुना, तो तुम हृदय की भाषा न समझ पाओगे। वह भाषा भाव की है। उस भाषा में शब्द नहीं हैं, संवेग हैं। उस भाषा में शब्दकोश से तुम कुछ भी सहायता न ले सकोगे। उस भाषा में तो जीवन के कोश से ही सहायता लेनी पड़ेगी।

और इसीलिए अक्सर लोग हृदय के करीब जाने से डर जाते हैं। क्योंकि हृदय के पास जाते ऐसा लगता है, जैसे पागल हुए जाते हैं। सब साफ-सुथरापन नष्ट हो जाता है। ऐसा ही समझो कि विराट जंगल है जीवन का, और तुमने एक छोटे से आंगन को साफ-सुथरा कर लिया है--काट दिए झाड़-झंखाड़, दीवालें बना ली हैं। अपने आंगन में तुम सुनिश्चित हो। जरा आंगन से बाहर निकलो, तो जंगल की विराटता घबड़ाती है। वहां खो जाने का डर है। वहां कोई राजपथ नहीं। पगडंडियां भी नहीं हैं, राजपथ तो बहुत दूर।

उस विराट बीहड़ जंगल में, जीवन के जंगल में तो तुम चलो, जितना चलो उतना ही रास्ता बनता है। चलने से रास्ता बनता है। चलने के लिए कोई रास्ता तैयार नहीं है। रेडीमेड वहां कुछ भी नहीं है। इसलिए आदमी डरता है, लौट आता है अपने आंगन में। यही तो अड़चन है। बुद्धि तुम्हारा आंगन है, जहां सब साफ-सुथरा है, जहां गणित ठीक बैठ जाता है।

प्लेटो ने अपनी अकादमी, अपने स्कूल के द्वार पर लिख रखा था--जो गणित न जानता हो, वह भीतर न आए। प्लेटो यह कह रहा है, जिसने बुद्धि की भाषा न सीखी हो, वह यहां भीतर न आए।

मेरे द्वार पर भी लिखा है कुछ। प्लेटो तो लिख सकता है, क्योंकि बुद्धि के पास शब्द हैं, मैं लिख नहीं सकता। लेकिन मेरे द्वार पर भी लिखा है कि जो हृदय की भाषा न समझता हो, वह भीतर न आए। क्योंकि यहां हम उस जगत की ही बात कर रहे हैं, जिसकी कोई बात नहीं हो सकती। यहां हम उसी तरफ जाने की चेष्टा में संलग्न हैं, जहां जाना अपने को मिटाने जैसा है। जहां केवल वे ही पहुंचते हैं जो अपने को खोने को तत्पर होते हैं। तो डर लगेगा।

इसीलिए तो लोग प्रेम से भयभीत हो गए हैं। प्रेम की बात करते हैं, प्रेम करते नहीं। बात खोपड़ी से हो जाती है। करना हो, तो जीवन के बीहड़ जंगल में प्रवेश करना होता है। खतरे ही खतरे हैं। प्रेम के संबंध में लोग सुनते हैं, समझते हैं, गीत गाते हैं, कथाएं पढ़ते हैं, प्रेम करते नहीं। क्योंकि प्रेम करने का अर्थ, अपने को मिटाना। अहंकार खो जाए, तो ही प्रेम का अंकुरण होता है। और जिसने प्रेम ही न जाना--जिस अभागे ने प्रेम ही न जाना--वह प्रार्थना कैसे जानेगा। वह तो प्रेम की पराकाष्ठा है। वह तो प्रेम का आखिरी निचोड़ है, आखिरी सार है।

"कुछ दिल ने कहा? कुछ भी नहीं
कुछ दिल ने सुना? कुछ भी नहीं
ऐसे भी बातें होती हैं? ऐसे ही बातें होती हैं!"

वहां भीतर ऐसी ही तरंगें चलती रहती हैं। वहां हां और ना में फासला नहीं। वहां हां भी कभी ना होता है, ना भी कभी हां होता है। वहां सब विरोध लीन हो जाते हैं एक में। उत्तर में मैं तुमसे कहना चाहूंगा--

कान वो कान है जिसने तेरी आवाज सुनी
आंख वो आंख है जिसने तेरा जलवा देखा

जब तक कान आदमियों की ही बात सुनते रहे, जब तक कान वही सुनते रहे जो बाहर से आता है, जब तक कान आहत नाद को सुनते रहे--जिसकी चोट पड़ती है कान पर और कान के पर्दों पर झन्नाहट होती है--तब तक कान कान ही नहीं। और जब तक आंखों ने वही देखा जो बाहर से आकर प्रतिबिंब बनाता है, तब तक उधार ही देखा। तब तक सत्य का कोई अनुभव न हुआ। तब तक सपना ही देखा। जब कानों ने वह सुना जो भीतर से उमगता है, जो भीतर से उठता है, जो भीतर से भरता है, तभी कान कान हैं। और जब आंखों ने वह देखा जो आंखें देख ही नहीं सकतीं, जब आंखों ने वह देखा जो आंख बंद करके दिखाई पड़ता है, जब आंखें अपने पर लौटीं, स्वयं को देखा, तभी आंखें आंखें हैं।

कान वो कान है जिसने तेरी आवाज सुनी
आंख वो आंख है जिसने तेरा जलवा देखा

सरको। भीतर की तरफ चलो। थोड़ी अपने से पहचान करें। संसार की बहुत पहचान हुई। बहुत परिचय बनाए, कोई काम नहीं आते। बहुत संग-साथ किया, अकेलापन मिटता नहीं। भीड़ में खड़े हो, अकेले हो बिल्कुल। ऐसे भी लोग हैं जो जिंदगीभर भीड़ में रहते हैं और अकेले ही रह जाते हैं। और ऐसे भी लोग हैं जो अकेले ही रहे और क्षणभर को भी अकेले नहीं। जिन्होंने भीतर की आवाज सुन ली उनका अकेलापन समाप्त हो गया। उन्हें एकांत उपलब्ध हुआ। जिन्होंने भीतर के दर्शन कर लिए, उनके सब सपने खो गए। सपनों की कोई जरूरत न रही। सत्य को देख लिया, फिर कुछ और देखने को नहीं बचता।

राबिया अपने घर में बैठी थी। हसन नाम का फकीर उसके घर मेहमान था। सुबह का सूरज निकला, हसन बाहर गया। बड़ी सुंदर सुबह थी। आकाश में रंगीन बादल तैरते थे और सूरज ने सब तरफ किरणों का

जाल फैलाया था। हसन ने चिल्लाकर कहा, राबिया! भीतर बैठी क्या करती है? बाहर आ, बड़ी सुंदर सुबह है। परमात्मा ने बड़ी सुंदर सुबह को पैदा किया है। और आकाश में बड़े रंगीन बादल तैरते हैं। पक्षियों के गीत भी हैं। किरणों का जाल भी है। सब अनूठा है। स्रष्टा की लीला देख, बाहर आ! राबिया खिलखिलाकर हंसी और उसने कहा, हसन! तुम ही भीतर आ जाओ। क्योंकि हम उसे ही देख रहे हैं जिसने सुबह बनाई, जिसने सूरज को जन्म दिया, जिसके किरणों के जाल को देखकर तुम प्रसन्न हो रहे हो, भीतर आओ, हम उसे ही देख रहे हैं।

कान वो कान है जिसने तेरी आवाज सुनी

आंख वो आंख है जिसने तेरा जलवा देखा

तीसरा प्रश्नः ओशो, आप अपने प्रवचनों में प्रतिदिन ऐसी तात्कालिकता पैदा कर देते हैं कि रोआं-रोआं सिहर उठता है। और हृदय में बाढ़ सी आ जाती है और एक शिखर-अनुभव की सी स्थिति बन जाती है। फिर आप कहते हैं कि यदि हम तैयार हों, तो घटना इसी क्षण घट सकती है। कृपया इस तैयारी को कुछ और स्पष्ट करें।

फिर से प्रश्न को पढ़ देता हूं, क्योंकि प्रश्न में ही उत्तर छिपा है।

"आप अपने प्रवचनों में प्रतिदिन ऐसी तात्कालिकता पैदा कर देते हैं कि रोआं-रोआं सिहर उठता है और हृदय में बाढ़ सी आ जाती है।"

बाढ़ नहीं आती, बाढ़ सी!

"और एक शिखर-अनुभव की सी स्थिति बन जाती है।"

शिखर नहीं, शिखर की सी। वहीं उत्तर है। वहीं तैयारी चूक रही है।

बुद्धि झूठे सिक्के बनाने में बड़ी कुशल है। बाढ़ की सी स्थिति बना देती है। बाढ़ का आना और है। बाढ़ के आते तो फिर हो गई घटना! लेकिन बाढ़ की सी स्थिति से नहीं होगी। यह तो ऐसा ही है जैसे तट पर बैठे हैं, नदी में तो बाढ़ नहीं आती, सोच लेते हैं, एक सपना देख लेते हैं, एक ख्वाब देखा कि बाढ़ की सी स्थिति आ गई। फिर आंख खोलकर देखी कि गांव अपनी जगह है--न गांव डूबा, न कुछ बहा--नदी अपनी जगह है। बाढ़ की सी स्थिति आई और गई। कूड़ा-करकट वहीं का वहीं पड़ा है, कुछ भी बहा न। कुछ ताजा न हुआ, कुछ नया न हुआ।

मैं जब बोल रहा हूं तो दो तरह की संभावनाएं बन सकती हैं। तुम मुझे अगर बुद्धि से सुनो, तो ज्यादा से ज्यादा बाढ़ की सी स्थिति बनेगी। बुद्धि बड़ी कुशल है। और बुद्धि, तुम जो चाहो उसी का सपना देखने लगती है।

बुद्धि से मत सुनो। कृपा करो, बुद्धि को जरा बीच से हटाओ। सीधे-सीधे होने दो बात हृदय की हृदय से। बुद्धि से सुनते हो तब... तब तरंगें बुद्धि में उठती हैं। लेकिन बुद्धि की तरंगें तो पानी में खींची गई लकीरों जैसी हैं--बन भी नहीं पातीं और मिट जाती हैं। बुद्धि का भी कोई भरोसा है! विचार क्षणभर नहीं ठहरते और चले जाते हैं। आए भी नहीं कि गए। बुद्धि तो मुसाफिरखाना है। वहां कोई घर बनाकर कभी रहा है? रेल्वे स्टेशन का प्रतीक्षालय है। यात्री आते हैं, जाते हैं। वहां तुम्हारे जीवन में कोई शाश्वत का नाद न बजेगा। एस धम्मो सनंतनो।

उस सनातन का बुद्धि से कोई संबंध न हो पाएगा। बुद्धि क्षणभंगुर है। पानी के बबूले हैं--बने, मिटे। उनमें तुम घर मत बसाना। कभी-कभी पानी के बबूलों में भी सूरज की किरणों का प्रभाव ऐसे रंग दे देता है, इंद्रधनुष छा जाते हैं। मेरी बात तुम सुनते हो। बुद्धि सुनती है, तरंगायित हो जाती है, बाढ़ की सी स्थिति बन जाती है।

एक सपना तुम देखते हो। फिर उठे, गए, बाढ़ चली गई। तुम जहां थे वहीं के वहीं रह गए। कूड़ा-करकट भी न बहा, तुम्हें पूरा बहा ले जाने की तो बात ही दूर! शायद तुम और भी मजबूत होकर जम गए। क्योंकि एक बाढ़, तुम्हें लगा आई और चली गई, और तुम्हारा कुछ भी न बिगाड़ पाई। ऐसे तो तुम रोज सपने देखते रहो बाढ़ों के, कुछ भी न होगा।

बुद्धि को हटा दो। जब सुनते हो तो बस सुनो, विचारो मत। सुनना काफी है, विचारना बाधा है। मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि मैं जो कहता हूं उसे मान लो। क्योंकि वह मानना भी बुद्धि का है। मानना बुद्धि का, न मानना बुद्धि का। स्वीकार करना बुद्धि का, अस्वीकार करना बुद्धि का। मैं तुमसे यह नहीं कहता कि जो मैं तुमसे कह रहा हूं उसे तुम मान लो। न मैं तुमसे कहता हूं न मानो, न कहता हूं मानो। मैं तो कहता हूं सिर्फ सुन लो। सोचो मत। बुद्धि को कह दो, तू चुप!

तुम मुझे ऐसे ही सुनो जैसे अगर पक्षी कोई गीत गाता हो, उसे सुनते हो। तब तो बुद्धि कोई काम नहीं कर सकती। यद्यपि वहां भी थोड़े अपने हाथ फैलाती है। थोड़े झपट्टे मारती है। कहती है बड़ा सुंदर है। कल सुना था वैसा ही गीत है। यह कौन सा पक्षी गा रहा है? थोड़े-बहुत हाथ मारती है, लेकिन ज्यादा नहीं। क्योंकि पक्षी की भाषा तुम नहीं समझते।

मैं तुमसे कहता हूं, मेरी भाषा भी तुम समझते मालूम पड़ते हो, समझते नहीं। क्योंकि जो मैं बोल रहा हूं, वही मैं बोल नहीं रहा हूं। जो मैं तुम्हें कहता हुआ सुनाई पड़ रहा हूं, उससे कुछ ज्यादा तुम्हें देना चाहता हूं। शब्दों के साथ-साथ शब्दों की पोटलियों में बहुत शून्य बांधा है। स्वरों के साथ-साथ उनके पीछे-पीछे बहुत सन्नाटा भी भेजा है। जो कह रहा हूं वही नहीं, अनकहा भी कहे हुए के पीछे-पीछे छिपा आ रहा है।

तुम अगर बुद्धि से ही सुनोगे, तो जो मैंने कहा वही सुनोगे, अनकहे से वंचित रह जाओगे। जो कहा ही नहीं जा सकता, उससे तुम वंचित रह जाओगे। बाढ़ उससे आती है। दृश्य के साथ जो अदृश्य को बांधा है, प्रतीकों के साथ उसे रख दिया है जिसका कोई प्रतीक नहीं, शब्दों की पोटलियों में शून्य को सम्हाला है। अगर बुद्धि से सुना, पोटली हाथ लग जाएगी, पोटली के भीतर जो था वह खो जाएगा। उसी के लिए पोटली का उपयोग था। कंटेंट खो जाएगा। विषयवस्तु खो जाएगी। कंटेनर, खाली डब्बा हाथ लग जाएगा। तब बाढ़ की सी स्थिति मालूम पड़ेगी।

सुनो, सोचो मत। सुनो, मानने न मानने की जरूरत ही नहीं है। मैं तुमसे कहता हूं, सुनने से ही मुक्ति हो सकती है, अगर तुम मानने, न मानने के जाल को खड़ा न करो। क्योंकि जैसे ही तुम्हारे मन में सवाल उठा कि ठीक है, मानने योग्य है; या सवाल उठा ठीक नहीं है, मानने योग्य नहीं है। जब तुम कहते हो ठीक है, मानने योग्य है, तो तुम क्या कर रहे हो? तुम यह कह रहे हो, मेरे अतीत से मेल खाती है बात। मेरे विचारों से तालमेल पड़ता है। मेरी अतीत की श्रद्धा, मान्यताएं, सिद्धांत, शास्त्र, उनके अनुकूल है। तो तुमने मुझे कहां सुना? तुमने अपने अतीत को ही मुझसे पुनः-पुनः सिद्ध कर लिया। यहां मैं तुम्हारे अतीत को सही सिद्ध करने के लिए नहीं हूं।

तो फिर बाढ़ कैसे आएगी? जिसको बहाना था, बाढ़ जिसे ले जाती, वह और मजबूत हो गया। या तुमने कहा कि नहीं, बात जमती नहीं। अपने शास्त्र के अनुकूल नहीं, प्रतिकूल है। अपने सिद्धांतों के साथ नहीं बैठता। तो तुमने अपने को तोड़ ही लिया अलग। जोड़ते हो तो बुद्धि से, तोड़ते हो तो बुद्धि से। यहां कुछ बात ही और हो रही है। न जोड़ने का सवाल है, न तोड़ने का सवाल है। अगर बुद्धि बीच से हट जाए, तो जोड़े कौन, तोड़े कौन? एक ही बचता है, जुड़े कौन, टूटे कौन?

अगर बुद्धि हट जाए, तो तुम पाओगे कि मैं तुम्हारे भीतर वहां हूं, तुम मेरे भीतर यहां हो। तब मैं कुछ ऐसा नहीं कह रहा हूं, जो मेरा है। मेरा कुछ भी नहीं है। कबीर ने कहा है, मेरा मुझमें कुछ नहीं।

जो मैं कह रहा हूं उसमें मेरा कुछ भी नहीं है। जो मैं कह रहा हूं वह तुम्हारा ही है। लेकिन तुमने अपना नहीं सुना है, मैंने अपना सुन लिया है। जो मैं तुमसे कह रहा हूं जब तुम पहचानोगे, तो तुम पाओगे यह तुम्हारी ही आवाज थी। यह तुम्हारा ही गीत था जो मैंने गुनगुनाया।

यहां कोई शास्त्रों की, सिद्धांतों की बात नहीं हो रही है, ये सब तो बहाने हैं, खूंटियां हैं। यहां तो शास्त्रों, सिद्धांतों के बहाने कुछ दूसरा ही खेल हो रहा है। अगर तुमने शब्द ही सुने और उन पर ही विचार किया--ठीक है या गलत; मानें कि न मानें; अपने अनुकूल पड़ता है कि नहीं--तो तुम मुझसे चूक गए। और जो मुझसे चूका, वह खुद से भी चूका। तुम अपने से ही चूक गए।

अब तुम पूछते हो... अगर तुमने अपना प्रश्न ही गौर से देखा होता, तो समझ में आ जाता।

"आप अपने प्रवचनों में प्रतिदिन ऐसी तात्कालिकता पैदा कर देते हैं कि रोआं-रोआं सिहर उठता है। और हृदय में बाढ़ सी आ जाती है।"

बाढ़ सी? सावधान, बाढ़ सी से बचना। बाढ़ चाहिए।

"और एक शिखर-अनुभव की सी स्थिति बन जाती है।"

शिखर-अनुभव की सी? सावधान, यह झूठा सिक्का है!

मन के एक स्वभाव को समझ लो। तुम जो चाहते हो, मन उसकी प्रतिमाएं बना देता है। वह कहता है, यह लो, हाजिर है। दिनभर तुम भूखे रहे, रात सपना देखते हो कि सुस्वादु भोजन कर रहे हो। मन कहता है, दिनभर भूखे रहे, यह लो भोजन हाजिर है। लेकिन रात तुम कितना ही सुस्वादु भोजन करो, पेट न भरेगा। हालांकि नींद सम्हल जाएगी। भूखे रहते तो नींद लगना मुश्किल होती। सपने ने कहा, यह लो भोजन, मजे से कर लो और सो जाओ। तुमने सपने में भोजन कर लिया, सो गए।

तुमने कभी ख्याल किया, नींद में प्यास लगी है, गर्मी की रात है, शरीर ने बहुत पसीना छोड़ दिया है, नींद में प्यास लग गई है। अब डर है, अगर प्यास बढ़ जाए तो नींद टूट जाए। तो मन कहता है, उठो। उठे तुम सपने में, गए रेफ्रिजरेटर के पास, सपने में ही कोकाकोला पी लिया, लौटकर अपने बिस्तर पर सो गए। निश्चिंत अब। मन ने धोखा दे दिया। प्यास अपनी जगह है। न तुम उठे, न तुम गए कहीं; बस एक स्वप्न, एक बाढ़ सी--कोकाकोला सा; नींद सम्हल गई, करवट लेकर तुम सोए रहे। सुबह पता चलेगा कि अरे, प्यासे रातभर पड़े रहे!

स्वप्न का काम है निद्रा की रक्षा। कहीं नींद टूट न जाए, तो स्वप्न का इंतजाम है। स्वप्न सुरक्षा है। नींद को नहीं टूटने देता। सब तरह से बचाता है। और धोखा पैदा हो जाता है। कम से कम नींद में तो काम चल जाता है। सुबह जागोगे, तब पता चलेगा। जिस दिन जागोगे उस दिन सोचोगे बाढ़ सी? किस धोखे में रहे, किस सपने में खो गए?

इन बातों का भरोसा मत करो। इससे एक बात साफ है कि जो भी मैं कहता हूं, तुम्हारी बुद्धि उसकी छानबीन करती है, फिर तुम्हारे भीतर जाता है। तुम्हारी बुद्धि पहरेदार की तरह खड़ी है। जो मैं कहता हूं, बुद्धि पहले परीक्षण करती है उसका, फिर भीतर जाने देती है। परीक्षण ही करे तो भी ठीक है। उसका रंग-रूप भी बदल देती है। अतीत के अनुकूल बना देती है। बुद्धि यानी तुम्हारा अतीत। जो तुमने अब तक जाना है, अनुभव किया है, पढ़ा है, सुना है, उस सबका संग्रह। तो तुमसे कोई नई बात कही ही नहीं जा सकती। और मैं तुमसे नई ही बात करने की जिद्द किए बैठा हूं।

तुम वही सुन सकते हो जो पुराना है, मैं तुमसे वही कहने की जिद्द किए बैठा हूं कि जो नया है। जो नितनूतन है वही सनातन है। जो प्रतिपल नया है वही सनातन है। जो कभी पुराना नहीं हो सकता वही पुरातन है। लेकिन तुम्हारी बुद्धि वहां बैठी है। अपना सारा धूल जमाए हुए है। कोई भी चीज आती है, बुद्धि उसके रंग को बदल देती है। तब तुम सुन पाते हो, पर वह सुनना धोखा हो गया। फिर बाढ़ की सी स्थिति बनती है। वहीं तैयारी चूक गई।

मैं तुमसे कहता हूं, इसी क्षण घटना घट सकती है, यदि तुम तैयार हो। तैयार का क्या अर्थ? तैयार का इतना ही अर्थ, अगर तुम अपनी बुद्धि को किनारे रख देने को तैयार हो। अगर तुम कहते हो, ठीक है, हो जाए साक्षात्कार सीधा-सीधा।

आएं हमारे दिल में दिल से ही मिलाएंगे

यह बीच में भूमिका बांधने के लिए बुद्धि न होगी। परिचय करवाने के लिए बुद्धि न होगी तो अभी इसी घड़ी घटना घट सकती है।

धर्म के लिए ठहरने की कोई जरूरत ही नहीं। उसका कल से कुछ लेना-देना नहीं। आज हो सकता है। धर्म सदा नगद है, उधार नहीं। कल का कोई आश्वासन नहीं देता मैं तुम्हें। अभी हो सकता है, इसी क्षण हो सकता है। कल का तो तुम्हें वे ही आश्वासन देते हैं जो तुम्हारी बुद्धि को ही अपील कर रहे हैं, तुम्हारी बुद्धि को ही निमंत्रण दे रहे हैं। मैंने तुम्हारी बुद्धि को कोई निमंत्रण नहीं दिया है, तुम्हें बुलाया है। जिस दिन भी तुम आओगे बुद्धि को अलग रखकर, किनारे हटाकर, उसी क्षण मिलन संभव है।

तुम मुखातिब भी हो करीब भी हो

तुमको देखूं कि तुमसे बात करूं

तुम यहां बैठे हो, मैं यहां बैठा हूं--

तुम मुखातिब भी हो करीब भी हो

तुमको देखूं कि तुमसे बात करूं

अगर तुमने मुझसे बात की, चूके। अगर तुमने मुझे देखा, पाया। यहां मैं तुमसे बोल भी रहा हूं और यहां हूं भी। बोलना सिर्फ बहाना है। बोलना तो सिर्फ तुम्हें बुलाना है। बोलना तो सिर्फ यह है कि खाली तुम न बैठ सकोगे मेरे पास इतनी देर। रोज-रोज खाली बैठने को तुम न आ सकोगे। उतनी समझ की तुमसे अपेक्षा नहीं। अगर मैं चुप हो जाऊंगा, तुम धीरे-धीरे छंटते चले जाओगे। तुम कहोगे खाली ही वहां बैठना है, तो अपने घर ही बैठ लेंगे। घर भी तुम न बैठोगे, क्योंकि तुम कहोगे खाली बैठने से क्या सार? इतना समय तो धन में रूपांतरित हो सकता है। कुछ कमा लेंगे, कुछ कर लेंगे।

मैं तुमसे बोल रहा हूं, ताकि तुम्हें उलझाए रखूं। ऐसे ही जैसे छोटा बच्चा ऊधम कर रहा हो, खिलौना दे देते हैं। खिलौने से खेलता रहता है, उतनी देर कम से कम शांत रहता है। तुमसे बात करता हूं, शब्द तो खिलौने हैं। थोड़ी देर तुम खेलते रहो, शायद खेलने में मन तल्लीन हो जाए, ठहर जाओ तुम थोड़ी देर मेरे पास। शायद तुम आंख उठाकर देखो और मैं तुम्हें दिखाई पड़ जाऊं। असली सवाल वही है, असली काम वही है। उसी क्षण असली काम शुरू होगा जिस दिन तुम मुझे देखोगे।

तुम मुखातिब भी हो करीब भी हो

तुमको देखूं कि तुमसे बात करूं

कब तक तुम मुझसे बात करते रहोगे? देखो अब। और तैयारी का कोई अर्थ नहीं है। बात होती है बुद्धि से। देखना होता है हृदय से। जब तुम देखते हो, तो आंखों के पीछे हृदय आ जाता है। जब तुम बात करते हो, तो आंखों के पीछे बुद्धि आ जाती है। बुद्धि यानी तुम्हारे विचार करने का यंत्र। हृदय यानी तुम्हारे प्रेम करने का यंत्र। देखना एक प्रेम की घटना है। और अगर प्रेम से नहीं देखा, तो क्या खाक देखा! जब आंख से प्रेम उंडलता हो तभी देखना घटता है।

मैं तुम्हारे सामने भी हूं, तुमसे बात भी कर रहा हूं। अब यह तुम्हारे ऊपर है, तुम अपने से पूछ लो--

तुम मुखातिब भी हो करीब भी हो

तुमको देखूं कि तुमसे बात करूं

बात तुम करते रहो जन्मों-जन्मों तक, बात से बात निकलती रहेगी। बात मैं करता रहूंगा, बात करने में कहीं कोई अड़चन है? बात से सरल कहीं कोई और बात है? लेकिन यह सिर्फ बहाना था। बहाना था कि शायद इसी बीच किसी दिन खिलौनों से खेलते-खेलते तुम आंख उठाकर देख लो। खिलौनों में उलझे होने के कारण मन तो खिलौनों में उलझा रह जाए, और तुम्हारी आंख मुझे मिल जाए। बुद्धि शब्दों में उलझी तो उलझी रहे, कभी किसी क्षण में रंध्र मिल जाए, थोड़ी जगह मिल जाए, और तुम झांककर मेरी तरफ देख लो। उसी क्षण घटना घट सकती है। मैं देने को तैयार हूं, तुम जिस दिन लेने को तैयार होओगे।

चौथा प्रश्नः

कहां ले चले हो बता दो मुसाफिर

सितारों से आगे ये कैसा जहां है

वो क्या इश्क के बाकी इम्तहां हैं

पूछो मत, चलो। पूछना भी बुद्धि की होशियारी है। प्रेम के मार्ग पर भी बुद्धि पूछती है, कहां ले चले हो? और प्रेम के मार्ग पर बुद्धि चल नहीं सकती। और बुद्धि अगर पूछती रहे, तो तुम्हें भी न चलने देगी। कभी तो इतना साहस करो, कि चलो चलते हैं। पूछेंगे नहीं। यही तो प्रेम का लक्षण है।

अगर मुझसे प्रेम है तो पूछने की कोई जरूरत नहीं, चल पड़ो। पूछना प्रेम के अभाव का द्योतक है। पहले से सब पक्का कर लेना है--कहां जा रहे हैं? क्यों जा रहे हैं? क्या प्रयोजन है? अपना कोई लाभ है, नहीं है? कहीं ले जाने वाला अपना ही कोई लाभ तो नहीं देख रहा है? कहीं ले जाने वाला धोखा तो नहीं दे रहा है? बुद्धि आत्मरक्षा है और प्रेम आत्मसमर्पण। दोनों साथ-साथ नहीं हो सकते।

यही प्रेम का आखिरी इम्तहां है। आखिरी, कि चल पड़ो। और बुद्धि पर कितने दिन भरोसा करके देख लिया, पहुंचे कहां? कितना बुद्धि के साथ हिसाब करके दिख लिया, मंजिल कहीं आती तो दिखाई पड़ती नहीं। झलक भी नहीं मिलती। फिर भी इस पर भरोसा किए जा रहे हो?

ठीक-ठीक बुद्धिमान आदमी अपनी बुद्धि पर संदेह करने लगता है। वह बुद्धि की पराकाष्ठा है, जब अपनी बुद्धि पर संदेह आता है। आना चाहिए। सिर्फ बुद्धुओं को अपनी बुद्धि पर संदेह नहीं आता। कितने दिन से चलते हो उसी के साथ, कहां पहुंचे हो? फिर भी भरोसा उसी पर है।

जिस दिन भी तुम्हें यह दिखाई पड़ जाएगा उसी दिन जीवन में एक नया मार्ग खुलता है। एक नया द्वार खुलता है। वह हमेशा पास ही था, कोई बहुत दूर न था। बुद्धि, हृदय में फासला ही कितना है? वह पास ही था,

अब भी पास है। लेकिन जब तक तुम बुद्धि की ही सुने जाओगे, पूछे चले जाओगे...। यह पूछना आश्वस्त होने की चेष्टा है। कैसे मैं तुम्हें आश्वस्त करूं? कुछ भी मैं कहूं, वह मेरा ही कहना होगा, तुम्हारा अनुभव न बन जाएगा। जब तक तुम्हारा अनुभव न बन जाए, तब तक मुझ पर भरोसा कैसे आएगा?

तो दो ही उपाय हैं। या तो तुम जैसे चलते हो वैसे ही चलते रहो। शायद कभी थकोगे, अनंत जन्मों के बाद ऊबोगे, होश आएगा, तो फिर किसी का हाथ पकड़ोगे। वह हाथ अभी भी उपलब्ध है। वह हाथ सदा उपलब्ध रहेगा। उस हाथ का मुझसे या किसी का कोई लेना-देना नहीं है। वह हाथ तो परमात्मा का है। वह परमात्मा का हाथ अनेक हाथों में प्रविष्ट हो जाता है। कभी बुद्ध के हाथ में, कभी मोहम्मद के हाथ में। लेकिन तुम्हारा हाथ उसे पकड़ेगा तभी तो कुछ होगा। और तुम तभी पकड़ोगे जब तुम अज्ञात की यात्रा पर जाने को तैयार हो।

मत पूछो, "कहां ले चले हो बता दो मुसाफिर!"

एक तो बताना मुश्किल है। क्योंकि तुम्हारी भाषा में उस जगत के लिए कोई शब्द नहीं है। और बताने पर भी तुम भरोसा कैसे करोगे? पूछो बुद्ध से, वे कहते हैं निर्वाण। पूछो मीरा से, वह कहती है कृष्ण, बैकुंठ। क्या होता है शब्दों को सुनने से। मीरा के चारों तरफ खोजकर देखो, तुम्हें बैकुंठ का कोई पता न चलेगा। क्योंकि बैकुंठ तो मीरा के भीतर है। और जब तक वैसा ही तुम्हारे भीतर न हो जाए, जब तक तुम भी डुबकी न लगा लो!

मत पूछो, "कहां ले चले हो बता दो मुसाफिर, सितारों के आगे ये कैसा जहां है?"

सितारों के आगे का अर्थ ही यही होता है--जहां तक दिखाई पड़ता है, उसके आगे। सितारों का मतलब है, जहां तक दिखाई पड़ता है।

सितारों के आगे जहां और भी हैं

इसका मतलब इतना ही है कि कुछ दिखाई नहीं पड़ता, ये आंखें थक जाती हैं। इन आंखों की सीमा आ जाती है।

सितारों के आगे जहां और भी हैं

अभी इश्क के इम्तहां और भी हैं

इश्क का इम्तहान क्या है? वही, जहां नहीं दिखाई पड़ता वहां भी किसी के ऊपर भरोसा। जहां नहीं दिखाई पड़ता वहां भी श्रद्धा। जहां नहीं दिखाई पड़ता वहां भी चलने का साहस।

तुम जिसे संदेह कहते हो, गौर से खोजना, कहीं वह सिर्फ कायरता तो नहीं है! कहीं डर तो नहीं है, कहीं भय तो नहीं है कि कहीं लूट न लिए जाएं! कहीं ऐसा तो नहीं है कि कैसे पक्का करें, कौन लुटेरा है, कौन मार्गदर्शक है!

लेकिन इसकी फिकर छोड़ो, पहले यह सोचो, तुम्हारे पास लुट जाने को है भी क्या? तुम पहले ही लुट चुके हो। संसार से बड़ा और लुटेरा अब तुम्हें कहां मिलेगा? संसार ने तो रत्ती-रत्ती, पाई-पाई भी लूट लिया है। एक सिफर हो, एक शून्यमात्र रह गए हो। आंकड़ा तो एक भी नहीं बचा है भीतर। कुछ भी नहीं है पास, फिर भी डरे हो कि कहीं लुट न जाओ।

यह जो तुम पूछते हो--कहां ले चले हो बता दो मुसाफिर, यह भय के कारण, कायरता के कारण, साहस की कमी के कारण। लेकिन तुम जहां भी चलते रहे हो अब तक, अगर वहां से ऊब गए हो, तो अब खतरा क्या

है? किसी नए मार्ग को खोजकर देख लो। असली सवाल साहस का है। साधारणतः लोग सोचते हैं, श्रद्धालु लोग डरपोक हैं, कायर हैं। और मैं तुमसे कहता हूं, श्रद्धा इस जगत में सबसे बड़ा दुस्साहस है।

ऐसा हुआ कि तिब्बत का एक फकीर अपने गुरु के पास गया। गुरु की बड़ी ख्याति थी। और यह फकीर बड़ा श्रद्धालु था। और गुरु जो भी कहता, सदा मानने को तैयार था। इसकी प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। और शिष्यों को पीड़ा हुई। उन्होंने एक दिन इससे छुटकारा पाने के लिए--एक पहाड़ी के ऊपर बैठे थे--इससे कहा कि अगर तुम्हें गुरु में पूरी श्रद्धा है तो कूद जाओ। तो वह कूद गया। उन्होंने तो पक्का माना कि हुआ खतम। नीचे जाकर देखा तो वह पद्मासन में बैठा था। और ऐसा सौंदर्य और ऐसी सुगंध उन्होंने कभी किसी व्यक्ति के पास न देखी थी, जो उसके चारों तरफ बरस रही थी। वे तो बड़े हैरान हुए। सोचा संयोग है।

संदेह ज्यादा से ज्यादा संयोग तक पहुंच सकता है, कि संयोग की बात है कि बच गया। कोई फिकर नहीं। एक मकान में आग लगी थी, उन्होंने कहा कि चले जाओ, अगर गुरु पर पूरा भरोसा है, शिष्यों ने ही। वह चला गया भीतर। मकान तो जलकर राख हो गया। जब वे भीतर गए तो आशा थी कि वह भी जलकर राख हो चुका होगा। वह तो वहां ऐसे बैठा था, जल में कमलवत। आग ने छुआ ही नहीं। उन्होंने सुनी थीं अब तक ये बातें कि ऐसे लोग भी हुए हैं--जल में कमलवत, पानी में होते हैं और पानी नहीं छूता। आज जो देखा, वह अदभुत चमत्कार था! आग में था और आग ने भी न छुआ। पानी न छुए, समझ में आता है!

अब संयोग कहना जरा मुश्किल मालूम पड़ा। गुरु के पास ये खबरें पहुंचीं। गुरु को भी भरोसा न आया, क्योंकि गुरु खुद ही इतनी श्रद्धा का आदमी न था। गुरु ने सोचा कि संयोग ही हो सकता है, क्योंकि मेरे नाम से हो जाए! अभी तो मुझे ही भरोसा नहीं कि अगर मैं जलते मकान में जाऊं तो बचकर लौटूंगा, कि मैं कूद पड़ूं पहाड़ से और कोई हाथ मुझे सम्हाल लेंगे अज्ञात के। तो गुरु ने कहा कि देखेंगे।

एक दिन नदी के तट से सब गुजरते थे। गुरु ने कहा कि तुझे मुझ पर इतना भरोसा है कि आग में बच गया, पहाड़ में बच गया, तू नदी पर चल जा। वह शिष्य चल पड़ा। नदी ने उसे न डुबाया। वह नदी पर ऐसा चला जैसे जमीन पर चल रहा हो। गुरु को लगा कि निश्चित ही मेरे नाम का चमत्कार है। अहंकार भयंकर हो गया। कुछ था तो नहीं पास।

तो उसने सोचा, जब मेरा नाम लेकर कोई चल गया, तो मैं तो चल ही जाऊंगा। वह चला, पहले ही कदम पर डुबकी खा गया। किसी तरह बचाया गया। उसने पूछा कि यह मामला क्या है? मैं खुद डूब गया! वह शिष्य हंसने लगा। उसने कहा, मुझे आप पर श्रद्धा है, आपको अपने पर नहीं। श्रद्धा बचाती है।

कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि जिन पर तुमने श्रद्धा की उनमें कुछ भी न था, फिर भी श्रद्धा ने बचाया। और कभी-कभी ऐसा भी हुआ है, जिन पर तुमने श्रद्धा न की उनके पास सब कुछ था, लेकिन अश्रद्धा ने डुबाया है। कभी बुद्धों के पास भी लोग संदेह करते रहे और डूब गए। और कभी इस तरह के पाखंडियों के पास भी लोगों ने श्रद्धा की और पहुंच गए।

तो मैं तुमसे कहता हूं, गुरु नहीं पहुंचाता, श्रद्धा पहुंचाती है। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, श्रद्धा ही गुरु है। और जहां तुम्हारी श्रद्धा की आंख पड़ जाए, वहीं गुरु पैदा हो जाए। परमात्मा नहीं पहुंचाता, प्रार्थना पहुंचाती है। और जहां हृदयपूर्वक प्रार्थना हो जाए वहीं परमात्मा मौजूद हो जाता है। मंदिर नहीं पहुंचाते, भाव पहुंचाते हैं। जहां भाव है वहां मंदिर है।

मत पूछो कि कहां ले चला हूं। चलने की हिम्मत हो, साथ हो जाओ। चलने की हिम्मत न हो, नाहक समय खराब मत करो, भाग खड़े होओ। ऐसे आदमी के पास नहीं रहना चाहिए जिस पर भरोसा न हो। कहीं

और खोजो। शायद किसी और पर भरोसा आ जाए। क्योंकि असली सवाल भरोसे का है! किस पर आता है, यह बात गौण है। कौन जाने किसी और पर आ जाए, तो फिर तुम्हारा मार्ग वहीं से हो जाएगा। जिसके पास जाकर तुम्हें पूछने का सवाल न उठे कि कहां ले चले हो, चल पड़ने को तैयार हो जाओ। अंधेरे में जाता हो वह तो अंधेरे में, और नर्क में जाता हो तो नर्क में। जहां तुम्हारे मन में ये संदेह और सवाल न उठते हों, यही आखिरी मंजिल है, यही आखिरी इम्तहां है।

सितारों के आगे जहां और भी हैं

अभी इश्क के इम्तहां और भी हैं

और आखिरी इम्तहान इश्क का यही है कि प्रेम इतना अनन्य हो, श्रद्धा इतनी अपूर्व हो कि श्रद्धा ही नाव बन जाए, कि प्रेम ही बचा ले। मार्ग नहीं पहुंचाता, श्रद्धा पहुंचाती है। मंजिल कहीं दूर थोड़े ही है। जिसने प्रेम किया, उसने अपने भीतर पा ली।

पांचवां प्रश्नः लीनता व भक्ति के साधक को बुद्ध के होश की और अप्प दीपो भव की बातों के प्रति क्या रुख रखना चाहिए?

जरूरत क्या है? तुम्हें सभी के प्रति रुख रखने की जरूरत क्या है? तुम अपनी श्रद्धा का बिंदु चुन लो, शेष सब को भूल जाओ। तुम्हें कोई सारे बुद्धों के प्रति श्रद्धा थोड़े ही रखनी है। एक पर तो रख लो। सब पर रखने में तो तुम बड़ी झंझट में पड़ जाओगे। एक पर ही इतनी मुश्किल है, सब पर तुम कैसे रख सकोगे? तुम एक मंदिर को तो मंदिर बना लो; सब मस्जिद, सब गुरुद्वारे, सब शिवालय, उनकी तुम चिंता में मत पड़ो। क्योंकि जिसका एक मंदिर मंदिर बन गया, वह एक दिन अचानक पा लेता है कि सभी मस्जिदों में, सभी गुरुद्वारों में वही मंदिर है। एक सिद्ध हो जाए, सब सिद्ध हो जाता है।

और अगर तुमने यह चेष्टा की कि मैं सभी में श्रद्धा रखूं, तुम्हारे पास श्रद्धा इतनी कहां है? इतना बांटोगे, रत्ती-रत्ती श्रद्धा हो जाएगी। अगर अल्लाह को पुकारना हो तो पूरे प्राणों से अल्लाह को ही पुकार लो। अल्ला ईश्वर तेरे नाम--इस तरह की बकवास में मत पड़ना। क्योंकि तब न तुम्हारे राम में बल होगा और न तुम्हारे अल्लाह में बल होगा। यह राजनीतिक बातचीत हो सकती है, धर्म का इससे कुछ लेना-देना नहीं। अल्लाह को ही तुम परिपूर्ण प्राणों से पुकार लो, तुम अल्लाह में ही छिपे राम को किसी दिन पहचान लोगे। अल्लाह ही जब पूरी त्वरा और तीव्रता से पुकारा जाता है, तो राम भी मिल जाते हैं। राम जब पूरी त्वरा से पुकारा जाता है, तो अल्लाह भी मिल जाता है। क्योंकि ये सब नाम उसी के हैं। लेकिन तुम बैठकर इन सभी नामों की माला मत बनाना।

लीनता और भक्ति के साधक को जरूरत ही क्या है बुद्ध की? बुद्ध जानें, उनका काम जाने। लीनता और भक्ति का साधक लीनता और भक्ति में डूबे। ऐसी अड़चनें क्यों खड़ी करना चाहते हो?

क्योंकि ध्यान रखना, मंजिल एक है, मार्ग अनेक हैं। तुम अगर सभी मार्गों पर एक साथ चलना चाहो, पागल हो जाओगे। चलोगे तो एक ही मार्ग पर, यद्यपि सभी मार्ग उसी मंजिल पर पहुंचा देते हैं। लेकिन अगर तुम्हें बंबई जाना हो, तो तुम एक ही मार्ग चुनोगे। अगर तुमने सभी मार्ग चुन लिए, तो दो कदम इस मार्ग पर चलोगे, दो कदम उस मार्ग पर चलोगे, चार कदम किसी और मार्ग पर चलोगे, तुम पहुंचोगे कैसे? एक ही मार्ग पर चलोगे तो पहुंचोगे।

भक्त की दुनिया अलग है। भक्त के देखने के ढंग अलग हैं। भक्त के तौर-तरीके अलग हैं। भक्त की जीवन-शैली अलग है। साधक की जीवन-शैली अलग है। साधक होश को साधता है। होश से ही मस्ती को पाता है। भक्त मस्ती को साधता है। मस्ती से ही होश को पाता है।

जबाने-होश से ये कुफ्र सरजद हो नहीं सकता

मैं कैसे बिन पिए ले लूं खुदा का नाम है साकी

भक्त की बड़ी अलग दुनिया है। वह कहता है, हम तो खुदा का नाम भी लेंगे तो बिना पीए नहीं ले सकते। खुदा का नाम है, कोई साधारण बात है कि बिना पीए ले लें! मस्ती में ही लेंगे। होश में खुदा का नाम लें? बात जमती नहीं। डूबकर लेंगे। पागल होकर लेंगे।

जबाने-होश से ये कुफ्र सरजद हो नहीं सकता

भक्त कहता है कि मेरी जबान से ये पाप मैं न कर सकूंगा।

मैं कैसे बिन पिए ले लूं खुदा का नाम है साकी

पीकर ही लूंगा। नाचकर लूंगा। मस्ती में सराबोर करके लूंगा। होश से खुदा का नाम? तो बुद्धि पर ही अटक जाएगा। लड़खड़ाते कदमों से लूंगा।

पांव पड़ैं कित के किती--सहजो ने कहा है।

झूमते हुए लेंगे। सम्हलकर और खुदा का नाम? वह नाम खुदा का ही न रहा फिर। भक्त की दुनिया बड़ी अलग है।

गुनाह गिन-गिन के मैं क्यों अपने दिल को छोटा करूं

सुना है तेरे करम का कोई हिसाब नहीं

तेरी कृपा का कोई अंत नहीं, हम काहे को छोटा मन करें गिन-गिनकर अपने पापों को, कि यह भूल की, वह भूल की। यह तो तेरे संबंध में शिकायत हो जाएगी। भक्त कहता है, हम अपनी भूलों और पापों का हिसाब रखें?

गुनाह गिन-गिन के मैं क्यों अपने दिल को छोटा करूं

सुना है तेरे करम का कोई हिसाब नहीं

परमात्मा का हृदय अगर बड़ा है, अगर परमात्मा की करुणा अपार है, तो हम अपने मन को क्यों छोटा करें।

भक्त पाप-माप की फिकर नहीं करता। इसका यह मतलब नहीं है कि पाप करता है। भक्त परमात्मा में ऐसा लीन हो जाता है कि पाप होते नहीं। जिसने परमात्मा को इतने हृदय से याद किया हो, उससे पाप कैसे होंगे?

इसे तुम समझ लो। भक्त पाप छोड़ता नहीं। परमात्मा को पकड़ता है, पाप छूट जाते हैं। साधक पाप छोड़ता है। पाप के छूटने से परमात्मा को पाता है। साधक को चेष्टा करनी पड़ती है, रत्ती-रत्ती। साधक संघर्ष है, संकल्प है। भक्त समर्पण है।

भक्त कहता है, तेरी करुणा इतनी अपार है कि हम क्यों नाहक दीन हुए जाएं कि यह भूल हो गई, वह भूल हो गई? तू भी कहीं इन भूलों की फिकर करेगा! हमारी भूलों का तू हिसाब रखेगा? हम इतने छोटे हैं कि बड़ी भूलें भी तो हमसे नहीं होतीं।

तुमने कौन सी बड़ी भूल की, जरा सोचो। और अगर परमात्मा हिसाब रखता हो, तो परमात्मा न हुआ कोई दुकानदार हो गया। तुम्हारी भूलें भी क्या हैं? क्या भूलें की हैं तुमने? भक्त तो कहता है, अगर की भी होगी, तो तूने ही करवायी होगी। तेरी कोई मर्जी रही होगी।

भक्त तो यह कहता है कि यह भी खूब मजा है! तूने ही बनाया जैसा हमें--अब हमसे भूलें हो रही हैं, और सजा हमको, यह भी खूब मजा है! यह भी खूब रही! बनाए तू, करवाए तू, फंस जाएं हम! भक्त अपने को बीच में नहीं लेता। वह कहता है, तेरा काम, तू जान। तूने बनाया जैसा बनाया, जो करवाया, वह हुआ। हम तेरे हैं, अब तू ही समझ। भक्त का ढंग और! साधक कहता है, भूलें हो गयीं, एक-एक भूल को काटना है, सुधारना है।

तो तुम अपना मार्ग चुन लो एक दफा। फिर बार-बार यह मत पूछो कि मैंने भक्त का मार्ग चुन लिया, अब मैं होश भी साधना चाहता हूं। फिर बात गलत हो जाएगी। कि मैंने भक्त का मार्ग चुन लिया, अब मुझे योगासन भी करने हैं। नाचने वाले को कहां फुर्सत योगासन करने की! और क्या मजा है योगासन का, जिसको नाचना आ गया! और नाच से बड़ा कहीं कोई योगासन है? योगासन का अर्थ होता है, जहां हम उससे मिलकर एक हो जाएं। नाच से बड़ा कहीं कोई योगासन है? क्योंकि नाच से बड़ा कहां कौन सा योग है? नृत्य महायोग है। पर वह भक्त की बात है।

अगर भक्त का मार्ग चुन लिया तो भूलो... बुद्ध को भूल जाने से कोई अड़चन न होगी और बुद्ध कुछ नाराज न होंगे। जब तुम मंजिल पर पहुंचोगे, उनका आशीर्वाद भी तुम्हें मिलेगा ही कि तुम आ गए, और मुझे छोड़कर भी आ गए। लेकिन अगर बुद्ध को चुना है, तो फिर छोड़ दो भक्त की बात।

कहीं ऐसा न हो कि ये तुम्हारे मन की तरकीबें हों कि तुम जो चुनते हो वह करना नहीं है, तो दूसरे को बीच में ले आते हो, ताकि अड़चन खड़ी हो जाए, दुविधा बन जाए। दुविधा बन जाए, तो करें कैसे?

बुद्ध को चुन लिया, पर्याप्त हैं बुद्ध। किसी की कोई जरूरत नहीं। फिर मीरा और चैतन्य को भूल जाओ। फिर कृष्ण को बीच में लाओ ही मत। बुद्ध काफी हैं। यह इलाज पर्याप्त है। उनकी चिकित्सा पूरी है। उसमें किसी और को जोड़ने की कोई जरूरत नहीं।

लेकिन वह ढंग और, वह दुनिया और! वहां एक-एक भूल को काटना है। होश को साधना है। संकल्प को प्रगाढ़ करना है। अपने को निखारना है, शुद्ध करना है। तुम जब निखर जाओगे, शुद्ध हो जाओगे, तब परमात्मा तुममें उतरेगा।

भक्त परमात्मा को बुला लेता है और कहता है, तुम आ जाओ, मुझसे तो क्या निखरेगा, मुझसे क्या सुधरेगा। तुम आ जाओगे, तुम्हारी मौजूदगी ही निखार देगी, सुधार देगी।

दोनों तरह से लोग पहुंचे हैं। मेरे लिए कोई चुनाव नहीं है। दोनों बिल्कुल ठीक हैं। तुम अपनी प्रकृति के अनुकूल मार्ग को चुन लो। अगर तुम समर्पण कर सकते हो, तो भक्ति। अगर तुम समर्पण न कर सकते हो, समर्पण में तुम्हारा रस न हो, अनुकूल न पड़ता हो, तो फिर योग, तप, ध्यान।

ध्यान उनके लिए, जो प्रेम में डूबने से घबड़ाते हों। प्रार्थना उनके लिए, जो प्रेम में डूबने को तत्पर हों। ध्यान में विचार को काटना है। प्रेम में विचार को समर्पित करना है। दोनों स्थिति में विचार चला जाता है। ध्यानी काटता है, प्रेमी परमात्मा के चरणों में रख देता है कि तुम सम्हालो।

आखिरी प्रश्नः

कल आए थे प्रभु मेरे घर

मैं सो रही थी बेखबर

कौन से कर्मों के फल हैं प्रेमसागर

आप आए और मैं खड़ी रही बाहर

जीवन जैसे-जैसे थोड़ा-थोड़ा झुकेगा, जैसे-जैसे अहंकार थोड़ा-थोड़ा गलेगा, वैसे-वैसे अंधेरी से अंधेरी रात में भी उसकी बिजलियां कौंधनी शुरू हो जाती हैं। तुम झुके नहीं कि उसका आना शुरू हुआ नहीं। तुम्हीं बाधा हो। तुम्हीं दीवाल बनकर खड़े हो। तुम गिर जाओ, उसका खुला आकाश सदा से ही मुक्त है।

परमात्मा दूर नहीं है, तुम अकड़े खड़े हो। तुम्हारी अकड़ ही दूरी है। तुम्हारा नब जाना, तुम्हारा झुक जाना ही निकटता हो जाएगी। उपनिषद कहते हैं, परमात्मा दूर से दूर और पास से भी पास है। दूर, जब तुम अकड़ जाते हो। दूर, जब तुम पीठ कर लेते हो। दूर, जब तुम जिद्द कर लेते हो कि है ही नहीं। दूर, जब तुम कहते हो मैं ही हूं, तू नहीं है। पास, जब तुम कहते हो तू ही है, मैं नहीं हूं। जब तुम आंख खोलते हो। जब तुम अपने पात्र को--अपने हृदय के पात्र को--उसके सामने फैला देते हो, तब तुम भर जाते हो, हजार-हजार खजानों से।

प्रभु तो रोज ही आ सकता है। आता ही है। उसके अतिरिक्त और कौन आएगा? जब तुम नहीं पहचानते, तब भी वही आता है। जब तुम पहचान लेते हो, धन्यभाग! जब तुम नहीं पहचानते, तब भी उसके अतिरिक्त और कोई न कभी आया है, न आएगा। वही आता है। क्योंकि सभी शक्लें उसी की हैं। सभी रूप उसके। सभी स्वर उसी के। सभी आंखों से वही झांका है। तो अगर कभी एक बार ऐसी प्रतीति हो कि आगमन हुआ है, तो उस प्रतीति को गहराना, सम्हालना; उस प्रतीति को साधना, सुरति बनाना। और धीरे-धीरे कोशिश करो, जो भी आए उसमें उसको पहचानने की।

पुरानी कहावत है, अतिथि देवता है। अर्थ है कि जो भी आए उसमें परमात्मा को पहचानने की चेष्टा जारी रखनी चाहिए। चाहे परमात्मा हजार बाधाएं खड़ी करे, तो भी तुम धोखे में मत आना। परमात्मा चाहे गालियां देता आए, तो भी तुम समझना कि वही है। मित्र में तो दिखाई पड़े ही, शत्रु में भी दिखाई पड़े। अपनों में तो दिखाई पड़े ही, परायों में भी दिखाई पड़े। रात के अंधेरे में ही नहीं, दिन के उजाले में भी। नींद और सपनों में ही नहीं, जागरण में भी। अभी तुम कली हो, और जितने पदचाप तुम्हें उसके सुनाई पड़ने लगें उतनी ही पखुड़ियां तुम्हारी खुलने लगेंगी।

तुम्हारी पीड़ा मैं समझता हूं। कभी-कभी उसकी झलक मिलती है और खो जाती है। कभी-कभी आता पास लगता है और पदध्वनियां दूर हो जाती हैं। लगता है मिला, मिला, और कोई सूत्र हाथ से छूट जाता है।

चमन में फूल तो खिलते सभी ने देख लिए

चमन में फूल तो खिलते सभी ने देख लिए

सिसकते गुंचे की हालत किसी को क्या मालूम

वह जो कली का रोना है, सिसकना है--

सिसकते गुंचे की हालत किसी को क्या मालूम

पर वह तुम्हारी सभी की हालत है। सिसकते हुए गुंचे की हालत। रोती हुई कली की हालत। और कली तभी फूल हो सकती है जब अनंत के पदचाप उसे सुनाई पड़ने लगें। तुम अपने तईं फूल न हो सकोगे। सुबह जब सूरज उगता है और सूरज की किरणें नाच उठती हैं आकर कली की निकटता में, सामीप्य में--कली के ऊपर--जब

सूरज की किरणों के हल्के-हल्के पद कली पर पड़ते हैं, तो कली खिलती है, फूल बनती है। जब तक तुम्हारे ऊपर परमात्मा के पदचाप न पड़ने लगें, उसके स्वर आकर आघात न करने लगें, तब तक तुम कली की तरह ही रहोगे।

और कली की पीड़ा यही है कि खिल नहीं पाई। जो हो सकता था, वह नहीं हो पाया। नियति पूरी न हो, यही संताप है, यही दुख है। हर आदमी की पीड़ा यही है कि वह जो होने को आया है, नहीं हो पा रहा है। लाख उपाय कर रहा है--गलत, सही; दौड़-धूप कर रहा है; लेकिन पाता है, समय बीता जाता है और जो होने को मैं आया हूं वह नहीं हो पा रहा हूं। और जब तक तुम वही न हो जाओ जो तुम होने को आए हो, तब तक संतोष असंभव है। स्वयं होकर ही मिलता है परितोष।

तो सुनो प्रभु के पद जहां से भी सुनाई पड़ जाएं। और धीरे-धीरे सब तरफ से सुनाई पड़ने लगेंगे। जिस दिन हर घड़ी उसी का अनुभव होने लगे, कि वही द्वार पर खड़ा है, उस क्षण फूल हठात खुल जाता है। वह जो सुगंध तुम अपने भीतर लिए हो, अभिव्यक्त हो जाती है। वही अनुग्रह है, उत्सव है, अहोभाव है।

चमन में फूल तो खिलते सभी ने देख लिए

सिसकते गुंचे की हालत किसी को क्या मालूम

मुझे मालूम है। तुम्हारी सबकी हालत मुझे मालूम है। क्योंकि वही हालत कभी मेरी भी थी। उस पीड़ा से मैं गुजरा हूंः जब तुम खोजते हो सब तरफ, कहीं सुराग नहीं मिलता; टटोलते हो सब तरफ और चिराग नहीं मिलता; और जिंदगी प्रतिपल बीती चली जाती है, हाथ से क्षण खिसकते चले जाते हैं, जीवन की धार बही चली जाती है--यह आई मौत, यह आई मौत; जीवन गया, गया--और कुछ हो न पाए; पता नहीं क्या लेकर आए थे, समझ में ही न आया; पता नहीं क्यों आए थे, क्यों भेजे गए थे, कुछ प्रतीति न हुई; गीत अनगाया रह गया, फूल अनखिला रह गया।

सुनो उसकी आवाज और सभी आवाजें उसकी हैं, सुनने की कला चाहिए। गुनो उसे, क्योंकि सभी रूप उसी के हैं, गुनने की कला चाहिए। जागते-सोते, उठते-बैठते एक ही स्मरण रहे कि तुम परमात्मा से घिरे हो। शुरू-शुरू में चूक-चूक जाएगा, भूल-भूल जाएगा, विस्मृति हो जाएगी, पर अगर तुम धागे को पकड़ते ही रहे, तो जैसा बुद्ध कहते हैं, तुम फूलों के ढेर न रह जाओगे। वही सुरति का धागा तुम्हारे फूलों की माला बना देगा।

और फिर मैं तुमसे कहता हूं--फिर-फिर कहता हूं--जिस दिन तुम्हारी माला तैयार है, वह खुद ही झुक आता है, वह अपनी गर्दन तुम्हारी माला में डाल देता है। क्योंकि उस तक, उसके सिर तक, हमारे हाथ तो न पहुंच पाएंगे। बस, हमारी माला तैयार हो, वह खुद हम तक पहुंच जाता है।

मनुष्य कभी परमात्मा तक नहीं पहुंचता। जब भी मनुष्य तैयार होता है, परमात्मा उसके पास आता है।

आज इतना ही।

उन्नीसवां प्रवचन

जागरण का तेल + प्रेम की बाती = परमात्मा का प्रकाश

चंदनं तगरं वापि उप्पलं अथ वस्सिकी।
एतेसं गंधजातानं सीलगंधो अनुत्तरो।। 49।।

अप्पमत्तो अयं गंधो या" यं तगरचंदनी।
यो च सीलवतं गंधो वाति देवेसु उत्तमो।। 50।।

तेसं संपन्नसीलानं अप्पमादविहारिनं।
सम्मदांं विमुत्तानं मारो मागं न विंदति।। 51।।

यथा संकारधानस्मिं उज्झितस्मिं महापथे।
पदुमं तत्थ जायेथ सुचिगंधं मनोरमं।। 52।।

एवं संकारभूतेसु अंधभूते पुथुज्जने।
अतिरोचति पांंय सम्मासंबुद्धसावको।। 53।।

सिवा इसके और दुनिया में क्या हो रहा है
कोई हंस रहा है कोई रो रहा है
अरे चौंक यह ख्वाबे-गफलत कहां तक
सहर हो गई है और तू सो रहा है

निद्रा है दुर्गंध। जाग जाना है सुगंध। जो जागा, उसके भीतर न केवल प्रकाश के दीए जलने लगते हैं, वरन सुगंध के फूल भी खिलते हैं। और ऐसी सुगंध के जो फिर कभी मुरझाती नहीं। सदियां बीत जाती हैं, कल्प आते हैं और विदा हो जाते हैं, लेकिन जीवन की सुगंध अडिग और थिर बनी रहती है। नाम भी शायद भूल जाएं कि किसकी सुगंध है, इतिहास पर स्मृति की रेखाएं भी न रह जाएं, लेकिन सुगंध फिर भी जीवन के मुक्त आकाश में सदा बनी रहती है।

बुद्ध पहले बुद्धपुरुष नहीं हैं, और न अंतिम। उनके पहले बहुत बुद्धपुरुष हुए हैं और उनके बाद बहुत बुद्धपुरुष होते रहे हैं, होते रहेंगे। लेकिन सभी बुद्धों की सुगंध एक है। सोए हुए सभी आदमियों की दुर्गंध एक है; जागे हुए सभी आदमियों की सुगंध एक है। क्योंकि सुगंध जागरण की है; क्योंकि दुर्गंध निद्रा की है।

बुद्ध के ये वचन अनूठे काव्य से भरे हैं। कोई तो कवि होता है शब्दों का, कोई कवि होता है जीवन का। कोई तो गीत गाता है, कोई गीत होता है। बुद्ध गीत हैं। उनसे जो भी निकला है, काश, तुम उनके छंद को पकड़ लो तो तुम्हारे जीवन में भी क्रांति हो जाए।

"चंदन या तगर, कमल या जूही, इन सभी की सुगंधों से शील की सुगंध सर्वोत्तम है," कहा है बुद्ध ने।

चंदन या तगर, कमल या जूही; पर तुम्हारी सुगंध अगर मुक्त हो जाए तो सब सुगंधें फीकी हैं। क्योंकि मनुष्य पृथ्वी का सबसे बड़ा फूल है। मनुष्य में पृथ्वी ने अपना सब कुछ दांव पर लगाया है। मनुष्य के साथ पृथ्वी ने अपनी सारी आशाएं बांधी हैं। जैसे कोई मां अपने बेटे के साथ सारी आशाएं बांधे, ऐसे पृथ्वी ने मनुष्य की चेतना के साथ बड़े सपने देखे हैं। और जब भी कभी कोई एक व्यक्ति उस ऊंचाई को उठता है, उस गहराई को छूता है, जहां पृथ्वी के सपने पूरे हो जाते हैं, तो सारी पृथ्वी आनंद-मंगल का उत्सव मनाती है।

कथाएं हैं बड़ी प्रीतिकर, जब बुद्ध को बुद्धत्व उपलब्ध हुआ तो वन-प्रांत में जहां वे मौजूद थे, निरंजना नदी के तट पर, वृक्षों में बेमौसम फूल खिल गए। अभी कोई ऋतु न थी, अभी कोई समय न था, लेकिन जब बुद्ध का फूल खिला तो बेमौसम भी वृक्षों में फूल खिल गए। स्वागत के लिए जरूरी था।

जीवन इकट्ठा है। हम अलग-थलग नहीं हैं। हम कोई द्वीप नहीं हैं, महाद्वीप हैं। हम एक ही जीवन के हिस्से हैं। अगर हमारे बीच से कोई एक भी ऊंचाई पर उठता है, तो उसके साथ हम भी ऊंचे उठते हैं। और हमारे बीच से कोई एक भी नीचे गिरता है, तो उसके साथ हम भी नीचे गिरते हैं। हिटलर या मुसोलिनी के साथ हम भी बड़ी गहन दुर्गंध और पीड़ा का अनुभव करते हैं। बुद्ध और महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट के साथ हम भी उनके पंखों पर सवार हो जाते हैं। हम भी उनके साथ आकाश का दर्शन कर लेते हैं।

"चंदन या तगर, कमल या जूही, इन सभी की सुगंधों से शील की सुगंध सर्वोत्तम है।"

क्यों? चंदन की सुगंध आज है, कल नहीं होगी। सुबह खिलता है फूल, सांझ मुरझा जाता है। खिला नहीं कि मुरझाना शुरू हो जाता है। इस जीवन में शाश्वत तो केवल एक ही घटना है, वह है तुम्हारे भीतर चैतन्य की धारा, जो सदा-सदा रहेगी। एक बार खिल जाए, तो फिर भीतर के फूल कभी मुरझाते नहीं। उन्होंने मुरझाना जाना ही नहीं है। वे केवल खिलना ही जानते हैं। और खिल जाने के बाद वापसी नहीं है, लौटना नहीं है।

ऊंचाई पर तुम जब पहुंचते हो, तो वहां से वापस गिरना नहीं होता। जो सीख लिया, सीख लिया। जो जान लिया, जान लिया। जो हो गए, हो गए। उसके विपरीत जाने का उपाय नहीं है। जो गिर जाए ऊंचाई से, समझना ऊंचाई पर पहुंचा ही न था। क्योंकि ऊंचाई से गिरने का कोई उपाय नहीं। जो तुमने जान लिया उसे तुम भूल न सकोगे। अगर भूल जाओ तो जाना ही न होगा। सुन लिया होगा, स्मरण कर लिया होगा, कंठस्थ हो गया होगा। जीवन के साधारण फूल आज हैं, कल नहीं। चैतन्य का फूल सदा है।

तो बहुत बाहर के फूलों में मत भरमे रहना, भीतर के फूल पर शक्ति लगाना। कब तक हंसते और रोते रहोगे बाहर के फूलों के लिए? फूल खिलते हैं, हंस लेते हो; फूल मुरझा जाते हैं, राख हो जाते हैं, रो लेते हो।

सिवा इसके और दुनिया में क्या हो रहा है।

कोई हंस रहा है कोई रो रहा है

सारी दुनिया को तुम इन दो हिस्सों में बांट दे सकते हो।

अरे चौंक यह ख्वाबे-गफलत कहां तक

अब यह सपना और कब तक खींचना है? काफी खींच लिया है।

अरे चौंक यह ख्वाबे-गफलत कहां तक

सहर हो गई है और तू सो रहा है

सुबह हो गई है। सुबह सदा से ही रही है। ऐसा कभी हुआ ही नहीं कि सुबह न रही हो। सुबह होना ही अस्तित्व का ढंग है, अस्तित्व की शैली है। वहां सांझ कभी होती नहीं। तुम सो रहे हो इसलिए रात मालूम होती है।

इसे थोड़ा समझ लो। रात है इसलिए सो रहे हो, ऐसा नहीं है; सो रहे हो इसीलिए रात है। जो जागा, उसने सदा पाया कि सहर थी, सुबह थी। जो सोया, उसने समझा सदा कि रात है। तुम्हारी आंख बंद है, इसलिए अंधेरा है। अस्तित्व प्रकाशवान है। अस्तित्व प्रकाश है। हजार-हजार सूरज उगे हैं। सब तरफ प्रकाश की बाढ़ है। प्रकाश की ही तरंगें तुमसे आकर टकरा रही हैं, लेकिन तुम आंख बंद किए हो। छोटी सी पलकें आंख पर पड़ी हों, तो विराट सूरज ढंक जाता है। जरा सी कंकड़ी आंख में आ जाए तो सारा संसार अंधकार हो जाता है।

बस छोटी सी ही कंकड़ी आंख में पड़ गई है। छोटा सा ही धूल का कण आंख में पड़ गया है। उसे अहंकार कहो, अज्ञान कहो, निद्रा कहो, प्रमाद कहो, पाप कहो, जो मर्जी हो वह नाम दे दो, बात कुल इतनी है और छोटी है कि तुम्हारी आंख किसी कारण से बंद है। आंख खुली, सुबह हुई--अरे चौंक, सहर हो गई है और तू सो रहा है!

और यह सहर सदा से ही रही है। क्योंकि बुद्ध पच्चीस सौ साल पहले जागे और पाया कि सहर हो गई है। कृष्ण पांच हजार साल पहले जागे और पाया कि सहर हो गई है। जब भी कोई जागा, उसने पाया कि सुबह हो गई है।

जो सोए हैं वे अभी भी सोए हैं। वे हजारों वर्ष और भी सोए रहेंगे। तुम्हारे सोने में ही रात है। रात के कारण तुम नहीं सो रहे हो; सो रहे हो इसीलिए रात है। सुबह के कारण तुम न जागोगे, क्योंकि सुबह तो सदा से है। तुम जागोगे तो पाओगे कि सुबह है।

लोग पूछते हैं, परमात्मा कहां है? पूछना चाहिए, हमारे पास आंखें कहां हैं? लोग पूछते हैं, परमात्मा को कहां खोजें? उन्हें पूछना चाहिए, यह खोजने वाला कौन है? कौन खोजे परमात्मा को? लोग पूछते हैं, हमें परमात्मा पर भरोसा नहीं आता, क्योंकि जो दिखाई नहीं पड़ता उसे हम कैसे मानें? उन्हें पूछना चाहिए कि हमने अभी आंख खोली है या नहीं? क्योंकि बंद आंख कोई कैसे दिखाई पड़ेगा? परमात्मा द्वार पर ही खड़ा है। क्योंकि जो भी है वही है। अरे चौंक, सहर हो गई है! परमात्मा द्वार पर ही खड़ा है। कभी द्वार से क्षणभर को नहीं हटा है। क्योंकि उसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं।

अस्तित्व सुबह है, प्रभात है, सूर्योदय है। सवाल तुम्हारी आंख के खुल जाने का है। और तुम्हारी आंख जब खुलती है तो ऐसी ही घटना घटती है जैसे फूल की पखुड़ियां खुल जाएं। तुम्हारी पलकें पखुड़ियां हैं। जैसे फूल की पखुड़ियां खुल जाएं और सुगंध मुक्त हो जाए।

लेकिन छोटे-छोटे फूल हैं, जूही के, तगर के, बेला के, गुलाब के, कमल के, उनकी सामर्थ्य बड़ी छोटी है। उनकी सीमा है। थोड़ी सी गंध को लेकर वे चलते हैं। उसे लुटा देते हैं, रिक्त हो जाते हैं, फिर मिट्टी में गिर जाते हैं। लेकिन तुम कुछ ऐसी गंध लेकर चले हो, जिसकी कोई सीमा नहीं। तुम अपनी बूंद में सागर लेकर चले हो। तुम अपने इस छोटे से फूल में असीम को लेकर चले हो। उस असीम को ही हमने आत्मा कहा है, उस असीम को ही हमने परमात्मा कहा है।

तुम दिखाई पड़ते हो छोटे, तुम छोटे नहीं हो। मैंने तो बहुत खोजा छोटा, मुझे कोई मिला नहीं। मैंने तो बहुत जांच-पड़ताल की, सभी सीमाओं में असीम को छिपा पाया। हर बूंद में सागर ने बसेरा किया है। जिस दिन तुम खिलोगे उस दिन तुम पाओगे, तुम नहीं खिले परमात्मा खिला है।

इसलिए तो बुद्ध कहते हैं, "चंदन या तगर, कमल या जूही, इन सभी की सुगंधों से शील की सुगंध सर्वोत्तम है।"

शील की सुगंध का अर्थ है, जागे हुए आदमी के जीवन की सुगंध, आंख खुले आदमी के जीवन की सुगंध, प्रबुद्ध हुई चेतना के जीवन की सुगंध। जिन फूलों को तुमने बाहर देखा है, उनका तो खिलना केवल मौत की खबर लाता है। खिला नहीं फूल कि मरा नहीं। इधर खिले, उधर अर्थी बंधने लगी।

फूल बनने की खुशी में मुस्कुराती थी कली

क्या खबर थी तगैयुर मौत का पैगाम है

बाहर तो जो फूल हैं उनका खिलना मरने की ही खबर है, मौत का पैगाम है। वहां तो खिले कि मरे।

फूल बनने की खुशी में मुस्कुराती थी कली

क्या पता उस बेचारी कली को, क्या पता उस नासमझ कली को कि यह खिलना विदा होने का क्षण है। लेकिन तुम्हारे भीतर का जो फूल है, वह जब खिलता है तो मृत्यु नहीं, अमृत को उपलब्ध होता है। साधारण फूल खिलकर मरते हैं। जितनी देर न खिले, उतनी देर ही बचे। वहां तो पूरा होना मरने के बराबर है। लेकिन तुम्हारे भीतर एक ऐसा फूल है जो खिलता है तो अमृत को उपलब्ध हो जाता है।

लेकिन ध्यान रखना, जब मैं कहता हूं, तुम्हारे भीतर एक ऐसा फूल है, तो तुम यह मत समझ लेना कि मैं कह रहा हूं तुम। तुम्हारे भीतर, तुम नहीं। तुम तो उसी तरह मरोगे जैसे बाहर की कली मरती है। क्योंकि तुम भी तुमसे बाहर हो। तुम भी तुमसे बाहर हो।

फूल बनने की खुशी में मुस्कुराती थी कली

वैसी घटना तुम्हारे भीतर भी घटेगी। क्योंकि तुम्हारा अहंकार तो मरेगा। तुमने अब तक जो जाना है कि तुम हो, वह तो मरेगा। इधर बुद्धत्व का फूल खिला, उधर गौतम सिद्धार्थ विदा हुआ। इधर महावीर का फूल खिला, वहां वर्द्धमान की अर्थी बंधी।

एक बहुत मजेदार घटना घटी। एक जैन मुनि चित्रभानु; संयोग से एक बार मुझे उनके साथ बोलने का मौका मिला। वे बड़े प्रसिद्ध जैन मुनि थे। मुझसे पहले बोले, मैं उनके पीछे बोला। उन्होंने, महावीर का जन्मदिन था तो महावीर के जीवन पर बातें कीं। लेकिन मुझे लगा, महावीर के जीवन पर उन्होंने एक भी बात नहीं की। वर्द्धमान की चर्चा की। वर्द्धमान महावीर के जन्म का नाम था। महावीर होने के पहले का नाम था। जब तक जागे न थे, तब तक का नाम था। कहां पैदा हुए, किस घर में पैदा हुए, कौन मां, कौन पिता, कितना बड़ा राज्य, कितने हाथी-घोड़े, इसकी उन्होंने चर्चा की। महावीर की तो बात ही न आई। इस सबसे क्या लेना-देना था? ऐसे तो बहुत राजकुमार हुए, कौन उनकी याद करता है?

मैं जब बोला तो मैंने कहा कि मैं तो यहां महावीर पर बोलने आया हूं, वर्द्धमान पर बोलने नहीं। और मैंने कहा, वर्द्धमान और महावीर तो दो अलग-अलग आदमी हैं। मुनि चित्रभानु क्रोध से खड़े हो गए। उन्होंने समझा कि यह कौन नासमझ आ गया, जो कहता है वर्द्धमान और महावीर अलग-अलग आदमी हैं। उन्होंने खड़े होकर कहा, महानुभाव! मालूम होता है आपको कुछ भी पता नहीं है। महावीर और वर्द्धमान एक ही आदमी हैं। मैं तो हंसा ही, वे जो हजारों लोग थे वे भी हंसे।

मैंने उनसे कहा, मुनि महाराज! जो आपके श्रावक समझ गए वह भी आप नहीं समझ पा रहे हैं। मैंने भी नहीं कहा है कि दो आदमी थे। फिर भी मैं कहता हूं कि दो आदमी थे। वर्द्धमान सोया हुआ आदमी है। जब वर्द्धमान विदा हो जाता है, तभी तो महावीर का आविर्भाव होता है। या जब महावीर का आविर्भाव होता है, तब वर्द्धमान की अर्थी बंध जाती है। वर्द्धमान की बात मत करो। महावीर की बात अलग ही बात है।

तो तुम्हारे भीतर भी कुछ तो मरेगा। तुम मरोगे, जैसा तुमने अभी तक अपने को जाना है। नाम, रूप, परिवार, प्रतिष्ठा, अब तक तुमने अपने जितने तादात्म्य बनाए हैं, वे तो मरेंगे। लेकिन उन सबके मर जाने के बाद पहली बार तुम्हारी आंखें उसकी तरफ खुलेंगी जो तुम्हारे भीतर अमृत है। उस अनाहत नाद को तुम सुनोगे पहली बार, जब तुम्हारी आवाजें और शोरगुल बंद हो जाएगा। जब तुम अपनी बकवास बंद कर दोगे, जब तुम्हारे विचार जा चुके होंगे, जब तुम्हारी भीड़ विदा हो जाएगी, तब अचानक तुम्हारा सन्नाटा बोलेगा, तुम्हारा शून्य अनाहत के नाद से गूंजेगा। जब तुम्हारी दुर्गंध जा चुकी होगी, तभी तुममें परमात्मा की सुगंध का अवतरण होता है। वह छिपी है, पर तुम मौका दो तब फूटे न। तुम जगह दो तब फैले न। कली की छाती पर तुम सवार होकर बैठे हो, पखुड़ियों को खुलने नहीं देते।

"चंदन या तगर, कमल या जूही, इन सभी की सुगंधों से शील की सुगंध सर्वोत्तम है।"

क्यों? क्योंकि चंदन या जूही, तगर या कमल रूप, रंग, आकार के जगत के खेल हैं। रूप के ही सपने हैं, रंग के ही सपने हैं। निराकार का फूल तुम्हारे भीतर खिल सकता है। क्योंकि निराकार का फूल तभी खिलता है जब कोई चैतन्य को उपलब्ध हो। निराकार यानी चैतन्य। आकार यानी तंद्रा, मूर्च्छा।

जिस दिन संसार जागेगा, उस दिन ब्रह्म को पाएगा। अगर मिट्टी का कण भी या पत्थर का टुकड़ा भी जागेगा, तो अपने को जमा हुआ चैतन्य पाएगा। जो जागा उसने परमात्मा को पाया, जो सोया उसने पदार्थ को समझा। पदार्थ सोए हुए आदमी की व्याख्या है परमात्मा की। परमात्मा जागे हुए आदमी का अनुभव है पदार्थ का। पदार्थ और परमात्मा दो नहीं हैं। सोया हुआ आदमी जिसे पदार्थ कहता है, जागा हुआ आदमी उसी को परमात्मा जानता है। दो दृष्टियां हैं। जागा हुआ आदमी जिसे परमात्मा जानता है, सोया हुआ आदमी पदार्थ मानता है। दो दृष्टियां हैं।

"शील की सुगंध सर्वोत्तम है।"

क्योंकि वस्तुतः वह परमात्मा की सुगंध है। शील का क्या अर्थ है? शील का अर्थ चरित्र नहीं है। इस भेद को समझ लेना जरूरी है, तो ही बुद्ध की व्याख्या में तुम उतर सकोगे।

चरित्र का अर्थ है, ऊपर से थोपा गया अनुशासन। शील का अर्थ है, भीतर से आई गंगा। चरित्र का अर्थ है, आदमी के द्वारा बनाई गई नहर। शील का अर्थ है, परमात्मा के द्वार से उतरी गंगा। चरित्र का अर्‌थ है, जिसका तुम आयोजन करते हो, जिसे तुम सम्हालते हो। सिद्धांत, शास्त्र, समाज तुम्हें एक दृष्टि देते हैं--ऐसे उठो, ऐसे बैठो, ऐसे जीओ, ऐसा करो। तुम्हें भी पक्का पता नहीं है कि तुम जो कर रहे हो वह ठीक है या गलत। अगर तुम गैर-मांसाहारी घर में पैदा हुए तो तुम मांस नहीं खाते, अगर तुम मांसाहारी घर में पैदा हुए तो मांस खाते हो। क्योंकि जो घर की धारणा है, वही तुम्हारा चरित्र बन जाती है। अगर तुम रूस में पैदा हुए तो तुम मंदिर न जाओगे, मस्जिद न जाओगे। तुम कहोगे, परमात्मा! कहां है परमात्मा?

राहुल सांकृत्यायन उन्नीस सौ छत्तीस में रूस गए। और उन्होंने एक छोटे स्कूल में--प्राइमरी स्कूल में--एक छोटे बच्चे से जाकर पूछा, ईश्वर है? उस बच्चे ने कहा, हुआ करता था, अब है नहीं। यूज्ड टू बी, बट नो मोर। ऐसा पहले हुआ करता था, जब लोग अज्ञानी थे--क्रांति के पहले--उन्नीस सौ सत्रह के पहले हुआ करता था। अब नहीं है। ईश्वर मर चुका। आदमी जब अज्ञानी था, तब हुआ करता था।

जो हम सुनते हैं, वह मान लेते हैं। संस्कार हमारा चरित्र बन जाता है। पश्चिम में शराब पीना कोई दुश्चरित्रता नहीं है। छोटे-छोटे बच्चे भी पी लेते हैं। सहज है। पूरब में बड़ी दुश्चरित्र बात है। धारणा की बात है।

कल, परसों ही मैं देख रहा था। जयप्रकाश नारायण के स्वास्थ्य की बुलेटिन रोज निकलती है, वह मैं देख रहा था। तो उन्होंने दो अंडे खाए। कोई सोच भी नहीं सकता, किस भांति के सर्वोदयी हैं! अहिंसा, सर्वोदय, गांधी के मानने वाले, अंडे? लेकिन बिहार में चलता है। बिहारी हैं, कोई अड़चन की बात नहीं। कोई जैन सोच भी नहीं सकता कि अहिंसक और अंडे खा सकता है। लेकिन जयप्रकाश को ख्याल ही नहीं आया होगा। गांधी और विनोबा के साथ जिंदगी बिताई, लेकिन अंडे नहीं खाना है, यह ख्याल नहीं आया।

एक क्वेकर कई वर्ष पहले मेरे पास मेहमान हुआ। तो मैंने उससे सुबह ही पूछा कि चाय लेंगे, दूध लेंगे, कॉफी लेंगे, क्या लेंगे? वह एकदम चौंक गया, जैसे मैंने कोई बड़ी खतरनाक बात कही हो। उसने कहा, क्या आप चाय, दूध कॉफी पीते हैं? जैसे मैंने कोई खून पीने का निमंत्रण दिया हो। मैंने पूछा, तुम... कोई गलती बात हुई? उसने कहा, मैं शाकाहारी हूं, दूध मैं नहीं पी सकता।

क्योंकि क्वेकर मानते हैं, दूध खून है। उनके मानने में भी बात तो है। क्वेकर अंडा खाते हैं, लेकिन दूध नहीं पीते, क्योंकि दूध तो रक्त से ही बनता है। शरीर में सफेद और लाल कण होते हैं खून में। मादा के शरीर से--चाहे गाय हो, चाहे स्त्री हो--सफेद कण अलग हो जाते हैं और दूध बन जाता है। वह आधा खून है।

तो उसने इस तरह नाक-भौं सिकोड़ी, कहा कि दूध! आप भी क्या बात कर रहे हैं! अंडा वे खा लेते हैं। क्योंकि अंडा वे कहते हैं कि जब तक अभी जीवन प्रगट नहीं हुआ तब तक कोई पाप नहीं है। ऐसे तो जीवन सभी जगह छिपा है; इसलिए प्रगट और अप्रगट का ही भेद करना उचित है उनके हिसाब से। ऐसे तो जीवन सभी जगह छिपा है।

तुमने एक फल खाया, अगर तुम न खाते और फल रखा रहता, सड़ जाता, तो उसमें कीड़े पड़ते, तो उसमें भी जीवन प्रगट हो जाता। तो जब तक नहीं प्रगट हुआ है तब तक नहीं है।

मान्यताओं की बातें हैं। चरित्र मान्यताओं से बनता है, संस्कार से बनता है। शील? शील बड़ी अनूठी बात है। शील तुम्हारी मान्यताओं और संस्कारों से नहीं बनता। शील तुम्हारे ध्यान से जन्मता है। इस फर्क को बहुत ठीक से समझ लो। मान्यता, संस्कार, समाज, संस्कृति, नीति की धारणाएं विचार हैं। जो विचार तुम्हें दिए गए हैं, वे तुम्हारे भीतर पकड़ गए हैं।

मैं जैन घर में पैदा हुआ। तो बचपन में मुझे कभी रात्रि को भोजन करने का सवाल नहीं उठा। कोई करता ही न था घर में, इसलिए बात ही नहीं थी। मैं पहली दफा पिकनिक पर कुछ हिंदू मित्रों के साथ पहाड़ पर गया। उन्होंने दिन में खाना बनाने की कोई फिकर ही न की। मुझ अकेले के लिए कोई चिंता का कारण भी न था। मैं अपने लिए जोर दूं, यह भी ठीक न मालूम पड़ा।

रात उन्होंने भोजन बनाया। दिनभर पहाड़ का चढ़ाव, दिनभर की थकान, भयंकर मुझे भूख लगी। और रात उन्होंने खाना बनाया। उनके खाने की गंध, वह मुझे आज भी याद है। ऊपर-ऊपर मैंने हां-ना किया कि नहीं, रात कैसे खाना खाऊंगा, लेकिन भीतर तो चाहा कि वे समझा-बुझाकर किसी तरह खिला ही दें। उन्होंने समझा-बुझाकर खिला भी दिया। लेकिन मुझे तत्क्षण वमन हो गया, उलटी हो गई।

उस दिन तो मैंने यही समझा कि रात का खाना इतना पापपूर्ण है इसीलिए उलटी हो गई। लेकिन उनको तो किसी को भी न हुई। संस्कार की बात थी। कोई रात के खाने से संबंध न था। कभी खाया न था, और रात खाना पाप है, वह धारणा; तो किसी तरह खा तो लिया, लेकिन वह सब शरीर ने फेंक दिया, मन ने बाहर फेंक दिया।

शील से इन घटनाओं का कोई संबंध नहीं है, मन की धारणाओं से संबंध है। तुम जो मानकर चलते हो, जो तुम्हारे विचार में बैठ गया है, उसके अनुकूल चलना आचरण है, उसके प्रतिकूल चलना दुराचरण है।

शील क्या है? शील है, जब तुम्हारे मन से सब विचार समाप्त हो जाते हैं और निर्विचार दशा उपलब्ध होती है, शून्यभाव बनता है, ध्यान लगता है, उस ध्यान की दशा में तुम्हें जो ठीक मालूम होता है, वही करना शील है। और वैसा शील सारे जगत में एक सा होगा। उसमें कोई संस्कार के भेद नहीं होंगे, समाज के भेद नहीं होंगे।

चरित्र हिंदू का अलग होगा, मुसलमान का अलग होगा, ईसाई का अलग होगा, जैन का अलग होगा, सिक्ख का अलग होगा। शील सभी का एक होगा। शील वहां से आता है जहां न हिंदू जाता, न मुसलमान जाता, न ईसाई जाता। तुम्हारी गहनतम गहराई से, अछूती कुंवारी गहराई से, जहां किसी ने कभी कोई स्पर्श नहीं किया, जहां तुम अभी भी परमात्मा हो, वहां से शील आता है।

जैसे अगर तुम थोड़ी सी जमीन खोदो तो ऊपर-ऊपर जो पानी मिलेगा वह तो पास की सड़कों से बहती हुई नालियों का पानी होगा, जो जमीन ने सोख लिया है--चरित्र। चरित्र होगा वह। फिर तुम गहरा कुआं खोदो, इतना गहरा कुआं खोदो जहां तक नालियों का पानी जा ही नहीं सकता, तब तुम्हें जलस्रोत मिलेंगे, वे सागर के हैं। तब तुम्हें शुद्ध जल मिलेगा।

अपने भीतर इतनी खुदाई करनी है कि विचार समाप्त हो जाएं, निर्विचार का तल मिल जाए। वहां से तुम्हारे जीवन को जो ज्योति मिलेगी वह शील की है। चरित्र में कोई बड़ी सुगंध नहीं होती। चरित्र तो प्लास्टिक के फूल हैं, चिपका लिए ऊपर से, सज-धज गए,शृंगार कर लिया। दूसरों को दिखाने के लिए अच्छे, लेकिन परमात्मा के सामने काम न पड़ेंगे। शील ऐसे फूल हैं जो तुमने चिपकाए नहीं, तुम्हारे भीतर लगे, उगे, उमगे, तुम्हारे भीतर से आए। जिनकी जड़ें तुम्हारे भीतर छिपी हैं। उन्हीं फूलों को तुम परमात्मा के सामने ले जाने में समर्थ हो सकोगे। जो समाज ने दिया है, वह मौत छीन लेगी। क्योंकि जो समाज ने दिया है, वह जन्म के बाद दिया है। उसे तुम मौत के आगे न ले जा सकोगे। जन्म और मौत के बीच ही उसकी संभावना है।

लेकिन अगर शील का जन्म हो जाए, तो उसका अर्थ है, तुमने वहां पाया अब जो जन्म के पहले था, जब तुम पैदा भी न हुए थे। उस शुद्ध चैतन्य से आ रहा है। अब मृत्यु के आगे भी ले जा सकोगे। जो जन्म के पहले है, वह मृत्यु के बाद भी साथ जाएगा। शील को उपलब्ध कर लेना इस जगत की सबसे बड़ी क्रांति है।

न जाने कौन है गुमराह कौन आगाहे-मंजिल है

हजारों कारवां हैं जिंदगी की शाहराहों में

कौन है गुमराह--कौन भटका हुआ है? कौन आगाहे-मंजिल है--और कौन है जिसे मंजिल का पता है? हजारों यात्री दल हैं जिंदगी के राजपथ पर। तुम कैसे पहचानोगे? चरित्र के धोखे में मत आ जाना। दुश्चरित्र को तो छोड़ ही देना, चरित्रवान को भी छोड़ देना। शीलवान को खोजना।

ऐसा समझो। एक सूफी फकीर हज की यात्रा को गया। एक महीने का मार्ग था। उस फकीर और उसके शिष्यों ने तय किया कि एक महीने उपवास रखेंगे। पांच-सात दिन ही बीते थे कि एक गांव में पहुंचे, कि गांव के बाहर ही आए थे कि गांव के लोगों ने खबर की कि तुम्हारा एक भक्त गांव में रहता है, उसने अपना मकान, जमीन सब बेच दिया। गरीब आदमी है। तुम आ रहे हो, तुम्हारे स्वागत के लिए उसने पूरे गांव को आमंत्रित किया है भोजन के लिए। सब बेच दिया है ताकि तुम्हारा ठीक से स्वागत कर सके। उसने बड़े मिष्ठान बनाए हैं।

फकीर के शिष्यों ने कहा, यह कभी नहीं हो सकता, हम उपवासी हैं, हमने एक महीने का उपवास रखा है। हमने व्रत लिया है, व्रत नहीं टूट सकता। लेकिन फकीर कुछ भी न बोला।

जब वे गांव में आए और उस भक्त ने उनका स्वागत किया, और फकीर को भोजन के लिए निमंत्रित किया तो वह भोजन करने बैठ गया। शिष्य तो बड़े हैरान हुए कि यह किस तरह का गुरु है? जरा से भोजन के पीछे व्रत को तोड़ रहा है! भूल गया कसम, भूल गया प्रतिज्ञा कि एक महीने उपवास करेंगे। यह क्या मामला है? लेकिन जब गुरु ने ही इंकार नहीं किया तो शिष्य भी इंकार न कर सके। करना चाहते थे।

समारोह पूरा हुआ, रात जब विश्राम को गए तो शिष्यों ने गुरु को घेर लिया और कहा कि यह क्या है? क्या आप भूल गए? या आप पतित हो गए?

उस गुरु ने कहा, पागलो! प्रेम से बड़ी कहीं कोई तीर्थयात्रा है? और इसने इतने प्रेम से, अपनी सब जमीन-जायदाद बेचकर, सब लुटाकर--गरीब आदमी है--भोजन का आयोजन किया, उसे इंकार करना परमात्मा को ही इंकार करना हो जाता। क्योंकि प्रेम को इंकार करना परमात्मा को इंकार करना है। रही उपवास की बात, तो क्या फिकर है, सात दिन आगे कर लेंगे। एक महीने का उपवास करना है न? एक महीने का उपवास कर लेंगे। और अगर कोई दंड तुम सोचते हो, तो दंड भी जोड़ लो। एक महीने दस दिन का कर लेंगे। जल्दी क्या है? और मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हारी यह अकड़ कि हमने व्रत लिया है और हम अब भोजन न कर सकेंगे, अहंकार की अकड़ है। यह प्रेम की और धर्म की विनम्रता नहीं।

यहां फर्क तुम्हें समझ में आ सकता है। शिष्यों का तो केवल चरित्र है, गुरु का शील है। शील अपना मालिक है, वह होश से पैदा होता है। चरित्र अपना मालिक नहीं है, वह अंधानुकरण से पैदा होता है। जब कभी तुम्हें जीवन में कोई शीलवान आदमी मिल जाए, तो समझ लेना यही चरण पकड़ लेने जैसे हैं। चरित्रवान के धोखे में मत आ जाना, क्योंकि चरित्रवान तो सिर्फ ऊपर-ऊपर है। भीतर बिल्कुल विपरीत चल रहा है।

फर्क कैसे करोगे? चरित्रवान को तुम हमेशा अकड़ा हुआ पाओगे। क्योंकि, इतना कर रहा हूं! तो अहंकार मजबूत होता है। चरित्रवान को तुम हमेशा तना हुआ पाओगे, तनाव से भरा पाओगे। क्योंकि कर रहा है, कर रहा है, कर रहा है। फल की अपेक्षा कर रहा है। शीलवान को तुम हमेशा विश्राम में पाओगे। शीलवान इसलिए नहीं कर रहा है कि आगे कुछ मिलने को है। शीलवान इसलिए कर रहा है कि करने में आनंद है। शीलवान को तुम प्रफुल्लित पाओगे। शीलवान अपनी तपश्चर्या की चर्चा न करेगा। अपने उत्सव के गीत गाएगा। शीलवान तुम्हें आनंदित मालूम पड़ेगा। चरित्रवान तुम्हें बड़ा तना हुआ और कष्ट झेलता हुआ मालूम पड़ेगा। बारीक हैं फासले, लेकिन अगर तुमने नजर खोलकर रखी तो तुम्हें कठिनाई न होगी।

चरित्रवान के पास तुम्हें दंभ की दुर्गंध मिलेगी। शीलवान के पास तुम्हें सरलता की सुगंध मिलेगी। शीलवान को तुम ऐसा पाओगे जैसा छोटा बालक, चरित्रवान को तुम बड़ा हिसाबी-किताबी पाओगे। वह एक-एक बात का हिसाब रखेगा। गणित में पक्का पाओगे, प्रेम में नहीं। और जहां गणित बहुत पक्का हो जाता है, वहां परमात्मा से दूरी बहुत हो जाती है। तुम चरित्रवान को तर्कयुक्त पाओगे। वह जो भी करेगा, तर्क से ठीक है इसलिए करेगा।

शीलवान को तुम तर्कयुक्त न पाओगे, सहजस्फूर्त पाओगे। वह जो भी करेगा वह उसकी सहज-स्फुरणा है। ऐसा हुआ। शीलवान को तुम परमात्मा के हाथ में अपने को सौंपा हुआ पाओगे। चरित्रवान को तुम अपने ही हाथों में नियंत्रित पाओगे। चरित्रवान में नियंत्रण होगा, अनुशासन होगा। शीलवान में स्वातंष्य होगा, मुक्ति होगी। और सुगंध और दुर्गंध का फर्क होगा।

दुश्चरित्र तो होना ही नहीं, चरित्रवान भी मत होना। अगर होना ही है, तो शीलवान होना। चरित्र है ऊपर से थोपा गया--आरोपण। शील है भीतर से आई हुई जीवन-धारा, भीतर से आया हुआ बोध।

"चंदन या तगर, कमल या जूही, इन सभी की सुगंधों से शील की सुगंध सर्वोत्तम है।"

शील छोटे बच्चे जैसा है। छोटे बच्चों को फिर से गौर से देखना। बहुत कम लोग उन्हें गौर से देखते हैं। छोटे बच्चों को ठीक से पहचानना, क्योंकि वही संतों की भी पहचान बनेगी। तुमने कभी कोई छोटा बच्चा देखा जो कुरूप हो? सभी छोटे बच्चे सुंदर होते हैं, सभी छोटे बच्चों में जीवन का आह्लाद होता है, एक सरलता होती है--गणितशून्य, हिसाब से मुक्त, एक प्रवाह होता है।

निकल के कूचे से तेरे बहुत खराब हुए

कहीं न चैन मिला फिर तेरी गली की तरह

अगर तुम अपने बचपन को याद करोगे, तो तुम्हें ये वचन समझ में आ जाएंगे। ये वचन तो कहे गए हैं अदम के लिए, कि अदम को जब स्वर्ग के बगीचे से निकाल दिया गया... निकाला क्यों गया? निकाला इसलिए गया कि उसने बचपन खो दिया, उसने सरलता खो दी, निर्दोषता खो दी। उसने ज्ञान के वृक्ष का फल चख लिया, वह समझदार हो गया।

अब ये बड़ी मजे की कहानी है ईसाइयों की। इससे अनूठी कहानी दुनिया के इतिहास में दूसरी नहीं। अदम को इसलिए निकाला गया कि वह ज्ञानी हो गया। थोड़ा सोचो। हम तो सोचते हैं, ज्ञानियों को वापस ले लिया जाएगा। अदम जब तक सरल था, तब तक तो स्वर्ग के बगीचे में रहा, और जब समझदार हो गया--समझदार यानी जब वह चालाक हो गया, जब उसने ज्ञान के वृक्ष का फल चख लिया--उस क्षण परमात्मा ने उसे बाहर कर दिया।

निकल के कूचे से तेरे बहुत खराब हुए

कहीं न चैन मिला फिर तेरी गली की तरह

और आदमी, ईसाइयत कहती है, तब से बेचैन है, उसी की गली को फिर खोज रहा है। लेकिन यह खोज तभी पूरी हो सकती है जब ज्ञान को तुम वमन कर दो, जब तुम अपने पांडित्य को फेंक दो कूड़े-करकट के ढेर पर, जब तुम फिर से सरल हो जाओ, जब तुम फिर बालक की भांति हो जाओ। संतत्व में पुनः बच्चे का शील आ जाता है, बच्चे की सुगंध आ जाती है।

"चंदन या तगर, कमल या जूही, इन सभी की सुगंधों से शील की सुगंध सर्वोत्तम है।"

यह शील की सुगंध तुम्हारे मस्तिष्क का हिसाब-किताब नहीं, तुम्हारे हृदय में जला हुआ दीया है, तुम्हारे हृदय में जली ज्योति है।

दिल से मिलती तो है इक राह कहीं से आकर

सोचता हूं यह तेरी राहगुजर है कि नहीं

मत सोचो। दिल से जो राह मिलती है वही परमात्मा की राह है। सोचा तो भटकोगे। उस राह पर थोड़ा चलकर देखो। उस राह पर चलते ही तुम्हें लगेगा, मंदिर के शिखर दिखाई पड़ने लगे, मंदिर की घंटियों का स्वर सुनाई पड़ने लगा, मंदिर में जलती धूप की सुगंध तुम्हारे नासापुटों को भरने लगी।

दिल से मिलती तो है इक राह कहीं से आकर

अज्ञात की राह तुम्हारे सिर से नहीं मिलती, तुम्हारे दिल से मिलती है।

सोचता हूं यह तेरी राहगुजर है कि नहीं

सोचो मत। जिसने सोचा उसने गंवाया। क्योंकि जब तुम सोचने लगते हो तब तुम मस्तिष्क में आ जाते हो। प्रेम करो, भाव से भरो। रो लेना भी बेहतर है सोचने से, नाच लेना बेहतर है सोचने से, आंसू टपका लेना बेहतर है सोचने से। जो भी हृदय से उठे, वह बेहतर है, वह श्रेष्ठ है। और जैसे-जैसे तुम्हारा थोड़ा संबंध बनेगा, तुम निश्चित ही जान लोगे कि उसी राह से परमात्मा आता है। ज्ञान की राह से नहीं, निर्दोष भाव की राह से आता है।

"तगर और चंदन की जो यह गंध फैलती है वह अल्पमात्र है। और यह जो शीलवंतों की सुगंध है, वह उत्तम गंध देवलोकों में भी फैल जाती है, देवताओं में भी फैल जाती है।"

इसे थोड़ा समझें। तगर, चंदन की जो गंध है अल्पमात्र है, क्षणजीवी है। हवा का एक झोंका उसे उड़ा ले जाएगा। जल्दी ही खो जाएगी इस विराट में, फिर कहीं खोजे न मिलेगी। एक सपना हो जाएगी, एक अफवाह मालूम पड़ेगी। पता नहीं थी भी या नहीं थी। लेकिन शीलवंतों की जो सुगंध है, वह उत्तम गंध देवताओं में भी फैल जाती है।

मैंने सुना है, एक स्त्री मछलियां बेचकर अपने घर वापस लौटती थी। नगर के बाहर निकलती थी कि उसकी एक पुरानी सहेली मिल गई, जो एक मालिन थी। उसने कहा, आज रात मेरे घर रुक जा, बहुत दिन से साथ भी नहीं हुआ, बहुत बातें भी करने को हैं। वह रुक गई। मालिन ने यह सोचकर कि पुरानी सखी है, ऐसी जगह उसका बिस्तर लगाया जहां बाहर से बेला की सुगंध भरपूर आती थी। लेकिन मछली बेचने वाली औरत करवटें बदलने लगी। बेला की सुगंध की आदत नहीं। आधी रात हो गई, तो मालिन ने पूछा, बहन तू सो नहीं पाती, कुछ अड़चन है? उसने कहा, कुछ और अड़चन नहीं, मेरी टोकरी मुझे वापस दे दो। और थोड़ा पानी उस पर छिड़क दो, क्योंकि मछलियों की गंध के बिना मैं सो न सकूंगी। बेला की सुगंध मुझे बड़ी तकलीफ दे रही है। बड़ी तेज है।

मालिन को तो भरोसा न आया। मछलियों की गंध! गंध कहना ही ठीक नहीं उसे, दुर्गंध है। लेकिन उसने पानी छिड़का उसकी टोकरी पर, कपड़े के टुकड़े पर--जिन पर मछलियां बांधकर वह बेच आई थी। उसने उसे अपने सिर के पास रख लिया, जल्दी ही उसे घुर्राटे आने लगे, वह गहरी नींद में खो गई।

तल हैं बहुत। बुद्ध कहते हैं, देवताओं को भी; पृथ्वी पर रहने वालों को ही नहीं स्वर्ग में रहने वालों को भी शील की गंध आती है। शायद पृथ्वी पर रहने वालों की तो वैसी ही हालत हो जाए जैसी मछली बेचने वाली औरत की हो गई थी।

बुद्ध को लोगों ने पत्थर मारे। उन्हें दुर्गंध आई होगी, सुगंध न आई होगी। महावीर को लोगों ने सताया। उन्हें सुगंध न आई होगी, अन्यथा पूजते। जीसस को सूली पर लटका दिया। अब और क्या चाहते हो! जाहिर है बात कि हम कोई ऐसी बस्ती के रहने वाले हैं जहां मछलियों की दुर्गंध हमें सुगंध मालूम होने लगी है, जहां हम जीसस को सूली पर लटका देते हैं, जहां हम सुकरात को जहर पिला देते हैं, जहां बुद्धों को हम पत्थर मारते हैं, महावीरों का अपमान करते हैं। हमें उनकी सुगंध सुगंध नहीं मालूम पड़ती है। हम भयभीत हो जाते हैं। उनका होना हमें डगमगा देता है। उनके होने में बगावत मालूम पड़ती है। उनकी श्वास-श्वास में विद्रोह के स्वर मालूम होते हैं। लेकिन देवताओं को उनकी गंध आती है।

महावीर के जीवन में बड़ा प्यारा उल्लेख है। कथा ही होगी। लेकिन कथा भी बड़ी बहुमूल्य है और सार्थक है। और कभी-कभी कथाओं के सत्य जीवन के सत्यों से भी बड़े सत्य होते हैं। कहते हैं कि महावीर ने जब पहली दफा अपनी उदघोषणा की, अपने सत्य की, तो देवताओं के सिवाय कोई भी सुनने न आया। आते भी कैसे कोई

और? उदघोषणा इतनी ऊंची थी! उसकी गंध ऐसी थी कि केवल देवता ही पकड़ पाए होंगे। अगर कहीं कोई देवता हैं तो निश्चित ही वही सुनने आए होंगे। फिर देवताओं ने महावीर को समझाया-बुझाया कि आप कुछ इस ढंग से कहें कि मनुष्य भी समझ सके। आप कुछ मनुष्य की भाषा में कहें। मतलब यही कि मनुष्य की टोकरी पर थोड़ा पानी छिड़कें, मनुष्य की टोकरी उसके पास रख दें, तो ही शायद वह पहचान पाए।

कोई भी नहीं जानता कि महावीर की पहली उदघोषणा में, पहले संबोधन में महावीर ने क्या कहा था। वही शुद्धतम धर्म रहा होगा। लेकिन उसके आधार पर तो जैन धर्म नहीं बना। जैन धर्म तो बना तब, जब महावीर कुछ ऐसा बोले जो आदमी की समझ में आ जाए। वह महावीर का अंतरतम नहीं हो सकता।

बुद्ध तो चुप ही रह गए जब उन्हें ज्ञान हुआ। उन्होंने कहा, बोलना फिजूल है, कौन समझेगा? यह गंध बांटनी व्यर्थ है। यहां कोई गंध के पारखी ही नहीं हैं। हम बांटेंगे सोना, लोग समझेंगे पीतल; हम देंगे हीरे, लोग समझेंगे कंकड़-पत्थर। फेंक आएंगे। बुद्ध तो सात दिन चुप रह गए।

फिर कथा कहती है कि स्वर्ग के देवता उतरे, खुद ब्रह्मा उतरे, बुद्ध के चरणों में सिर रखा और कहा कि ऐसी अनूठी घटना कभी-कभार घटती है सदियों में, आप कहें। कोई समझे या न समझे, आप कहें। शायद कोई समझ ही ले। शायद कोई थोड़ा ही समझे। एक किरण भी किसी की समझ में आ जाए तो भी बहुत है। क्योंकि किरण के सहारे कोई सूरज तक जा सकता है।

बुद्ध कहते हैं, "तगर या चंदन की यह जो गंध है, अल्पमात्र है। और यह जो शीलवंतों की सुगंध है, वह उत्तम देवलोकों तक फैल जाती है।"

इस सुगंध को शब्द देने कठिन हैं। यह सुगंध कोई पार्थिव घटना नहीं है। तुम इसे तौल न सकोगे। न ही तुम इसे गठरियों में बांध सकोगे। न ही तुम इसे शास्त्रों में समा सकोगे। न ही तुम इसके सिद्धांत बना सकोगे। यह सुगंध अपार्थिव है। यह तो केवल उन्हीं को मिलती है, जो बुद्धों की आंखों में झांकने में समर्थ हो जाते हैं। यह तो केवल उन्हीं को मिलती है, जो बुद्धों के हृदयों में डूबने में समर्थ हो जाते हैं। यह तो केवल उन्हीं को मिलती है, जो मिटने को राजी हैं, जो खोने को राजी हैं। इस सुगंध को पाना बड़ा सौदा है। केवल जुआरी ही इसको पा पाते हैं।

होता है राजे-इश्को-मुहब्बत इन्हीं से फाश

आंखें जुबां नहीं हैं मगर बेजुबां नहीं

बुद्ध की आंखों में जो झांकेगा, तो बुद्ध की आंखें जबान तो नहीं हैं कि बोल दें, लेकिन वे बेजुबां भी नहीं हैं। बोलती हैं। जो बुद्ध की आंखों के दीये को समझेगा, जो बुद्ध की आंखों के दीये के पास अपने बुझे दीयों को ले आएगा, जो बुद्ध की शून्यता में अपनी शून्यता को मिला देगा, जो बुद्ध के साथ होने को राजी होगा--अज्ञात की यात्रा पर जाने को--केवल उसी के अंतरपट उस गंध से भर जाएंगे, केवल वही उस गंध का मालिक हो पाएगा।

"वे जो शीलवान, अप्रमाद में विहार करने वाले सम्यक ज्ञान द्वारा विमुक्त हो गए हैं, उनकी राह में मार नहीं आता है।"

और जिसने भी शील को पा लिया, अप्रमाद को पा लिया, सम्यक ज्ञान को पा लिया--एक ही बातें हैं--उसकी राह में फिर वासना का देवता मार नहीं आता है। जो जाग गया, उसे फिर मार के देवता से मुलाकात नहीं होती। उसकी तो फिर परमात्मा से ही मुलाकात होती है। जो सोया है, उसकी घड़ी-घड़ी मुलाकात वासना के देवता से ही होती है।

"जैसे महापथ के किनारे फेंके गए कूड़े के ढेर पर कोई सुगंधयुक्त सुंदर कमल खिले, वैसे ही कूड़े के समान अंधे सामान्यजनों के बीच सम्यक संबुद्ध का श्रावक अपनी प्रज्ञा से शोभित होता है।"

बहुत बातें हैं इस सूत्र में। पहली तो बात यह है कि कमल कीचड़ से खिलता है, कूड़े-करकट के ढेर से निकलता है। कमल कीचड़ में छिपा है। कमल तो पैदा करना है, लेकिन कीचड़ के दुश्मन मत हो जाना। नहीं तो कमल कभी पैदा न हो पाएगा।

समझो। जिसे तुमने क्रोध कहा है, वही है कीचड़; और जिसे तुमने करुणा जानी है, वही है कमल। और जिसे तुमने कामवासना कहा है, वही है कीचड़; और जिसको तुमने ब्रह्मचर्य जाना है, वही है कमल। काम के कीचड़ से ही राम का कमल खिलता है, क्रोध के कीचड़ से ही करुणा के फूल खिलते हैं।

जीवन एक कला है। और जीवन उन्हीं का है जो उस कला को सीख लें। भगोड़ों के लिए नहीं है जीवन, और न नासमझों के लिए है। तुम कहीं भूल में मत पड़ जाना। तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी तुम्हें जो समझाते हैं, जल्दी मत मान लेना। क्योंकि वे कहते हैं कि हटाओ क्रोध को; वे कहते हैं, हटाओ काम को। मैं तुमसे कहता हूं, बदलो, हटाओ मत। रूपांतरित करो, ट्रांसफार्म करो। क्रोध ऊर्जा है, उसे काट दोगे तो करुणा पैदा न होगी। तुम सिर्फ शक्तिहीन, नपुंसक हो जाओगे। काम ऊर्जा है। उसे अगर काट दोगे तो तुम निर्वीर्य हो जाओगे। बदलो, रूपांतरित करो, उसमें महाधन छिपा है। तुम कहीं फेंक मत देना। कीचड़ समझकर फेंक मत देना, कमल भी छिपा है। हालांकि कीचड़ को ही कमल मत समझ लेना।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं। बड़ी खतरनाक दुनिया है। एक तो वे लोग हैं, जो कहते हैं, कीचड़ को हटाओ, क्योंकि कहां कीचड़ को ढो रहे हो? काटो कामवासना को, तोड़ो क्रोध को, जला दो इंद्रियों को। एक तो ये लोग हैं। इन्होंने काफी हानि की संसार की। इन्होंने मनुष्य को गरिमा से शून्य कर दिया। इन्होंने मनुष्य का सारा गौरव नष्ट कर दिया, दीन-हीन कर दिया मनुष्य को। क्योंकि उसी कीचड़ में छिपे थे कमल।

फिर दूसरी तरह के लोग भी हैं। अगर उनसे कहो, कीचड़ में कमल छिपा है, फेंको मत कीचड़ को, बदलो; तो वे कहते हैं, बिल्कुल ठीक! फिर वे कीचड़ को ही सिंहासन पर विराजमान कर लेते हैं, फिर वे उसी की पूजा करते हैं। वे कहते हैं, तुम्हीं ने तो कहा था कि कीचड़ में कमल छिपा है। अब हम कीचड़ की पूजा कर रहे हैं।

ये दोनों ही खतरनाक लोग हैं। कीचड़ में कमल छिपा है। न तो कीचड़ को फेंकना है, न कीचड़ की पूजा करनी है। कीचड़ से कमल को निकालना है। कीचड़ से कमल को बाहर लाना है। जो छिपा है, उसे प्रगट करना है। इन दो अतियों से बचना। ये दोनों अतियां एक जैसी हैं। कुआं नहीं तो खाई। कहीं बीच में खड़े होने के लिए जगह खोजनी है। कोई संतुलन चाहिए।

"जैसे महापथ के किनारे फेंके गए कूड़े के ढेर पर कोई सुगंधित सुंदर कमल खिले।"

तो पहली तो बात यह है कि कमल खिलता ही कीचड़ में है। इसका बड़ा गहरा अर्थ हुआ। इसका अर्थ हुआ कि कीचड़ सिर्फ कीचड़ ही नहीं है, कमल की संभावना भी है। तो गहरी आंख से देखना, तो तुम कीचड़ में छिपा हुआ कमल पाओगे। कीचड़ सिर्फ वर्तमान ही नहीं है, भविष्य भी है। गौर से देखना, तुम भविष्य के कमल को झांकते हुए पाओगे। छिपा है। इसलिए जिनके पास पैनी आंखें हैं, उन्हीं को दिखाई पड़ेगा।

कीचड़ की पूजा भी नहीं करना, कीचड़ का उपयोग करना। कीचड़ को मालिक मत बन जाने देना, कीचड़ को सेवक ही रहने देना। मालिक तुम्हीं रहना, तो ही कमल निकल पाएगा। क्योंकि तुम्हारी मालकियत रहे तो ही कमल को तुम कीचड़ के बाहर खींच पाओगे। तुम अगर ऊर्ध्वगमन पर जाते हो, अगर तुम ऊपर की तरफ यात्रा कर रहे हो, तो ही कीचड़ का कमल भी ऊपर की तरफ तुम्हारे साथ जा सकेगा। तुम कीचड़ में ही डुबकी

लगाकर मत बैठ जाना, नहीं तो कमल किसके सहारे जाएगा! तुम्हीं को तो कमल की डंडी बनना है। पैर रहें कीचड़ में, सिर रहे आकाश में, तो तुम कीचड़ से कमल को बाहर निकाल पाओगे। पैर रहें जमीन पर, सिर रहे आकाश में; चलना जमीन पर, उड़ना परमात्मा में; और इन दोनों के बीच अगर तालमेल बना लो, तो तुम्हारे भीतर एक अनूठा कमल खिलेगा।

"जैसे महापथ के किनारे फेंके गए कूड़े के ढेर पर कोई सुगंधित सुंदर कमल खिले, वैसे ही कूड़े के समान अंधे सामान्यजनों के बीच सम्यक संबुद्ध का श्रावक अपनी प्रज्ञा से शोभित होता है।"

बुद्ध अपने शिष्य को श्रावक कहते हैं। श्रावक का अर्थ है, जिसने बुद्ध को सुना, श्रवण किया। बुद्ध को तो बहुत लोगों ने सुना, सभी श्रावक नहीं हैं। कान से ही जिन्होंने सुना, वे श्रावक नहीं हैं। जिन्होंने प्राण से सुना, वे श्रावक हैं। जिन्होंने ऐसे सुना कि सुनने में ही क्रांति घटित हो गई, जिन्होंने ऐसे सुना कि बुद्ध का सत्य उनका सत्य हो गया। श्रद्धा के कारण नहीं, सुनने की तीव्रता और गहनता के कारण। श्रद्धा के कारण नहीं, मान लिया ऐसा नहीं, पर सुना इतने प्राणपण से, सुना इतनी परिपूर्णता से, सुना अपने को पूरा खोलकर कि बुद्ध के शब्द केवल शब्द ही न रहे, निःशब्द भी उनमें चला आया। बुद्ध के शब्द ही भीतर न आए, उन शब्दों में लिपटी बुद्धत्व की गंध भी भीतर आ गई।

और ध्यान रखना, जब बुद्ध बोलते हैं तब शब्द तो वही होते हैं जो तुम बोलते हो, लेकिन जमीन-आसमान का फर्क है। शब्द तो वही होते हैं, लेकिन बुद्ध में डूबकर आते हैं, सराबोर होते हैं बुद्धत्व में, उन शब्दों में से बुद्धत्व झरता है। अगर तुमने बुद्ध के शब्दों को अपने प्राण में जगह दी, तो उनके साथ ही साथ बुद्धत्व का बीज भी तुम्हारे भीतर आरोपित हो जाता है। बुद्ध ने उनको श्रावक कहा है जिन्होंने ऐसे सुना।

और बुद्ध कहते हैं, सम्यक संबुद्धों का श्रावक सामान्यजनों के कूड़े-करकट की भीड़ में कमल की तरह खिल जाता है। अलग हो जाता है। रहता संसार में है, फिर भी पार हो जाता है। कमल होता कीचड़ में है, फिर भी दूर हो जाता है। उठता जाता है दूर। भिन्न हो जाता है।

कमल और कीचड़, कितना फासला है! फिर भी कमल कीचड़ से ही आता है। तुम्हारे बीच ही अगर किसी ने बुद्धत्व को अपने प्राणों में आरोपित कर लिया, बुद्ध के बीज को अपने भीतर जाने दिया, अपने हृदय में जगह दी, सींचा, पाला, पोसा, सुरक्षा की, तो तुम्हारे ठीक बीच बाजार के घूरे पर, ढेर पर उसका कमल खिल आएगा।

एक ही बात ख्याल रखनी जरूरी है, ऊपर की तरफ जाने को मत भूलना। नीचे की तरफ जो ले जाता है, वह है कामवासना, कीचड़। ऊपर की तरफ जो ले जाता है, वही है प्रेम, वही है प्रार्थना। काम को प्रेम में बदलो।

काम का अर्थ है, दूसरे से सुख मिल सकता है ऐसी धारणा। प्रेम का अर्थ है, किसी से सुख नहीं मिल सकता, और न कोई तुम्हें दुख दे सकता है। इसलिए दूसरे से लेने का तो कोई सवाल ही नहीं है। काम मांगता है दूसरे से। काम भिखारी है। काम है भिक्षा का पात्र। प्रेम है इस बात की समझ कि दूसरे से न कुछ कभी मिला है न मिलेगा। यह दूसरे के सामने भिक्षा के पात्र को मत फैलाओ। प्रेम है, तुम्हारे भीतर जो है उसे बांटो और दो। काम है मांगना, प्रेम है दान। जो तुम्हारे जीवन की संपदा है, उसे तुम दे दो, उसे तुम बांट दो। जैसे सुगंध बांटता है फूल, ऐसे तुम प्रेम को बांट दो। तो तुम्हारे जीवन में शील का जन्म होगा। बांटोगे तो तुम पाओगे, जितना बांटते हो उतनी बढ़ती जाती है संपदा। जितना लुटाते हो, साम्राज्य बड़ा होता जाता है।

केसरी और खुशरबी तो ढलती-फिरती छांव है

इस जिंदगी के बाहर दिखाई पड़ने वाले साम्राज्य और सम्राट तो ढलती-फिरती छांव हैं।

केसरी और खुशरबी तो ढलती-फिरती छांव है

इश्क ही एक जाबिदां दौलत है इंसानों के पास

दौलत एक है, धन एक है, संपत्ति एक है। बाकी तो ढलती-फिरती छांव है। इश्क ही है एक जाबिदां दौलत--प्रेम ही एकमात्र संपदा है। काम है भिखारीपन और प्रेम है संपदा। काम से पैदा होगा अशील और प्रेम से पैदा होता है शील। तो तुम्हारा जीवन एक प्रेम का दीया बन जाए।

और ध्यान रखना, प्रेम का दीया तभी बन सकता है जब तुम बहुत जागकर जीओ। जागने का तेल हो, प्रेम की बाती हो, तो परमात्मा का प्रकाश फैलता है। और तब जहां अंधेरा पाया था, वहां रोशनी हो जाती है; जहां कांटे पाए थे, वहां फूल हो जाते हैं; जहां संसार देखा था, वहां निर्वाण हो जाता है; जहां पदार्थ के सिवाय कभी कुछ न मिला था, वहीं परमात्मा का हृदय धड़कता हुआ मिलने लगता है।

जीसस ने कहा है, उठाओ पत्थर और तुम मुझे छिपा हुआ पाओगे, तोड़ो चट्टान और तुम मुझे छिपा हुआ पाओगे।

ऐसे भी हमने देखे हैं दुनिया में इंकलाब

पहले जहां कफस था वहीं आशियां बना

जहां पहले कारागृह था, हमने ऐसे भी इंकलाब देखे, ऐसी क्रांतियां देखीं, कि जहां कारागृह था, वहीं अपना निवास बना, घर बना। यह संसार ही, जिसको तुमने अभी कारागृह समझा है... अभी कारागृह है। संसार कारागृह है ऐसा नहीं, तुम्हारे देखने के ढंग अभी नासमझी के हैं, अंधेरे के हैं।

ऐसे भी हमने देखे हैं दुनिया में इंकलाब

पहले जहां कफस था वहीं आशियां बना

बुद्ध, महावीर, कृष्ण ऐसे ही इंकलाब हैं। जहां तुमने सिर्फ कारागृह पाया और जंजीरें पायीं, वहीं उन्होंने अपना घर भी बना लिया! जहां तुमने सिर्फ कीचड़ पाई, वहीं उनके कमल खिले। और जहां तुम्हें अंधकार के सिवाय कभी कुछ न मिला, वहां उन्होंने हजार-हजार सूरज जला लिए।

मैं तुमसे फिर कहता हूं--

सिवा इसके और दुनिया में क्या हो रहा है

कोई हंस रहा है कोई रो रहा है

अरे चौंक यह ख्वाबे-गफलत कहां तक

सहर हो गई है और तू सो रहा है

सहर सदा से ही है, सुबह सदा से ही है, तुम्हारे सोने की वजह से रात मालूम हो रही है। और जागना बिल्कुल तुम्हारे हाथ में है। कोई दूसरा तुम्हें जगा न सकेगा। तुमने ही सोने की जिद्द ठान रखी हो, तो कोई तुम्हें जगा न सकेगा। तुम जागना चाहो, तो जरा सा इशारा काफी है।

बुद्धपुरुष इशारा कर सकते हैं, चलना तुम्हें है। जागना तुम्हें है। अगर अपनी दुर्गंध से अभी तक नहीं घबड़ा गए, तो बात और। अगर अपनी दुर्गंध से घबड़ा गए हो, तो खिलने दो फूल को अब।

"चंदन या तगर, कमल या जूही, इन सभी की सुगंधों से शील की सुगंध सर्वोत्तम है।"

आज इतना ही।

बीसवां प्रवचन

प्रेम की आखिरी मंजिलः बुद्धों से प्रेम

पहला प्रश्नः जिन भिक्षुओं ने बुद्ध की मूर्तियां बनायीं और बुद्ध-वचन के शास्त्र लिखे, क्या उन्होंने बुद्ध की आज्ञा मानी? क्या वे उनके आज्ञाकारी शिष्य थे?

बुद्ध की आज्ञा तो उन्होंने नहीं मानी, लेकिन मनुष्य पर बड़ी करुणा की। और बुद्ध की आज्ञा तोड़ने जैसी थी, जहां मनुष्य की करुणा का सवाल आ जाए। ऐसे उन्होंने बुद्ध की आज्ञा तोड़कर भी बुद्ध की आज्ञा ही मानी। क्योंकि बुद्ध की सारी शिक्षा करुणा की है।

इसे थोड़ा समझना पड़ेगा।

बुद्ध ने कहा मेरी मूर्तियां मत बनाना, तो जिन्होंने मूर्तियां बनायीं उन्होंने बुद्ध की आज्ञा तोड़ी। लेकिन बुद्ध ने यह भी कहा कि जो ध्यान को उपलब्ध होगा, समाधि जिसके जीवन में खिलेगी, उसके जीवन में करुणा की वर्षा भी होगी। तो जिन्होंने मूर्तियां बनायीं उन्होंने करुणा के कारण बनायीं। बुद्ध के चरण-चिह्न खो न जाएं, और बुद्ध के चरण-चिह्नों की छाया अनंत काल तक बनी रहे।

कुछ बात ही ऐसी थी कि जिस आदमी ने कहा मेरी मूर्तियां मत बनाना, हमने अगर उसकी मूर्तियां न बनाई होतीं तो बड़ी भूल हो जाती। जिन्होंने कहा था हमारी मूर्तियां बनाना, उनकी हम छोड़ भी देते, न बनाते, चलता। बुद्ध ने कहा था मेरी पूजा मत करना, अगर हमने बुद्ध की पूजा न की होती, तो हम बड़े चूक जाते।

यह सौभाग्य की घड़ी कभी-कभी, सदियों में आती है, जब कोई ऐसा आदमी पैदा होता है जो कहे मेरी पूजा मत करना। यही पूजा के योग्य है। जो कहता है मेरी मूर्ति मत बनाना, यही मूर्ति बनाने के योग्य है। सारे जगत के मंदिर इसी को समर्पित हो जाने चाहिए।

बुद्ध ने कहा मेरे वचनों को मत पकड़ना, क्योंकि जो मैंने कहा है उसे जीवन में उतार लो। दीये की चर्चा से क्या होगा, दीये को सम्हालो। शास्त्र मत बनाना, अपने को जगाना। लेकिन जिस आदमी ने ऐसी बात कही, अगर इसका एक-एक वचन लिख न लिया गया होता, तो मनुष्यता सदा के लिए दरिद्र रह जाती। कौन तुम्हें याद दिलाता? कौन तुम्हें बताता कि कभी कोई ऐसा भी आदमी हुआ था, जिसने कहा था मेरे शब्दों को अग्नि में डाल देना, और मेरे शास्त्रों को जलाकर राख कर देना, क्योंकि मैं चाहता हूं जो मैंने कहा है वह तुम्हारे भीतर जीए, किताबों में नहीं? लेकिन यह कौन लिखता?

तो निश्चित ही जिन्होंने मूर्तियां बनायीं, बुद्ध की आज्ञा तोड़ी। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, उन्होंने ठीक ही किया। बुद्ध की आज्ञा तोड़ देने जैसी थी। नहीं कि बुद्ध ने जो कहा था, वह गलत था। बुद्ध ने जो कहा था, बिल्कुल सही कहा था। बुद्ध से गलत कहा कैसे जा सकता है? बुद्ध ने बिल्कुल सही कहा था, मेरी मूर्तियां मत बनाना, क्योंकि कहीं मूर्तियों में तुम मुझे न भूल जाओ, कहीं मूर्तियों में मैं खो न जाऊं, कहीं मूर्तियां इतनी ज्यादा न हो जाएं कि मैं दब जाऊं। तुम सीधे ही मुझे देखना।

लेकिन हम इतने अंधे हैं कि सीधे तो हम देख ही न पाएंगे। हम तो टटोलेंगे। टटोलकर ही शायद हमें थोड़ा स्पर्श हो जाए। टटोलने के लिए मूर्तियां जरूरी हैं। मूर्तियों से ही हम रास्ता बनाएंगे। हम उस परम शिखर

को तो देख ही न सकेंगे जो बुद्ध के जीवन में प्रगट हुआ। वह तो बहुत दूर है हमसे। आकाश के बादलों में खोया है वह शिखर। उस तक हमारी आंखें न उठ पाएंगी। हम तो बुद्ध के चरण भी देख लें, जो जमीन पर हैं, तो भी बहुत। उन्हीं के सहारे शायद हम बुद्ध के शिखर पर भी कभी पहुंच जाएं, इसकी आशा हो सकती है।

तो मैं तुमसे कहता हूं, जिन्होंने आज्ञा तोड़ी उन्होंने ही आज्ञा मानी। जिन्होंने वचनों को सम्हालकर रखा, उन्होंने ही बुद्ध को समझा। लेकिन तुम्हें बहुत जटिलता होगी, क्योंकि तर्क बुद्धि तो बड़ी नासमझ है।

ऐसा हुआ। एक युवक मेरे पास आता था। किसी विश्वविद्यालय में अध्यापक था। बहुत दिन मेरी बातें सुनीं, बहुत दिन मेरे सत्संग में रहा। एक रात आधी रात आया और कहा, जो तुमने कहा था वह मैं पूरा कर चुका। मैंने अपने सब वेद, उपनिषद, गीता कुएं में डाल दीं। मैंने उससे कहा, पागल! मैंने वेद-उपनिषद को पकड़ना मत, इतना ही कहा था। कुएं में डाल आना, यह मैंने न कहा था। यह तूने क्या किया?

वेद-उपनिषद को न पकड़ो तो ही वेद-उपनिषद समझ में आते हैं। वेद- उपनिषद को समझने की कला यही है कि उनको पकड़ मत लेना, उनको सिर पर मत ढो लेना। उनको समझना। समझ मुक्त करती है। समझ उससे भी मुक्त कर देती है जिसको तुमने समझा। कुएं में क्यों फेंक आया? और तू सोचता है कि तूने कोई बड़ी क्रांति की, मैं नहीं सोचता। क्योंकि अगर वेद-उपनिषद व्यर्थ थे, तो आधी रात में कुएं तक ढोने की भी क्या जरूरत थी? जहां पड़े थे पड़े रहने देता। कुएं में फेंकने वही जाता है, जिसने सिर पर बहुत दिन तक सम्हालकर रखा हो। कुएं में फेंकने में भी आसक्ति का ही पता चलता है। तुम उसी से घृणा करते हो जिस से तुमने प्रेम किया हो। तुम उसी को छोड़कर भागते हो जिससे तुम बंधे थे।

एक संन्यासी मेरे पास आया और उसने कहा, मैंने पत्नी-बच्चे सबका त्याग कर दिया। मैंने उससे पूछा, वे तेरे थे कब? त्याग तो उसका होता है जो अपना हो। पत्नी तेरी थी? सात चक्कर लगा लिए थे आग के आसपास, उससे तेरी हो गई थी? बच्चे तेरे थे? पहली तो भूल वहीं हो गई कि तूने उन्हें अपना माना। और फिर दूसरी भूल यह हो गई कि उनको छोड़कर भागा। छोड़ा वही जा सकता है जो अपना मान लिया गया हो। बात कुल इतनी है, इतना ही जान लेना है कि अपना कोई भी नहीं है, छोड़कर क्या भागना है! छोड़कर भागना तो भूल की ही पुनरुक्ति है।

जिन्होंने जाना, उन्होंने कुछ भी छोड़ा नहीं। जिन्होंने जाना, उन्होंने कुछ भी पकड़ा नहीं। जिन्होंने जाना, उन्हें छोड़ना नहीं पड़ता, छूट जाता है। क्योंकि जब दिखाई पड़ता है कि पकड़ने को यहां कुछ भी नहीं है, तो मुट्ठी खुल जाती है।

बुद्ध की मृत्यु हुई--तब तक तो किसी ने बुद्ध का शास्त्र लिखा न था, ये धम्मपद के वचन तब तक लिखे न गये थे--तो बौद्ध भिक्षुओं का संघ इकट्ठा हुआ। जिनको याद हो, वे उसे दोहरा दें, ताकि लिख लिया जाए।

बड़े ज्ञानी भिक्षु थे, समाधिस्थ भिक्षु थे। लेकिन उन्होंने तो कुछ भी याद न रखा था। जरूरत ही न थी। समझ लिया, बात पूरी हो गई थी। जो समझ लिया, उसको याद थोड़े ही रखना पड़ता है। तो उन्होंने कहा कि हम कुछ कह तो सकते हैं, लेकिन वह बड़ी दूर की ध्वनि होगी। वे ठीक-ठीक वही शब्द न होंगे जो बुद्ध के थे। उसमें हम भी मिल गये हैं। वह हमारे साथ इतना एक हो गया है कि कहां हम, कहां बुद्ध, फासला करना मुश्किल है।

तो अज्ञानियों से पूछा कि तुम कुछ कहो, ज्ञानी तो कहते हैं कि मुश्किल है तय करना। हमारी समाधि के सागर में बुद्ध के वचन खो गये। अब हमने सुना, हमने कहा कि उन्होंने कहा, इसकी भेद-रेखा नहीं रही। जब

कोई स्वयं ही बुद्ध हो जाता है, तो भेद-रेखा मुश्किल हो जाती है। क्या अपना, क्या बुद्ध का? अज्ञानियों से पूछो।

अज्ञानियों ने कहा, हमने सुना तो था, लेकिन समझा नहीं। सुना तो था, लेकिन बात इतनी बड़ी थी कि हम सम्हाल न सके। सुना तो था, लेकिन हम से बड़ी थी घटना, हमारी स्मृति में न समाई, हम अवाक और चौंके रह गये। घड़ी आई और बीत गई, और हम खाली हाथ के खाली हाथ रहे। तो कुछ हम दोहरा तो सकते हैं, लेकिन हम पक्का नहीं कह सकते कि बुद्ध ने ऐसा ही कहा था। बहुत कुछ छूट गया होगा। और जो हमने समझा था, वही हम कहेंगे। जो उन्होंने कहा था, वह हम कैसे कहेंगे?

तो बड़ी कठिनाई खड़ी हो गई। अज्ञानी कह नहीं सकते, क्योंकि उन्हें भरोसा नहीं। ज्ञानियों को भरोसा है, लेकिन सीमा-रेखाएं खो गई हैं।

फिर किसी ने सुझाया, किसी ऐसे आदमी को खोजो जो दोनों के बीच में हो। बुद्ध के साथ बुद्ध का निकटतम शिष्य आनंद चालीस वर्षों तक रहा था। लोगों ने कहा, आनंद को पूछो! क्योंकि न तो वह अभी बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ है और न वह अज्ञानी है। वह द्वार पर खड़ा है। इस पार संसार, उस पार बुद्धत्व, चौखट पर खड़ा है, देहली पर खड़ा है। और जल्दी करो, अगर वह देहली के पार हो गया, तो उसकी भी सीमा-रेखाएं खो जाएंगी।

आनंद ने जो दोहराया, वही संगृहीत हुआ। आनंद की बड़ी करुणा है जगत पर। अगर आनंद न होता, बुद्ध के वचन खो गये होते। और बुद्ध के वचन खो गये होते, तो बुद्ध का नाम भी खो गया होता।

नहीं कि तुम बुद्ध के नाम या वचन से मुक्त हो जाओगे। आग शब्द से कभी कोई जला? जल शब्द से कभी किसी की तृप्ति हुई? लेकिन सुराग मिलता है, राह खुलती है। शायद तुममें से कोई चल पड़े। सरोवर की बात सुनकर किसी की प्यास साफ हो जाए, कोई चल पड़े। हजार सुनें, कोई एक चल पड़े। लाख सुनें, कोई एक पहुंच जाए। उतना भी क्या कम है!

तो तुम पूछते हो, "जिन्होंने बुद्ध की मूर्तियां बनायीं क्या उन्होंने आज्ञा का उल्लंघन किया?"

निश्चित ही आज्ञा का उल्लंघन किया, करने योग्य था। अगर कहीं कोई अदालत हो, तो मैं उनके पक्ष में खड़ा होऊं। मैं बुद्ध के खिलाफ उनके पक्ष में खड़ा होऊं जिन्होंने मूर्तियां बनायीं। उन्होंने संगमरमर के नाक-नक्श से थोड़ी सी खबर हम तक पहुंचा दी।

बुद्ध की मूर्ति बनानी असंभव है। क्योंकि बुद्धत्व अरूप है, निराकार है। बुद्ध की तुम क्या प्रतिमा बनाओगे? कैसे बनाओगे? कोई उपाय नहीं है। लेकिन फिर भी अदभुत मूर्तियां बनीं। उन मूर्तियों को अगर कोई गौर से देखे, तो मूर्तियां कुंजियां हैं। तुम्हारे भीतर कोई ताले खुल जाएंगे, गौर से देखते-देखते। तुम्हारे भीतर कोई चाबी लग जाएगी, कोई द्वार अचानक खुल जाएगा।

हमने संगमरमर में मूर्तियां बनायीं, क्योंकि संगमरमर पत्थर भी है और कोमल भी। बुद्ध पत्थर जैसे कठोर हैं और फूल जैसे कोमल। तो हमने संगमरमर चुना। संगमरमर कठोर है, पर शीतल। बुद्ध पत्थर जैसे कठोर हैं, पर उन जैसा शीतल, उन जैसा शांत तुम कहां पाओगे? हमने संगमरमर की मूर्तियां चुनीं। क्योंकि बुद्ध जब जीवित थे तब भी वे ऐसे ही शांत बैठ जाते थे, कि दूर से देखकर शक होता कि आदमी है या मूर्ति?

मैंने एक बड़ी पुरानी कहानी सुनी है। एक बहुत बड़ा मूर्तिकार हुआ। उस मूर्तिकार को एक ही भय था सदा, मौत का। जब उसकी मौत करीब आने लगी, तो उसने अपनी ही ग्यारह मूर्तियां बना लीं। वह इतना बड़ा

कलाकार था कि लोग कहते थे, अगर वह किसी की मूर्ति बनाए तो पहचानना मुश्किल है कि मूल कौन है, मूर्ति कौन है। मूर्ति इतनी जीवंत होती थी।

जब मौत ने द्वार पर दस्तक दी, तो वह अपनी ही ग्यारह मूर्तियों में छिपकर खड़ा हो गया। श्वास उसने साध ली। उतना ही फर्क था कि वह श्वास लेता, मूर्तियां श्वास न लेतीं। उसने श्वास रोक ली। मौत भीतर आई और बड़े भ्रम में पड़ गई। एक को लेने आई थी, यहां बारह एक जैसे लोग थे। लेकिन मौत को धोखा देना इतना आसान तो नहीं। मौत ने जोर से कहा, और सब तो ठीक है, एक जरा सी भूल रह गई। वह चित्रकार बोला, कौन सी भूल? मौत ने कहा, यही कि तुम अपने को न भूल पाओगे।

लेकिन अगर बुद्ध खड़े होते वहां, तो उतनी भूल भी न रह गई थी। उतनी भी भूल न रह गई थी, अपनी याद भी न रह गई थी। अपना होना भी न रह गया था। अगर बुद्ध को तुम ठीक से समझोगे, तो उनके स्वाभिमान में भी तुम विनम्रता को लहरें लेते देखोगे। उनके होने में भी तुम न होने का स्वाद पाओगे।

नियाज की ही मेरे नाज में भी शान रही

खुदी की लहर भी आई तो बेखुदी की तरह

नियाज की ही मेरे नाज में भी शान रही--मेरी अस्मिता में, मेरे स्वाभिमान में भी विनम्रता की ही शान रही, उसकी ही महिमा के गीत चलते रहे। खुदी की लहर भी आई--और कभी मैंने समझा भी कि मैं हूं--खुदी की लहर भी आई तो बेखुदी की तरह। इस तरह समझा कि जैसे नहीं हूं।

हमने संगमरमर में बुद्ध को खोदा। कभी बुद्ध की प्रतिमाओं के पास बैठकर गौर से देखो। यह पत्थर में जो खुदा है, इसमें बहुत कुछ छिपा है। बुद्ध की आंखें देखो, बंद हैं। बंद आंखें कहती हैं कि बाहर जो दिखाई पड़ता था, अब व्यर्थ हो गया। अब भीतर देखना है। यात्रा बदल गई। अब बाहर की तरफ नहीं जाते हैं, अब भीतर की तरफ जाते हैं। जो दिखाई पड़ता था, अब उसमें रस नहीं रहा। अब तो उसी को देखना है जो देखता है। अब द्रष्टा की खोज शुरू हुई, दृश्य की नहीं। मूर्ति ऐसी थिर है, जरा भी कंपन का पता नहीं चलता। ऐसे ही भीतर बुद्ध की चेतना थिर हो गई है, निष्कंप हो गई है। जैसे हवा का एक झोंका भी न आए और दीये की लपट ठहर जाए। मूर्ति में हमने यह सब खोदा। मूर्ति तो एक प्रतीक है। अगर तुम उस प्रतीक का राज समझो, तो देखते-देखते मूर्ति को तुम भी मूर्ति जैसे हो जाओगे। अच्छा ही किया जिन्होंने बुद्ध की आज्ञा न मानी।

बुद्ध बिल्कुल ठीक ही कहते थे कि मूर्ति मत बनाना, क्योंकि मैं अमूर्त हूं। आकार मत ढालना, क्योंकि मैं निराकार हूं। तुम जो कुछ भी करोगे, गलत होगा। सीमा होगी उसकी, मैं असीम हूं। बुद्ध बिल्कुल ठीक ही कहते थे। लेकिन यह बात दूसरे बुद्धों के लिए ठीक होगी, तुम सबका क्या होता? तुम सबके लिए तो निराकार की भी खबर आएगी तो आकार से। तुम्हारे लिए तो निर्गुण की भी खबर आएगी तो सगुण से। तुम तो अनाहत नाद भी सुनोगे तो भी आहत नाद से ही। तुम तो वहीं से चलोगे न जहां तुम हो। जहां बुद्ध हैं, वहां तो पहुंचना है। वहां से तुम्हारी यात्रा न हो सकेगी।

और बुद्ध के वचन जिन्होंने इकट्ठे किये, वैसे वचन पृथ्वी पर बहुत कम बोले गये हैं, जैसे वचन बुद्ध के हैं। जैसी सीधी उनकी चोट है और जैसे मनुष्य के हृदय को रूपांतरित कर देने की कीमिया है उनमें, वैसे वचन बहुत कम बोले गये हैं। खो सकते थे वचन। और बहुत बुद्ध भी हुए हैं बुद्ध के पहले, उनके वचन खो गये हैं। उनके शिष्यों में कोई गहरा आज्ञाकारी न था, ऐसा मालूम होता है। बड़ा दुर्भाग्य हुआ, बड़ी हानि हुई। कौन जाने उनमें से कौन सा वचन तुम्हें जगाने का कारण हो जाता, निमित्त बन जाता।

तो मैं दोनों बातें कहता हूं। जिन्होंने मूर्तियां बनायीं, बुद्ध के वचन तोड़े; जिन्होंने बुद्ध के वचन इकट्ठे किये, उन्होंने बुद्ध के वचन तोड़े; लेकिन फिर भी मैं कहता हूं कि उन्होंने ठीक ही किया, अच्छा ही किया। और गहरे में मैं जानता हूं कि बुद्ध भी उनसे प्रसन्न हैं कि उन्होंने ऐसा किया। क्योंकि बुद्ध तो वही कहते हैं, जो वे कह सकते हैं, जो उन्हें कहना चाहिए। शिष्य को तो और भी बहुत सी बातें सोचनी पड़ती हैं, बुद्ध क्या कहते हैं वही नहीं। अंधेरे में भटकते हुए जो हजारों लोग आ रहे हैं, उनका भी विचार करना जरूरी है।

बुद्धों के पास एक प्रेम का जन्म होता है। यद्यपि बुद्ध कहते हैं, प्रेम आसक्ति है, लेकिन बुद्धों के पास प्रेम की आखिरी मंजिल आती है। यद्यपि बुद्ध कहते हैं, मेरे प्रेम में मत पड़ना, पर कैसे बचोगे ऐसे आदमी से? जितना वे कहते हैं, मेरे प्रेम में मत पड़ना, उतना ही उनके प्रति प्रेम उमगता है, उतना ही उनके प्रति प्रेम बहता है। जितना वे तुम्हें सम्हालते हैं, उतना ही तुम डगमगाते हो। कठिन है बहुत। बुद्ध मिल जाएं और प्रेम में न पड़ना कठिन है। ठीक ही बुद्ध कहते हैं कि मेरे प्रेम में मत पड़ना। लेकिन बचना असंभव है।

जिस जगह आकर फरिश्ते भी पिघल जाते हैं जोश

लीजिए हजरत सम्हलिए वह मुकाम आ ही गया

फरिश्ते भी जहां पिघल जाते हैं, जहां देवता भी खड़े हों तो प्रेम में पड़ जाएं।

जिस जगह आकर फरिश्ते भी पिघल जाते हैं जोश

लीजिए हजरत सम्हलिए वह मुकाम आ ही गया

जब बुद्धों के पास कोई आता है तो ऐसे मुकाम पर आ जाता है कि--उनकी शिक्षा है कि प्रेम में मत पड़ना--लेकिन उनका होना ऐसा है कि हम प्रेम में पड़ जाते हैं। उनकी शिक्षा है कि हमें पकड़ना मत, पर कौन होगा पत्थर का हृदय जो उन्हें छोड़ दे?

तो फिर करना क्या है? फिर होगा क्या? होगा यही कि ऐसे भी पकड़ने के ढंग हैं, जिनको पकड़ना नहीं कहा जा सकता। प्रेम की ऐसी भी सूरतें हैं, जिनमें आसक्ति नहीं। लगाव की ऐसी भी शैलियां हैं, जिनमें लगाव नहीं। प्रेम में डूबा भी जा सकता है और प्रेम के बाहर भी रहा जा सकता है। मैं तुमसे कहता हूं, जैसे जल में कमल, ऐसे बुद्ध के पास रहना होता है। प्रेम में पड़ते भी हैं, और अपना दामन बचाकर चलते भी। इस विरोधाभास को जिसने साध लिया, वही बुद्धों के सत्संग के योग्य होता है।

इनमें से दो में से तुमने अगर एक को साधा, अगर तुम प्रेम में पड़ गये, जैसे कि कोई साधारण जगत के प्रेम में पड़ जाता है, तो प्रेम बंधन हो जाता है। तब बुद्ध से तुम्हारा संबंध तुमने सोचा जुड़ा, बुद्ध की तरफ से टूट गया। तुमने समझा तुम पास रहे, बुद्ध की तरफ से तुम हजार-हजार मील दूर हो गये। अगर तुमने सोचा कि संबंध बनाएंगे ही नहीं, क्योंकि संबंध बंधन बन जाता है, तो तुम बुद्ध के पास दिखाई पड़ोगे, लेकिन पास न पहुंच पाओगे। बिना प्रेम के कभी कोई पास आया?

तो मैं तुमसे बड़ी उलझन की बात कह रहा हूं। प्रेम भी करना और सावधान भी रहना। प्रेम भी करना और प्रेम की जंजीरें मत बनाना। प्रेम करना और प्रेम का मंदिर बनाना। प्रेम करना और प्रेम को मुक्ति बनाना।

जिस जगह आकर फरिश्ते भी पिघल जाते हैं जोश

लीजिए हजरत सम्हलिए वह मुकाम आ ही गया

बहुत सम्हल-सम्हलकर सत्संग होता है। सत्संग का खतरा यही है कि तुम प्रेम में पड़ सकते हो। और सत्संग का यह भी खतरा है कि प्रेम से बचने के ही कारण तुम दूर भी रह सकते हो। दूर रहोगे तो चूकोगे, प्रेम बंधन बन गया तो चूक जाओगे, ऐसी मुसीबत है! पर ऐसा है। कुछ करने का उपाय नहीं। सम्हल-सम्हलकर

चलना है। इसलिए सत्संग को खड्ग की धार कहा है। जैसे तलवार की धार पर कोई चलता हो--इधर गिरे कुआं, उधर गिरे खाई।

लीजिए हजरत सम्हलिए...

बहुत सम्हलकर चलने की बात है।

दूसरा प्रश्नः चारों ओर मेरे घोर अंधेरा

भूल न जाऊं द्वार तेरा

एक बार प्रभु हाथ पकड़ लो।

अंधेरा दिखाई पड़ने लगे, मिटना शुरू हो जाता है। क्योंकि न देखने में ही अंधेरे के प्राण हैं।

अगर कविता की पंक्तियां ही दोहरा दी हों, तब तो बात दूसरी। अगर ऐसा अनुभव में आना शुरू हो गया हो--चारों ओर मेरे घोर अंधेरा, अगर यह वचन उधार न हो, सुना-सुनाया न हो, किसी और की थाली से चुराया न हो, अगर इसका थोड़ा स्वाद आया हो, तो जिसे अंधेरा दिखने लगा उसे प्रकाश की पहचान आ गई। क्योंकि बिना प्रकाश की पहचान के कोई अंधेरे को भी देख नहीं सकता। अंधेरा यानी क्या? जब तक तुम प्रकाश को न जानोगे--भला एक किरण सही, भला एक छोटा सा टिमटिमाता चिराग सही--लेकिन रोशनी देखी हो तो ही अंधेरे को पहचान सकोगे।

यही तो घटता है बुद्धपुरुषों के पास। तुम अपने अंधेरे को लेकर जब उनकी रोशनी के पास आते हो, तब तुम्हें पहली बार पता चलता है--चारों ओर मेरे घोर अंधेरा। उसके पहले भी तुम अंधेरे में थे। अंधेरे में ही जन्मे, अंधेरे में ही बड़े हुए, अंधेरे में ही पले-पुसे, अंधेरा ही भोजन, अंधेरा ही ओढ़नी, अंधेरा ही बिछौना, अंधेरा ही श्वास, अंधेरा ही हृदय की धड़कन, पहचानने का कोई उपाय न था।

इसलिए शास्त्र सत्संग की महिमा गाते हैं, और शास्त्र गुरु की महिमा गाते हैं। उस महिमा का कुल राज इतना है कि जब तक तुम किसी ऐसे व्यक्ति के पास न आ जाओ, जहां प्रकाश जलता हो, जहां दीया जलता हो, तब तक तुम अपने अंधेरे को न पहचान पाओगे। तुलना ही न होगी, पहचान कैसे होगी? विपरीत चाहिए, कंट्रास्ट चाहिए, तो दिखाई पड़ना शुरू होता है। और जब दिखाई पड़ना शुरू होता है, तब घबड़ाहट शुरू होती है। तब जीवन एक बेचैनी हो जाता है। तब कहीं चैन नहीं पड़ता। उठते-बैठते, सोते-जागते, काम करते न करते, सब तरफ भीतर एक ख्याल बना रहता है।

"चारों ओर मेरे घोर अंधेरा

भूल न जाऊं द्वार तेरा।"

प्रीतिकर है बात। अंधेरे में पूरी संभावना है कि द्वार भूल जाए। अंधेरे में द्वार का पता कहां है? अंधेरे में तो द्वार का सपना देखा है, द्वार कहां। लेकिन अगर इतनी याद बनी रहे, और इतनी प्रार्थना बनी रहे, और यह भीतर सुरति, स्मृति चलती रहे--भूल न जाऊं द्वार तेरा, तो यही स्मृति धीरे-धीरे द्वार बन जाती है।

द्वार कहीं तुमसे बाहर थोड़े ही है। द्वार कहीं तुमसे भिन्न थोड़े ही है द्वार कोई ऐसी जगह थोड़े ही है जिसे खोजना है। द्वार तुमसे प्रगट होगा। तुम्हारे स्मरण से ही द्वार बनेगा। तुम्हारे सातत्य, सतत चोट से ही द्वार बनेगा। तुम्हारी प्रार्थना ही तुम्हारा द्वार बन जाएगी। जिसको नानक सुरति कहते हैं, कबीर सुरति कहते हैं,

जिसको बुद्ध ने स्मृति कहा है, जिसको पश्चिम का एक बहुत अदभुत पुरुष गुरजिएफ सेल्फ रिमेंबरिंग कहता था--स्वयं की स्मृति, स्व स्मृति--वही तुम्हारा द्वार बनेगी।

अंधेरे की याद रखो। भूलने से अंधेरा बढ़ता है। याद रखने से घटता है। क्योंकि याद का स्वभाव ही रोशनी का है। स्मृति का स्वभाव ही प्रकाश का है। याद रखो--चारों ओर मेरे घोर अंधेरा। इसे कभी गीत की कड़ी की तरह गुनगुनाना मत, यह तुम्हारा मंत्र हो जाए। श्वास भीतर आए, बाहर जाए, इसकी तुम्हें याद बनी रहे। इसकी याददाश्त के माध्यम से ही तुम अंधेरे से अलग होने लगोगे। क्योंकि जिसकी तुम्हें याद है, जिसको तुम देखते हो, जो दृश्य बन गया, उससे तुम अलग हो गये, पृथक हो गये।

"भूल न जाऊं द्वार तेरा।"

भक्त गहन विनम्रता में जीता है। द्वार मिल भी जाए तो भी वह यही कहेगा, भूल न जाऊं द्वार तेरा। क्योंकि वह जानता है कि मेरे किये तो कुछ होगा नहीं। मेरे किये तो सब अनकिया हो जाता है। मैं तो भवन बनाता हूं, गिर जाते हैं। मैं तो योजना करता हूं, व्यर्थ हो जाती है। मैं पूरब जाता हूं, पश्चिम पहुंच जाता हूं। अच्छा करता हूं, बुरा हो जाता है। कुछ सोचता हूं, कुछ घटता है। मेरे किये कुछ भी न होगा। भक्त कहता है, तू ही अगर, तेरी कृपा अगर बरसती रहे, तो ही कुछ संभव है।

"भूल न जाऊं द्वार तेरा
एक बार प्रभु हाथ पकड़ लो।"

बहुत ही बढ़िया पंक्ति है। क्योंकि एक बार अगर प्रभु ने हाथ पकड़ लिया, तो फिर छूटता ही नहीं। क्योंकि उसकी तरफ से एक बार पकड़ा गया सदा के लिए पकड़ा गया। और एक बार तुम्हारे हाथ को उसके हाथ का स्पर्श आ जाए, तो तुम तुम न रहे। वह हाथ ही थोड़े ही है, पारस है। छूते ही लोहा सोना हो जाता है।

लेकिन तुम्हें अथक टटोलते ही रहना पड़ेगा। वह हाथ मुफ्त नहीं मिलता है। वह हाथ उन्हीं को मिलता है जिन्होंने खूब खोजा है। वह हाथ उन्हीं को मिलता है जिन्होंने खोज की पराकाष्ठा कर दी। वह हाथ उन्हीं को मिलता है जिन्होंने खोजने में कुछ भी रख न छोड़ा। अगर तुमने थोड़ी भी बचाई हुई है अपनी ताकत, तो तुम चालाक हो। तो तुम्हारी प्रार्थना व्यर्थ जाएगी। अगर तुमने सब दांव पर लगा दिया, तो तुम्हारी जीत निश्चित है।

यह काम जुआरियों का है, दुकानदारों का नहीं। धर्म जुआरियों का काम है, दुकानदारों का नहीं। हिसाब-किताब मत रखना कि चलो दो पैसा ताकत लगाकर देखें, एक आना ताकत लगाकर देखें, दो आना ताकत लगाकर देखें। ऐसे हिसाब- किताब से उसका हाथ तुम्हारे हाथ में न आएगा। क्योंकि तुम्हारी बेईमानी जाहिर है। जब तुम अपने को पूरा दांव पर लगा देते हो--पीछे कुछ छूटता ही नहीं--जब तुम स्वयं ही पूरे दांव पर बैठ जाते हो, उसी क्षण हाथ हाथ में आ जाता है। उस क्षण हाथ में न आए तो ब.ड़ा अन्याय हो जाएगा। वैसा अन्याय नहीं है--देर है, अंधेर नहीं। और देर भी तुम्हारे कारण है।

यह कहावत तुमने सुनी है--देर है, अंधेर नहीं। लेकिन कहावत में लोग सोचते हैं कि देर उसकी तरफ से है। वहीं गलती है। देर तुम्हारी तरफ से है। तुम जितनी देर चाहो लगा दो। तुम बेमन से टटोल रहे हो। तुम टटोलते भी हो और डरे हो कि कहीं मिल न जाए। तुम ऐसे टटोलते भी हो और शंकित हो कि कहीं हाथ हाथ में आ ही न जाए, क्योंकि बड़ा खतरनाक हाथ है। फिर तुम तुम ही न हो सकोगे उसके बाद। उसकी एक झलक तुम्हें राख कर जाएगी। उसकी एक किरण तुम्हें सदा के लिए मिटा जाएगी। तुम जैसे हो वैसे न बचोगे।

हां, तुम जैसे होने चाहिए वैसे बचोगे, जो तुम्हारा स्वभाव है बचने का। जो कूड़ा-करकट तुमने अपने चारों तरफ इकट्ठा कर लिया है, पद का, प्रतिष्ठा का, नाम का, रूप का, वह सब जलकर राख हो जाएगा। तो

तुम्हारी प्रार्थना--परमात्मा से तुम्हारी प्रार्थना--बस एक ही हो सकती है, और वह प्रार्थना है कि यह मेरा जो कूड़ा-करकट है, जिसको मैंने समझा कि मैं हूं, इसे मिटा।

जिंदगी दरिया-ए-बेसाहिल है और किश्ती खराब

मैं तो घबराकर दुआ करता हूं तूफां के लिए

तुम्हारी बस एक ही प्रार्थना हो सकती है कि तुम तूफान के लिए प्रार्थना करो।

जिंदगी दरिया-ए-बेसाहिल है--किनारा कहीं दिखाई नहीं पड़ता। सारी जिंदगी का अनुभव यही है कि किनारा कहीं नहीं है। और किश्ती खराब--और नाव टूटी-फूटी; अब डूबी, तब डूबी! मैं तो घबराकर दुआ करता हूं तूफां के लिए--तो मैं एक ही प्रार्थना करता हूं कि परमात्मा तूफान भेज दे।

जरा अपनी किश्ती को गौर से तो देखो। जरा अपने चारों तरफ आंख खोलकर देखो, किनारे कहां हैं! सपने देखे हैं तुमने किनारों के, आशाएं संजोई हैं तुमने किनारों की, किनारे हैं कहां? तुम डरते हो आंख उठाने में भी कि कहीं ऐसा न हो कि किनारा सच में ही न हो। तुम आंख झुकाकर किनारों की सोचते रहते हो कि आज नहीं पहुंचे, कल पहुंच जाएंगे। पहुंच जाएंगे। एक बात तो तुमने मान ही रखी है कि किनारा है।

मैं तुमसे कहता हूं कि जिसे तुम जिंदगी कहते हो उसका कोई भी किनारा नहीं। वह तटहीन उपद्रव है। कोई किनारा नहीं। कभी कोई वहां किनारे पर नहीं पहुंचा। न एलेक्जेंडर, न नेपोलियन, कभी कोई वहां किनारे पर नहीं पहुंचा। सभी बीच में ही डूबकर मर जाते हैं। कोई थोड़ा आगे, कोई थोड़ा पीछे।

लेकिन आगे-पीछे का भी क्या मतलब है, जहां किनारा न हो! किनारा होता, तो कोई किनारे के पास पहुंचकर डूबता तो कहते, थोड़ा आगे। हम बीच मझधार में डूब जाते तो कहते कि थोड़े पीछे। लेकिन सभी जगह बीच मझधार है। बीच मझधार ही है। किनारा नहीं है।

और किश्ती की तरफ तो देखो जरा, थेगड़े लगाए चले जाते हो। एक छेद टूटता है, भरते हो। दूसरा खुल जाता है, भरते हो। पानी उलीचते रहते हो। जिंदगी इस टूटी किश्ती के बचाने में ही बीत जाती है।

जो जानते हैं वे तूफान के लिए प्रार्थना करते हैं। वे कहते हैं, परमात्मा! मैं जैसा हूं मुझे मिटा, ताकि मैं वैसा हो सकूं जैसा तूने चाहा।

जिंदगी दरिया-ए-बेसाहिल है और किश्ती खराब

मैं तो घबराकर दुआ करता हूं तूफां के लिए

और तुम्हारे जीवन में अगर ऐसी प्रार्थना का प्रवेश हो जाए--प्रार्थना यानी मृत्यु की प्रार्थना--और कोई प्रार्थना है भी नहीं। तुमने प्रार्थनाएं की हैं, मुझे भलीभांति पता है। तुम्हारे मंदिरों में मैंने तुम्हारी प्रार्थनाएं भी सुनी हैं। तुम्हारी मस्जिदों में, तुम्हारे गुरुद्वारों में तुम्हारी प्रार्थनाएं खुदी पड़ी हैं। पत्थर-पत्थर पर लिखी हैं। लेकिन तुमने सदा प्रार्थना उसी जिंदगी के लिए की जिसमें कोई किनारा नहीं है। और तुमने सदा प्रार्थना उसी किश्ती को सुधार देने के लिए की, जो न कभी सुधरी है, न सुधर सकती है। तुमने कभी प्रार्थना अपने को डुबा देने के लिए न की। जिसने की, उसकी पूरी हो गई। और जो डूबने को राजी है, मझधार में ही किनारा मिल जाता है।

जिसे तुम जिंदगी कहते हो उसका कोई किनारा नहीं। और जिसको मैं परमात्मा कह रहा हूं, वह किनारा ही किनारा है, वहां कोई मझधार नहीं। देखने का ढंग, एक तो अहंकार के माध्यम से देखना है--टूटी किश्ती के माध्यम से--वहां डर ही डर है, मौत ही मौत है। और एक अहंकार को हटाकर देखना है। वहां कोई मौत नहीं,

कोई डर नहीं, क्योंकि अहंकार ही मरता है, तुम नहीं। तुम्हारे भीतर तो शाश्वत है। एस धम्मो सनंतनो। तुम्हारे भीतर तो अमृत है। तुम्हारे भीतर तो शाश्वत छिपा है, सनातन छिपा है।

अभी मयखाना-ए-दीदार हर जर्रे में खुलता है

अगर इंसान अपने आप से बेगाना हो जाए

बस एक छोटी सी बात कि अहंकार न रह जाए।

अगर इंसान अपने आप से बेगाना हो जाए

जरा अपने से दूर हो जाए, जरा अपने को छोड़ दे, यह अपना होना जरा मिटा दे... ।

अभी मयखाना-ए-दीदार हर जर्रे में खुलता है

फिर तो हर कण-कण में परमात्मा की मधुशाला खुल जाती है। फिर तो कण-कण में उसी की मधुशाला खुल जाती है। फिर तो सभी तरफ उसी का प्रसाद उपलब्ध होने लगता है। बस जरा सी तरकीब है, तुम जरा हट जाओ। तुम्हारे और परमात्मा के बीच में तुम्हारे सिवाय और कोई भी नहीं।

तीसरा प्रश्नः इस प्रवचनमाला में आपने कई बार कहा है, एस धम्मो सनंतनो, यही सनातन धर्म है। और आश्चर्य तो यह है कि वह हर बार नये रूप में आपके द्वारा प्रगट हुआ है। क्या सनातन धर्म एक है या अनेक?

तो एक है, लेकिन उसके प्रतिबिंब अनेक हो सकते हैं। रात पूरा चांद निकलता है। सागरों में भी झलकता है, सरोवरों में भी झलकता है, छोटे-छोटे डबरों में भी झलकता है--प्रतिबिंब बहुत हैं।

सागर में बताकर भी मैंने तुमसे कहा, एस धम्मो सनंतनो। छोटे सरोवर में भी बताकर कहा, एस धम्मो सनंतनो। राह के किनारे वर्षा में भर गये डबरे में भी बताकर कहा, एस धम्मो सनंतनो। मैंने बहुत बार कहा। बहुत रूप में कहा। लेकिन वे सब प्रतिबिंब हैं और जो चांद है, वह तो कहा नहीं जा सकता। इसलिए तुम और उलझन में पड़ोगे।

मैंने जब भी कहा, एस धम्मो सनंतनो, यही सनातन धर्म है, तभी प्रतिबिंब की बात कही है। प्रतिबिंब में मत उलझ जाना। इशारा किया। इशारे को मत पकड़ लेना। और जो है ऊपर, वह जो चांद है असली, उसकी तरफ कोई इशारा नहीं किया जा सकता। अंगुलियां वहां छोटी पड़ जाती हैं। शब्द वहां काफी सिद्ध नहीं होते। और फिर उस चांद को देखना हो तो तुम्हें गर्दन बड़ी ऊंची उठानी पड़ेगी। और तुम्हारी आदत जमीन में देखने की हो गई है। तो तुम्हें प्रतिबिंब ही बताए जा सकते हैं।

लेकिन अगर प्रतिबिंब कहीं तुम्हारे जीवन का आकर्षण बन जाए, कहीं प्रतिबिंब का चुंबक तुम्हें खींच ले, तो शायद आज नहीं कल तुम असली की तलाश में भी निकल जाओ। क्योंकि प्रतिबिंब तो खो-खो जाएगा। जरा हवा का झोंका आएगा, झील कंप जाएगी और चांद टूटकर बिखर जाएगा। तो आज नहीं कल तुम्हें यह ख्याल आना शुरू हो जाएगा, जो झील में देखा है, वह सच नहीं हो सकता। सच की खबर हो सकती है, सच की दूर की ध्वनि हो सकती है--प्रतिध्वनि हो सकती है, प्रतिबिंब हो सकता है--लेकिन जो झील में देखा है, वह सच नहीं हो सकता। शब्द में जिसे कहा गया है, वह सत्य नहीं हो सकता। लेकिन शब्द में जिसे कहा गया है, वह सत्य का बहुत दूर का रिश्तेदार हो सकता है।

मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में ऐसा उल्लेख है कि एक मित्र ने दूर गांव से एक मुर्गी भेजी। मुल्ला ने शोरबा बनाया। जो मुर्गी को लेकर आया था उसे भी निमंत्रित किया। कुछ दिनों बाद एक दूसरा आदमी आया। मुल्ला ने

पूछा, कहां से आए? उसने कहा, मैं भी उसी गांव से आता हूं, और जिसने मुर्गी भेजी थी उसका रिश्तेदार हूं। अब रिश्तेदार का रिश्तेदार भी आया था तो उसको भी ठहराया। उसके लिए भी शोरबा बनवाया। लेकिन कुछ दिन बाद एक तीसरा आदमी आ गया। कहां से आ रहे हो? उसने कहा, जिसने मुर्गी भेजी थी, उसके रिश्तेदार का रिश्तेदार हूं।

ऐसे तो संख्या बढ़ती चली गई। मुल्ला तो परेशान हो गया। यह तो मेहमानों का सिलसिला लग गया। मुर्गी क्या आई, ये तो लोग चले ही आते हैं। यह तो पूरा गांव आने लगा। आखिर एक आदमी आया, उससे पूछा कि भाई आप कौन हैं? उसने कहा, जिसने मुर्गी भेजी थी, उसके रिश्तेदार के रिश्तेदार के रिश्तेदार का मित्र हूं।

मुल्ला ने शोरबा बनवाया। उस मित्र ने चखा, लेकिन वह बोला, यह शोरबा! यह तो सिर्फ गरम पानी मालूम होता है। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, यह वह जो मुर्गी आई थी, उसके शोरबे के शोरबे के शोरबे का मित्र है।

दूर होती जाती हैं चीजें। मैंने तुम्हें झील में दिखाया। तुम ऐसा भी कर सकते हो--कर सकते हो नहीं, करोगे ही--तुम झील के सामने एक दर्पण करके दर्पण में देखोगे। क्योंकि जब मैं तुमसे कहता हूं, तुम मुझे थोड़े ही सुनोगे, तुम्हारा मन उसकी व्याख्या करेगा।

जब मैंने कहा तभी चांद दूर हो गया। मैं जब देखता हूं, तब चांद है; जब मैं तुमसे कहता हूं तब झील में प्रतिबिंब है। जब तुम सुनते हो और सोचते हो, तब तुमने झील को भी दर्पण में देखा। फिर दर्पण को भी दर्पण में देखते चले जाओगे। ऐसे सत्य से शब्द दूर होता चला जाता है।

इसलिए बहुत बार जिन्होंने जाना है वे चुप रह गये। लेकिन चुप रहने से भी कुछ नहीं होता। जब तुम कह-कहकर नहीं सुनते हो, जगाए-जगाए नहीं जगते हो, तो चुप बैठने को तुम कैसे सुनोगे? जब शब्द चूक जाता है, तो मौन भी चूक जाएगा। जब शब्द तक चूक जाता है, तो मौन तो निश्चित ही चूक जाएगा। फिर भी जो कहा जा सकता है वह प्रतिध्वनि है, इसे याद रखना। उस प्रतिध्वनि के सहारे मूल की तरफ यात्रा करना, तीर्थयात्रा करना।

तंग था जिसके लिए हरफे-बयां का दायरा

वो फसाना हम खामोशी में सुनाकर रह गये

शब्द छोटे पड़ जाते हैं। दायरा छोटा है।

तंग था जिसके लिए हरफे-बयां का दायरा

कहने की सीमा है, जो कहना है उसकी कोई सीमा नहीं। गीत की सीमा है, जो गाना है उसकी कोई सीमा नहीं। वाद्य की सीमा है, जो बजाना है उसकी कोई सीमा नहीं।

वो फसाना हम खामोशी में सुनाकर रह गये

लेकिन खामोशी तो तुम कैसे समझोगे? शब्द भी चूक जाते हैं। हिलाए-हिलाए तुम नहीं हिलते नींद से। जगाए-जगाए तुम नहीं हिलते नींद से। शब्द तो ऐसे हैं जैसे पास में रखी घड़ी में अलार्म बजता हो। तब भी तुम नहीं जगते। तो जिस घड़ी में अलार्म नहीं बजता, उससे तुम कैसे जगोगे।

तो बहुत ज्ञानी चुप रह गये। बहुत ज्ञानी बोले। चुप रहने वालों को तुमने समझा, जानते ही नहीं। बोलने वालों से तुमने शब्द सीखे और तुम पंडित हो गये। लेकिन कुछ ज्ञानियों ने बीच का रास्ता चुना। और बीच का रास्ता ही सदा सही रास्ता है। उन्होंने कहा भी और इस ढंग से कहा कि अनकहा भी तुम्हें भूल न जाए। उन्होंने कहा भी और कहने के बीच-बीच में खाली जगह छोड़ दी। उन्होंने कहा भी और रिक्त स्थान भी छोड़े। रिक्त स्थान तुम्हें भरने हैं।

तुमने छोटे बच्चों की किताबें देखी हैं? एक शब्द दिया होता है, फिर खाली जगह, फिर दूसरा शब्द दिया होता है। और बच्चों से कहा जाता है, बीच का शब्द भरो। जो परमज्ञानी हुए, उन्होंने यही किया। एक शब्द दिया, खाली जगह दी, फिर दूसरा शब्द दिया। बीच की खाली जगह तुम्हें भरनी है। जो मैं कह रहा हूं, वह प्रतिबिंब है। जो तुम भरोगे, वह चांद होगा।

सत्य उधार नहीं मिल सकता। सत्य को तुम्हें जन्माना होगा। सत्य को तुम्हें अपने गर्भ में धारण करना होगा। सत्य तुम्हारे भीतर बढ़ेगा। जैसे मां के पेट में बच्चा बड़ा होता है। वह तुम्हारा खून, तुम्हारी श्वास मांगता है। वह तुम्हारा ही विस्तार होगा। जब तक तुम ही चांद न बन जाओ, तब तक तुम चांद को न देख सकोगे।

इसलिए मैंने बहुत बार कहा और बहुत बार कहूंगा, क्योंकि ये बुद्ध के वचन तो अभी बहुत देर तक चलेंगे। बहुत बार बहुत जगह कहूंगा, एस धम्मो सनंतनो। तब तुम स्मरण रखना कि मैं यह नहीं कह रहा हूं कि धर्म बहुत हैं। मैं इतना ही कह रहा हूं कि बहुत स्थान हैं जहां से धर्म का इशारा किया जा सकता है। कभी गुलाब के फूल की तरफ इशारा करके कहूंगा, एस धम्मो सनंतनो। कभी चांद की तरफ इशारा करके कहूंगा, एस धम्मो सनंतनो। कभी किसी छोटे बच्चे की आंखों में झांककर कहूंगा, एस धम्मो सनंतनो। क्योंकि चाहे गुलाब हो, चाहे आंख हो, चाहे चांद हो, सौंदर्य एक है।

बहुत रूपों में परमात्मा प्रगट हुआ है। हमारे अंधेपन की कोई सीमा नहीं। इतने रूपों में प्रगट हुआ है और हम पूछे चले जाते हैं, कहां है? कहीं एकाध रूप में प्रकट होता तब तो मिलने का कोई उपाय ही न था। इतने रूपों में प्रगट हुआ है। सब तरफ से उसने ही तुम्हें घेरा है। जहां जाओ, वही सामने आ जाता है। जिससे मिलो, उसी से मिलना होता है। सुनो झरने की आवाज, तो उसी का गीत; सुनो रात का सन्नाटा, तो उसी का मौन; देखो सूरज को, तो उसी की रोशनी; और देखो अमावस को, तो उसी का अंधेरा। इतने रूपों में तुम्हें घेरा है, फिर भी तुम चूकते चले जाते हो। अभागा होता मनुष्य अगर कहीं उसका एक ही रूप होता, एक ही मंदिर होता और केवल वह एक ही जगह मिलता होता। तब तो फिर कोई शायद पहुंच ही न पाता। इतने रूपों में मिलता है, फिर भी हम चूक जाते हैं।

तो मैं बहुत जगह तुमसे कहूंगा, यह रहा परमात्मा! इसका यह मतलब नहीं कि बहुत परमात्मा हैं। इसका इतना ही मतलब कि बहुत उसके रूप हैं। अनेक उसके ढंग हैं। अनेक उसकी आकृतियां हैं। लेकिन वह स्वयं इन सभी आकृतियों के बीच निराकार है। होगा भी। क्योंकि इतने रूप उसी के हो सकते हैं, जो अरूप हो। इतने आकार उसी के हो सकते हैं जो निराकार हो। इतने अनंत-अनंत माध्यमों में वही प्रगट हो सकता है जो प्रगट होकर भी पूरा प्रगट न हो पाता हो।

बंदगी ने हजार रुख बदले

जो खुदा था वही खुदा है हनूज

प्रार्थनाएं बदल जाती हैं। बंदगी के ढंग बदल जाते हैं। पूजा बदल जाती है। कभी गुरुद्वारा, कभी मस्जिद, कभी शिवाला; कभी काबा, कभी काशी।

बंदगी ने हजार रुख बदले

न मालूम कितने पत्थरों के सामने सिर झुके, और न मालूम कितने शब्दों में उसकी प्रार्थना की गई, और न मालूम कितने शास्त्र उसके लिए रचे गये।

बंदगी ने हजार रुख बदले

जो खुदा था वही खुदा है हनूज

लेकिन आज तक जो खुदा था वही खुदा है।

तो बहुत बार मैं कहूंगा, एस धम्मो सनंतनो। यही है सनातन धर्म। इससे तुम यह मत समझ लेना कि यही है। इससे तुम इतना ही समझना कि यहां भी है। और बहुत जगह भी है। सभी जगह है। सभी जगह उसका विस्तार है। वह तुम्हारे आंगन जैसा नहीं है, आकाश जैसा है। यद्यपि तुम्हारे आंगन में भी वही आकाश है।

चौथा प्रश्नः मेरी हालत त्रिशंकु की हो गई है। न पीछे लौट सकती, न आगे कोई रास्ता दिखाई पड़ता है। जाऊं तो जाऊं कहां?

धर्म को कहीं है भी नहीं। जहां हो वहीं होना है।

अच्छा ही हुआ कि आगे कोई रास्ता नहीं दिखाई पड़ता, नहीं तो जाना जारी रहता। अच्छा है कि पीछे भी लौट नहीं सकते, नहीं तो लौट जाते। इससे बेचैनी मत अनुभव करो। बेचैनी अनुभव होती है, यह मैं समझता हूं। क्योंकि जाने की आदत हो गई है। कहीं जाने को न हो, तो आदमी घबड़ाता है। बेकार भी जाने को हो, तो भी निश्चिंत चला जाता है।

कहां जा रहे हैं, इसका इतना सवाल नहीं है। जा रहे हैं, कुछ काम चल रहा है। लगता है कुछ हो रहा है, कहीं पहुंच रहे हैं। मंजिल की किसको फिकर है। व्यस्तता बनी रहती है। चलने में उलझे रहते हैं। तो लगता है कुछ हो रहा है।

कौन कहां पहुंचा है चलकर? तुम भी न पहुंचोगे। कोई कभी चलकर नहीं पहुंचा। जो पहुंचे, रुककर पहुंचे। जिन्होंने जाना, ठहरकर जाना। देखो बुद्ध की प्रतिमा को। चलते हुए मालूम पड़ते हैं? बैठे हैं। जब तक चलते थे तब तक न पहुंचे। जब बैठ गये, पहुंच गये।

यह तो बड़ी शुभ घड़ी है। लेकिन हमारी आदतें खराब हो गयीं। हमारी आदतें चलने की हो गई हैं। बिना चले ऐसा लगता है, जीवन बेकार जा रहा है। चाहे चलना हमारा कोल्हू के बैल का चलना हो कि गोल चक्कर में घूमते रहते हैं। है वही। रोज तुम उठते हो, करते क्या हो? रोज चलते हो, पहुंचते कहां हो? सांझ वहीं आ जाते हो जहां सुबह निकले थे। जन्म जहां से शुरू किया मौत वहीं ले आती है। एक गोल वर्तुलाकार है।

मैंने सुना है कि एक बहुत बड़ा तार्किक तेल खरीदने गया था तेली के घर। तेली का कोल्हू चल रहा था। बैल कोल्हू खींच रहा था, तेल निचुड़ रहा था। तार्किक था! उसने देखा यह काम, कोई हांक भी नहीं रहा है बैल को, वह अपने आप ही चल रहा है।

उसने पूछा, गजब, यह बैल अपने आप चल रहा है! कोई हांक भी नहीं रहा! रुक क्यों नहीं जाता? उस तेल वाले ने कहा, महानुभाव, जब कभी यह रुकता है, मैं उठकर इसको फिर हांक देता हूं। इसको पता नहीं चल पाता कि हांकने वाला पीछे मौजूद है या नहीं।

तार्किक तार्किक था। उसने कहा, लेकिन तुम तो बैठे दुकान चला रहे हो, इसको दिखाई नहीं पड़ता? उस तेल वाले ने कहा, जरा गौर से देखें, इसकी आंखों पर पट्टियां बांधी हुई हैं। इसे दिखाई कुछ नहीं पड़ता। जब भी यह जरा ठहरा या रुका कि मैंने हांका। पर उस तार्किक ने कहा कि तुम तो पीठ किये बैठे हो उसकी तरफ। पीछे चल रहा है कोल्हू, तुम्हें पता कैसे चलता है? उसने कहा, आप देखते नहीं बैल के गले में घंटी बांधी हुई है? जब तक बजती रहती है, मैं समझता हूं चल रहा है। जब रुक जाती है, उठकर मैं हांक देता हूं। इसको पता नहीं चल

पाता। उस तार्किक ने कहा, अब एक सवाल और। क्या यह बैल खड़े होकर गर्दन नहीं हिला सकता है? उस तेल वाले ने कहा, जरा धीरे-धीरे बोलें। कहीं बैल न सुन ले।

तुम जरा अपनी जिंदगी तो गौर से देखो। न कोई हांक रहा है, मगर तुम चले जा रहे हो। आंख बंद है। गले में खुद ही घंटी बांध ली है। वह भी किसी और ने बांधी, ऐसा नहीं। हालांकि तुम कहते यही हो। पति कहता है, पत्नी ने बांध दी। चलना पड़ता है। बेटा कहता है, बाप ने बांध दी है। बाप कहता है, बच्चों ने बांध दी है। कौन किसके लिए घंटी बांध रहा है! कोई किसी के लिए नहीं बांध रहा है। बिना घंटी के तुम्हें ही अच्छा नहीं लगता। तुमने घंटी कोशृंगार समझा है। आंख पर पट्टियां हैं, घंटी बंधी है, चले जा रहे हो। कहां पहुंचोगे? इतने दिन चले, कहां पहुंचे? मंजिल कुछ तो करीब आई होती!

लेकिन जब भी तुम्हें कोई चौंकाता है, तुम कहते हो, धीरे बोलो। जोर से मत बोल देना, कहीं हमारी समझ में ही न आ जाए। तुम ऐसे लोगों से बचते हो, किनारा काटते हो, जो जोर से बोल दें। संतों के पास लोग जाते नहीं। और अगर जाते हैं, तो ऐसे ही संतों के पास जाते हैं जो तुम्हारी आंखों पर और पट्टियां बंधवा दें। और तुम्हारी घंटी पर और रंग-पालिश कर दें। न बज रही हो तो और बजने की व्यवस्था बता दें। ऐसे संतों के पास जाते हैं कि तुम्हारे पैर अगर शिथिल हो रहे हों और बैठने की घड़ी करीब आ रही हो, तो पीछे से हांक दें कि चलो, बैठने से कहीं कोई पहुंचा है! कुछ करो। कर्मठ बनो। परमात्मा ने भेजा है तो कुछ करके दिखाओ।

थोड़ा समझना। जीवन की गहनतम बातें करने से नहीं मिलतीं, होने से मिलती हैं। करना तो ऊपर-ऊपर है, पानी पर उठी लहरें है। होना है गहराई।

अच्छा ही हुआ, लेकिन व्याख्या गलत हो रही है।

प्रश्न है, "मेरी हालत त्रिशंकु की हो गई है।"

एकदम अच्छा हुआ। शुभ हुआ। धन्यवाद दो परमात्मा को। लेकिन शब्द से लगता है कि शिकायत है, शिकवा है। क्योंकि तुम्हें लग रहा है, यह तो कहीं के न रहे। पीछे लौट नहीं सकते। जरूरत क्या है लौटने की पीछे? लौट सकते तो क्या मिलता? पीछे से तो होकर ही आ रहे हो। कुछ मिलना होता तो मिल ही गया होता। हाथ तुम्हारे खाली हैं और पीछे लौटना है! जिस रास्ते से गुजर चुके, सिवाय धूल के कुछ भी नहीं लाए हो साथ, फिर लौटकर जाना है?

तुम कहोगे, चलो छोड़ो, पीछे नहीं आगे तो जाने दो। मगर यह रास्ता वही है; जो पीछे की तरफ फैला है, वही आगे की तरफ फैला है। ये एक ही रास्ते की दो दिशाएं हैं। तुम जिस रास्ते पर पीछे चलते आ रहे हो, उसी पर तो आगे जाओगे न। उसी कीशृंखला होगी। उसी का सिलसिला होगा।

अब तक क्या मिला? पचास साल की उम्र हो गई, अब बीस साल और इसी रास्ते पर चलोगे, क्या मिलेगा? तुम कहोगे, चलो यह भी छोड़ो, कोई दूसरा रास्ता बता दो। मगर रास्ता तुम चाहते हो। क्योंकि चलना तुम्हारी आदत हो गई है। दौड़ने की विक्षिप्तता तुम पर सवार हो गई है। रुक नहीं सकते, ठहर नहीं सकते, दो घड़ी बैठ नहीं सकते।

क्यों? क्योंकि जब भी तुम रुकते हो, तभी तुम्हें जिंदगी की व्यर्थता दिखाई पड़ती है। जब भी तुम ठहरते हो, खाली क्षण मिलता है, तभी तुम्हें लगता है यह तो शून्य है। कुछ भी मैंने कमाया नहीं। तभी तुम कंप जाते हो। एक संताप पकड़ लेता है। एक अस्तित्वगत खाई में गिरने लगते हो। उससे बचने के लिए फिर तुम काम में संलग्न हो जाते हो। कुछ भी करने में लग जाते हो। रेडियो खोलो, अखबार पढ़ो, मित्र के घर चले जाओ, पत्नी से

झगड़ लो। कुछ भी बेहूदा काम करने लगो। एक गेंद खरीद लाओ, बीच में रस्सी बांध लो, इससे उस तरफ फेंको, उस तरफ से इस तरफ फेंको।

लोग कहते हैं, फुटबाल खेल रहे हैं। कोई कहता है, वालीबाल खेल रहे हैं। और लाखों लोग देखने भी इकट्ठे होते हैं। खेलने वाले तो नासमझ हैं, समझ में आया। कम से कम खेल रहे हैं। लेकिन लाखों लोग देखने इकट्ठे होते हैं। मारपीट हो जाती है। एक गेंद को इस तरफ से उस तरफ करते हो, शर्म नहीं आती। मगर सारी जिंदगी ऐसी है। कुछ भी करने को बहाना मिल जाए। ताश फेंकते रहते हैं, ताश बिखेरते रहते हैं। शतरंज बिछा लेते हैं। जिंदगी में तलवार चलाना जरा महंगा धंधा है। घोड़े वगैरह रखना भी जरा मुश्किल है। हाथी तो अब कौन पाले? शतरंज बिछा लेते हो। हाथी-घोड़े चलाते हो। और ऐसे तल्लीन हो जाते हो जैसे सारा जीवन दांव पर लगा है। तुम अपने को कितनी भांति धोखे देते हो।

बहुत हुआ। अब जागो। और जागने का एक ही उपाय है कि तुम थोड़ी देर को रोज खाली बैठने लगो। कुछ भी मत करो। करना ही तुम्हारा संसार है। न करना ही तुम्हारा निर्वाण बनेगा। कुछ देर को खाली बैठने लगो। घड़ी-दो घड़ी ऐसे हो जाओ जैसे हो ही नहीं। एक शून्य सन्नाटा छा जाए। श्वास चले, चलती रहे। लेकिन कृत्य की कोई आसपास भनक न रह जाए। तुम बस चुपचाप बैठे रहो। धीरे-धीरे--शुरू में तो बड़ी बेचैनी होगी, बड़ी तलफ पकड़ेगी कि कुछ भी कर गुजरो, क्या बैठे यहां समय खराब कर कहे हो--लेकिन जल्दी ही तुम पाओगे कि जीवन की तरंगें शांत होती जाती हैं; भीतर के द्वार खुलते हैं।

मेरे पास लोग आते हैं। उनसे मैं कहता हूं, चुप बैठ जाओ। वे कहते हैं, यह हमसे न होगा। कम से कम मंत्र ही दे दें। तो हम वही जपेंगे। मगर करेंगे। माला दे दें, उसको ही फिराते रहेंगे।

अब शतरंज में और माला में कोई फर्क है? चाहे तुम फिल्मी गीत गुनगुनाओ और चाहे तुम राम-राम जपो, कोई फर्क नहीं। असली सवाल तुम्हारे व्यस्त होने का है। कैसे तुम अव्यस्त हो जाओ, अनआकुपाइड हो जाओ।

ध्यान का अर्थ है, करने को कुछ भी न हो, बस तुम हो। जैसे फूल हैं। जैसे आकाश के तारे हैं। ऐसे बस हो गये। कुछ नहीं करने को। कठिन है बहुत, सर्वाधिक कठिन है। इससे ज्यादा कठिन कुछ भी नहीं।

लेकिन अगर तुम बैठते ही रहे, बैठते ही रहे, बैठते ही रहे तो किसी दिन अचानक तुम पाओगे बज उठी कोई वीणा भीतर से। उसकी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। मैं कुछ कह नहीं सकता, कब यह होगा। तुम पर निर्भर है। आज हो सकता है। जन्म भर न हो। तुम पर निर्भर है।

लेकिन किसी दिन जब बज उठेगी तुम्हारी भीतर की वीणा, तब तुम पाओगे व्यर्थ गंवाया जीवन। भीतर इतना बड़ा उत्सव चल रहा था, हम हाथी-घोड़े चलाते रहे। भीतर इतने बड़े आनंद की अहर्निश वर्षा हो रही थी, भीतर स्वर्ग के द्वार खुले थे, हम बाजार में गंवाते रहे।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम बाजार छोड़कर भाग जाओ। मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि चौबीस घंटे में दो घड़ी अपने लिए निकाल लो। बाकी सब घड़ी बाजार में गंवा दो, कोई हर्जा नहीं। जिंदगी के आखिर में तुम पाओगे, जो बैठकर तुमने गुजारा समय, वही बचाया, बाकी सब गया।

और एक बार तुम्हारे भीतर का यह अंतर्नाद तुम्हें सुनाई पड़ने लगे--उसे ओंकार कहो, या जो तुम्हारी मर्जी हो--जिस दिन यह भीतर का अंतर्नाद तुम्हें सुनाई पड़ने लगेगा, उस दिन फिर तुम बाजार में रहो, दुकान में रहो, जहां रहो, कोई फर्क नहीं पड़ता, भीतर की वीणा बजती ही रहती है। सदा बजती रही है। सिर्फ तुम्हें सुनने की आदत नहीं है। सुनने की सामर्थ्य नहीं है। तुम तालमेल नहीं बिठा पाए हो।

तो अच्छा हुआ कि हालत त्रिशंकु की हो गई। न पीछे जाने का कोई रास्ता--भगवान को धन्यवाद दो! न आगे जाने का कोई उपाय--बड़ा सौभाग्य! अब बैठ जाओ। वहीं बैठ जाओ जहां हो। न पीछे लौटकर देखो, न आगे। आंख बंद कर लो। कहीं जाना नहीं है। अपने पर आना है।

जिसे तुम खोजते हो, वह तुम में छिपा है। जिसकी तरफ तुम जा रहे हो, वह तुम में बसा है। आखिर में यही पाया जाता है कि हम जिसे तलाशते थे, वह तलाश करने वाले में ही छिपा था। इसीलिए तो इतनी देर लग गई और खोज न पाए।

आखिरी सवालः प्रेम मैंने जाना नहीं, यही मेरे जीवन की चुभन रही। यही कारण होगा जिसने मुझे ध्यान में गति दी। ध्यान से अशांति और वैर-भाव मिट रहे हैं। भक्ति और समर्पण मेरे लिए कोरे शब्द रहे। फिर भी ध्यान में और विशेषकर प्रवचन में, कई बार यह प्रगाढ़ भाव बना रहता है कि इस जीवन में जो भी मिल सकता था, सब मिला हुआ है।

जाने में कुछ भी दुर्भाग्य नहीं है। बाधाएं ही सीढ़ियां भी बन सकती हैं। और सीढ़ियां बाधाएं भी बन सकती हैं। सौभाग्य और दुर्भाग्य तुम्हारे हाथ में है। जीवन तटस्थ अवसर है। एक राह पर बड़ा पत्थर पड़ा हो, तुम वहीं अटककर बैठ सकते हो कि अब कैसे जाएं, पत्थर आ गया। तुम उस पत्थर पर चढ़ भी सकते हो। और तब तुम पाओगे कि पत्थर ने तुम्हारी ऊंचाई बढ़ा दी। तुम्हारी दृष्टि का विस्तार बढ़ा दिया। तुम रास्ते को और दूर तक देखने लगे। जितना पत्थर के बिना देखना संभव न था। तब पत्थर सीढ़ी हो गया।

यह प्रश्न है कि "मैंने प्रेम जीवन में नहीं जाना, यही मेरे जीवन की चुभन रही।"

उसे चुभन मत समझो अब। प्रेम नहीं जाना, निश्चित ही इसीलिए ध्यान की तरफ आना हुआ। उसे सौभाग्य बना लो। अब प्रेम की बात ही छोड़ दो। क्योंकि जिसने ध्यान जान लिया, प्रेम तो उसकी छाया की तरह अपने आप आ जाएगा।

दो ही विकल्प हैं परमात्मा को पाने के। दो ही राहें हैं। एक है प्रेम, एक है ध्यान। जो मिलता है वह तो एक ही है। कोई प्रेम से उसकी तरफ जाता है। उस रास्ते की सुविधाएं हैं, खतरे भी। सुविधा यह है कि प्रेम बड़ा सहज है, स्वाभाविक है। खतरा भी यही है कि इतना स्वाभाविक है कि उसमें उलझ जाने का डर है। होश नहीं रहता। बेहोशी हो जाती है।

इसलिए अधिक लोग प्रेम से परमात्मा तक नहीं पहुंचते, प्रेम से छोटे-छोटे कारागृह बना लेते हैं, उन्हीं में बंद हो जाते हैं। प्रेम बहुत कम लोगों के लिए मुक्ति बनता है, अधिक लोगों के लिए बंधन बन जाता है। प्रेम अधिक लोगों के लिए राग बन जाता है। और जब तक प्रेम विराग न हो तब तक परमात्मा तक पहुंचना नहीं होता।

तो प्रेम की सुविधा है कि वह स्वाभाविक है। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर प्रेम की उमंग है। खतरा भी यही है कि वह इतना स्वाभाविक है कि उसमें होश रखने की जरूरत नहीं। तुम उसमें उलझ सकते हो।

जिनके जीवन में प्रेम नहीं संभव हो पाया--और बहुत लोगों के जीवन में संभव नहीं हो पाया है--तो बैठकर कांटे को पकड़कर मत पूजते रहो। नहीं प्रेम संभव हुआ, चिंता छोड़ो। ध्यान संभव है। और ध्यान के भी खतरे हैं और सुविधाएं भी। खतरा यही है कि श्रम करना होगा, चेष्टा करनी होगी। प्रयास और साधना करनी होगी। संकल्प करना होगा। अगर जरा भी शिथिलता की तो ध्यान न सधेगा। अगर जरा भी आलस्य की तो

ध्यान न सधेगा। अगर ऐसे ही सोचा कि कुनकुने-कुनकुने कर लेंगे, तो न सधेगा। जलना पड़ेगा। सौ डिग्री पर उबलना पड़ेगा। यह तो कठिनाई है। लेकिन फायदा भी है कि थोड़ा भी ध्यान सधे, तो साथ में होश भी सधता है। क्योंकि प्रयास, साधना, संकल्प।

इसलिए ध्यान सधे, तो कभी भी कारागृह नहीं बनता। कठिनाई है सधने की। प्रेम सध तो जाता है बड़ी आसानी से, लेकिन जल्दी ही जंजीरें ढल जाती हैं। ध्यान सधता है मुश्किल से, लेकिन सध जाए तो सदा ही मोक्ष और सदा ही मुक्ति के आकाश की तरफ ले जाता है।

और दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक तो वे कि अगर प्रेम न सधा, तो उन्होंने ध्यान को साध लिया। और जो ऊर्जा प्रेम में जाती, वही सारी ध्यान में संलग्न हो गई। या जो ध्यान न सधा, तो उन्होंने सारी ऊर्जा को प्रेम में समर्पित कर दिया। या तो भक्त बनो, या ध्यानी। ये एक तरह के लोग हैं।

दूसरे तरह के लोग हैं, उनसे प्रेम न सधा, तो ध्यान की तरफ तो न गये, बस प्रेम का रोना लेकर बैठे हैं। रो रहे हैं कि प्रेम न सधा। और उन्हीं की तरह के दूसरे लोग भी हैं कि ध्यान न सधा, तो बस वे बैठे हैं, रो रहे हैं उदास मंदिरों में, आश्रमों में कि ध्यान न सधा। वे प्रेम की तरफ न गये।

मैं तुमसे कहता हूं, सब साधन तुम्हारे लिए हैं, तुम किसी साधन के लिए नहीं। प्रेम से सधे, प्रेम से साध लेना। ध्यान से सधे, ध्यान से साध लेना। साधन का थोड़े ही मूल्य है। तुम बैलगाड़ी से यहां मेरे पास आए, कि पैदल आए, कि ट्रेन से आए, कि हवाई जहाज से आए, आ गये, बात खतम हो गई। तुम कैसे आए इसका क्या प्रयोजन है? पहुंच गये, बात समाप्त हो गई।

ध्यान रखना पहुंचने का। फिर प्रेम से हो कि ध्यान से हो, भक्ति से हो कि ज्ञान से हो। इस उलझन में बहुत मत पड़ना। साधन को साध्य मत समझ लेना। साधन का उपयोग करना है। सीढ़ी से चढ़ जाना है और भूल जाना है। नाव से उतर जाना है और विस्मरण कर देना है नाव का।

इतनी ही याद बनी रहे कि सब धर्म तुम्हारे लिए हैं। सब साधन, विधियां तुम्हारे लिए हैं। तुम्हीं गंतव्य हो। तुम्हीं हो जहां पहुंचना है। तुमसे ऊपर कुछ भी नहीं।

साबार ऊपर मानुस सत्य ताहार ऊपर नाहीं।

चंडीदास के ये शब्द हैं कि सबसे ऊपर मनुष्य का सत्य है। उसके ऊपर कुछ भी नहीं है। इसका यह मतलब नहीं है कि परमात्मा नहीं है। इसका इतना ही मतलब है कि मनुष्य अगर अपने सत्य को जान ले, तो परमात्मा को जान ले।

साबार ऊपर मानुस सत्य ताहार ऊपर नाहीं।

तुम सबसे ऊपर हो। क्योंकि तुम अपने अंतरतम में छिपे परमात्मा हो। बीज हो अभी, कभी फूल बन जाओगे। लेकिन बीज में फूल छिपा ही है। न खाद का कोई मूल्य है, न जमीन का, न सूरज की किरणों का। इतना ही मूल्य है कि तुम्हारे भीतर जो छिपा है वह प्रगट हो जाए।

इसलिए व्यर्थ के साधनों की बहुत जिद्द मत करना। जैसे भी पहुंचो, पहुंच जाना। परमात्मा तुमसे यह न पूछेगा, किस मार्ग से आए? कैसे आए? आ गये, स्वागत है!

आज इतना ही।